इकाई- 1 लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र एवं महत्व

इकाई की संरचना

1.0 प्रस्तावना
1.1 उद्देश्य
1.2 लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा
1.3 लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताऐं
1.4 लोक प्रशासन की प्रकृति
    1.4.1 एकीकृत एवं प्रबन्धकीय दृष्टिकोण
    1.4.2 लोक प्रशासन विज्ञान है या कला
1.5 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र
    1.5.1 संकुचित दृष्टिकोण
    1.5.2 व्यापक दृष्टिकोण
    1.5.3 पोस्डकार्ब दृष्टिकोण
    1.5.4 आदर्शवादी दृष्टिकोण
1.6 लोक प्रशासन का महत्व
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.0 प्रस्तावना

किसी भी विषय का अध्ययन प्रारम्भ करते समय विद्यार्थी सर्वप्रथम विषय की आधारभूत बातों से परिचित होना चाहते हैं। आप अपने दिन पर दिन के अनेक कार्यों के सन्दर्भ में प्रशासन के सम्पर्क में आते होंगे और इतना तो जानते ही होंगे कि प्रशासन वह संगठन है जो हमारे जीवन की विभिन्न क्रियाओं को नियत्रित एवं प्रभावित करता है। एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितना कि मानव का संगठित जीवन। किन्तु अध्ययन के एक विषय के रूप में इसका विकास आधुनिक काल में हुआ है, प्रारंभिक काल में लोक प्रशसन का कार्य शांति एवं व्यवस्था बनाये रखना, अपराध रोकना तथा पारस्परिक विवादों को सुलझाने जैसे कार्यों तक सीमित था। किन्तु आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों में इसका कार्य-क्षेत्र एवं प्रभाव कई गुणा बढ़ गया है, शासन का स्वरुप चाहे कैसा भी हो, लोक प्रशासन राजनितिक व्यवस्था का एक अपरिहार्य तत्व है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समझ सकेंगे कि लोक प्रशासन क्या है, इसके अन्तर्गत किन विषयों का अध्ययन किया जाता है तथा इसका हमारे व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक जीवन में क्या महत्व है?

1.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अर्थ को समझ सकेंगे तथा इसकी परिभाषा कर सकेंगे।
- लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- लोक प्रशासन की प्रकृति को स्पष्ट कर सकेंगे।
- लोक प्रशासन के महत्व पर प्रकाश डाल सकेंगे।

1.2 लोक प्रशासन का अर्थ एवं परिभाषा

लोक प्रशासन, प्रशासन का एक विशिष्ट अंग है। प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहयोग का नाम है। इसका अर्थ है 'कार्यों का प्रबन्ध करना अथवा लोगों की देखभाल करना।' यह एक व्यापक प्रक्रिया है, जो सभी सामूहिक कार्यों के विषय में चाहे सार्वजनिक हो या व्यक्तिगत, नागरिक हो या सैनिक, बड़े कार्य हों या छोटे, सभी के सम्बन्ध में लागू होता है। दूसरे शब्दों में प्रशासन शब्द के अंतर्गत निजी एवं सरकारी गतिविधियों का प्रबन्धन सम्मिलित है। इस अर्थ में प्रशासन को विश्व विद्यालयों, चिकित्सालयों, व्यापारिक कम्पनियों, विभिन्न सरकारी विभागों आदि में देखा जा सकता है। लोक प्रशासन, प्रशासन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध शासन की गतिविधियों से होता है। व्यक्तिगत प्रशासन के विपरीत यह शासकीय कार्यों का प्रबन्धन है। एक विशिष्ट राजनैतिक व्यवस्था के अंतर्गत लोक प्रशासन राजनीतिक निर्णयों को कार्यरूप में परिवर्तित करने का एक साधन है। इसके द्वारा ''सरकार के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति होती है'' इसका सम्बन्ध सार्वजनिक समस्याओं से है। यह लोक हित के लिए सरकार द्वारा किया गया संगठित प्रयास है। यह राजनीतिक प्रक्रिया का भी एक भाग है, क्योंकि लोक नीति के निर्धारण में यह महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। समाज को सुविधायें प्रदान करने हेतु अनेक निजी समूहों और व्यक्तियों से इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह निजी प्रशासन से कई दृष्टियों से भिन्न है।

अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है जो मुख्य रूप से शासन के क्रियाकलापों तथा प्रक्रियाओं से सम्बन्ध रखता है। इसे जन प्रशासन, सार्वजनिक प्रशासन या सरकारी प्रशासन भी कहा जाता है। 'लोक' शब्द का प्रयोग सार्वजनिकता का सूचक है तथा इस विषय को एक विशिष्टता प्रदान करता है। सरकार के तीन अंग होते हैः व्यवस्थापिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। क्या लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगो का अध्ययन किया जाना चाहिए? इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है, जिसके कारण लोक प्रशासन की अलग-अलग परिभाषाऐं की गयी हैं।

लोक प्रशासन की कुछ प्रमुख परिभाषाऐं निम्नलिखित हैं-

''लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है''- एल0डी0 व्हाइट

''कानून को विस्तृत एवं क्रमबद्ध रूप से क्रियान्वित करने का नाम ही लोक प्रशासन है। कानून को क्रियान्वित करने की प्रत्येक क्रिया एक प्रशासकीय क्रिया है।''- वुडरो विल्सन

''साधारण प्रयोग में लोक प्रशासन का अर्थ उन क्रियाओं से है जो राष्ट्रीय, प्रान्तीय तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखाओं द्वारा सम्पादित की जाती है।''- एच0 साइमन

''सामान्यतः लोक प्रशासन, प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जो शासन से विशेषकर इसके कार्यपालिका पक्ष से सम्बन्धित है जहाँ सरकार का कार्य किया जाता है। यद्यपि विधायिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित समस्याऐं भी स्पष्ट रूप से प्रशासकीय समस्याऐं ही है।''- लूथर गुलिक

उपर्युक्त परिभाषाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि लोक प्रशासन शब्द का प्रयोग संकुचित तथा व्यापक दोनों सन्दर्भों में किया जाता है। संकुचित सन्दर्भ में, इसका प्रयोग केवल कार्यपालिका द्वारा किये जाने वाले कार्यों के सन्दर्भ में किया जाता है। व्यापक सन्दर्भ में, लोक प्रशासन को सरकार अर्थात व्यवस्थापिका, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका के कार्यों के समग्र अध्ययन से जोड़ा गया है। मोटे तौर पर एल0डी0 व्हाइट के इस कथन से सहमति व्यक्त की जा सकती है कि ''लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते है जिनका उद्देश्य लोक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है।''

1.3 लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताऐं

लोक प्रशासन का अर्थ एवं इसकी विभिन्न परिभाषाओं को जानने के उपरान्त आप इसकी प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूपों में रेखांकित कर सकते हैं-

1. लोक प्रशासन, प्रशासन का वह भाग है जिसका सम्बन्ध लोक नीतियों को कार्यरूप में परिणत करने से है।
2. यह सार्वजनिक हित के लिए व्यक्ति तथा उसके साधनों का संगठित प्रयास है।
3. इसके अंतर्गत व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका तीनों शाखाएं और उनके परस्पर सम्बन्ध आते हैं, किन्तु औपचारिक रूप से यह सरकारी अधिकारी-तंत्र पर ही विशेष रूप से केन्द्रित होता है।
4. आधुनिक काल में लोक नीति के निर्धारण में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
5. इसका उद्देश्य निश्चित नियमों के अनुसार सरकारी कार्यों का निर्देशन तथा संचालन है।
6. यह किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाने वाला कार्य है।
7. प्रशासन करने वाले व्यक्ति के पास अधिकार का होना आवश्यक है। इसी के आधार पर वह दूसरों से किसी कार्य में सहयेाग प्राप्त करता है।
8. इसमें एक से अधिक व्यक्तियों के सहयोग से कार्य किया जाता है। एक व्यक्ति द्वारा किये गये कार्य को लोक प्रशासन की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती है।
9. यह निजी प्रशासन से कई दृष्टियों में भिन्न है।
10. समाज को सुविधायें प्रदान करने की प्रक्रिया में यह निजी समूहों और व्यक्तियों से निकट सम्बन्ध रखता है।

1.4 लोक प्रशासन की प्रकृति

अब तक आप यह समझ चुके होंगे कि लोक प्रशासन का अर्थ क्या है? अब हम इस विषय की प्रकृति पर विचार करेंगे।

लोक प्रशासन एक गतिशील विषय है जिसकी प्रकृति में निरन्तर परिवर्तन होता रहा है। इस विषय के स्वरूप पर बदलती हुई सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों एवं अन्य संबंधित सामाजिक विज्ञानों का व्यापक प्रभाव पड़ा है। सामान्यतया लोक प्रशासन की प्रकृति पर दो दृष्टियों से विचार किया जाता है- प्रथम इस दृष्टि से कि इस विषय के अंतर्गत किन क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाना चाहिए और दूसरे इस दृष्टि से कि यह विज्ञान है या कला या दोनों का समन्वित रूप।

1.4.1 एकीकृत एवं प्रबन्धकीय दृष्टिकोण

लोक प्रशासन की परिभाषा की तरह इसकी प्रकृति के विश्लेषण के सम्बन्ध में भी विद्वान एकमत नहीं है। इस सम्बन्ध में मुख्यतया दो दृष्टिकोण हैं जिन्हें एकीकृत तथा प्रबन्धकीय दृष्टिकोण कहा जा सकता है।

एकीकृत दृष्टिकोण के अनुसार किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं का समग्रीकरण का योग ही प्रशासन है चाहे वे क्रियाऐं लेखन, प्रबन्धन या सफाई सम्बन्धी ही क्यों न हो। इस प्रकार उपक्रम अथवा उद्यम विशेष में कार्यरत संदेशवाहक, फोरमैन, चौकीदार, सफाई कर्मचारी तथा शासन के सचिवों एवं प्रबन्धकों तक के कार्य को प्रशासन का भाग माना गया है। इस दृष्टिकोण में उपक्रम में कार्यरत छोटे कर्मचारियों से लेकर बड़े अधिकारियों तक के कार्यों को प्रशासन का भाग माना जाता है। व्हाइट इसी दृष्टिकोण के समर्थक है।

दूसरी ओर प्रबन्धकीय दृष्टिकोण केवल उन्हीं लेागों के कार्यों को प्रशासन मानता है, जो किसी उपक्रम सम्बन्धी केवल प्रबन्धकीय कार्यों का सम्पादन करते हैं। प्रबन्धकीय कार्य का लक्ष्य उपक्रम के विभिन्न क्रियाओं का

एकीकरण, नियन्त्रण तथा समन्वय करना होता है। साइमन, स्मिथबर्ग तथा थॉमसन इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। उनके मतानुसार ''प्रशासन शब्द अपने संकुचित अर्थों में आचरण के उन आदर्शों को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जो अनेक प्रकार के सहयेागी समूहों में समान रूप से पाये जाते हैं।'' लूथर गुलिक के अनुसार, ''प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किये जाने और निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति से है।''

उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में मौलिक अन्तर है। एकीकृत दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर हमें किसी उद्यम में लगे सभी कर्मचारियों के कार्यों को प्रशासन के अंतर्गत मानना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त, विषय-वस्तु के अन्तर के कारण एक क्षेत्र का प्रशासन दूसरे क्षेत्र के प्रशासन से भिन्न होगा। जैसे- शिक्षा के क्षेत्र का प्रशासन लोक निर्माण के प्रशासन से भिन्न होगा। दूसरी तरफ प्रबन्धकीय दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर प्रशासन प्रबन्धन की तकनीक बनकर रह जाती है। प्रबन्धक का कार्य संगठन करना तथा उद्देश्य की प्राप्ति हेतु जन तथा साधन सामग्री का प्रयोग करना है। यह दृष्टिकोण प्रशासन को अपने आप में भिन्न तथा पृथक क्रिया मानता है तथा प्रत्येक क्षेत्र के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखता है।

अब आपके मन में यह दुविधा उत्पन्न हो गयी होगी कि उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में किसे उपयुक्त माना जाय? वास्तव में उपर्युक्त दोनों दृष्टिकोणों में किसी की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती। सच तो यह है कि प्रशासन का ठीक अर्थ उस प्रसंग पर निर्भर करता है जिस सन्दर्भ में शब्द का प्रयोग किया जाता है। अध्ययन विषय के रूप में प्रशासन उन सरकारी प्रयत्नों के प्रत्येक पहलू की परीक्षा करता है, जो कानून तथा लोक नीति को क्रियान्वित करने हेतु सम्पादित किये जाते हैं। एक प्रक्रिया के रूप में इससे वे सभी प्रयत्न आ जाते हैं जो किसी संस्थान में अधिकार-क्षेत्र प्राप्त करने से लेकर अंतिम ईंट रखने तक उठाये जाते हैं तथा व्यवसाय के रूप में यह किसी भी सार्वजनिक संस्थान के क्रियाकलापों का संगठन तथा संचालन करता है।

1.4.2 लोक प्रशासन विज्ञान है या कला

लोक प्रशासन की प्रकृति को पूर्ण रूप से समझने के लिए आपको यह भी जानना होगा कि यह विषय कला है अथवा विज्ञान अथवा दोनों का समन्वित रूप। एक प्रक्रिया के रूप में लोक प्रशासन को सामान्तया एक कला समझा जाता है। कला का अपना कौशल होता है और वह व्यवस्थित ढंग से व्यवहार में लायी जाती है। प्रशासन एक विशेष क्रिया है जिसमें एक विशेष ज्ञान तथा तकनीकी कौशल की आवश्यकता होती है। अन्य कलाओं की भाँति प्रशासन को भी अभ्यास से सीखा जा सकता है। वर्तमान में प्रशासनिक दक्षता के लिए 'निपुण' तथा 'विशिष्ट' प्रकार के दक्ष लोगों की आवश्यकता सरकार के विभिन्न आयामों में महसूस की जा रही है। प्रशासनिक कला में निपुणता हासिल करने के लिए व्यक्ति में धैर्य, नियन्त्रण, हस्तान्तरण, आदेश की एकता आदि गुणों का होना आवश्यक है। इन गुणों के अभाव में प्रशासक अपने कर्तव्यों का सफलतापूर्वक निष्पादन नहीं कर सकता।

लूथर गुलिक के अनुसार ''एक अच्छे प्रशासक को 'पोस्डकार्ब' तकनीकों में पारंगत होना चाहिए।'' जो विचारक प्रशासन केा कला नहीं मानते, उनका तर्क है कि प्रशासन की सफलता और असफलता मानवीय वातावरण एवं परिस्थितियों पर निर्भर करती है। एक स्थान पर एक प्रशासक उन्हीं तकनीकों से सफल हो जाता है और दूसरे स्थान पर असफल हो जाता है। यह सच है कि सामाजिक और मानवीय पर्यावरण प्रशासन की कार्यकुशलता को उसी प्रकार प्रभावित करते हैं जिस प्रकार खेल का मैदान बदलने पर नया वातावरण खिलाड़ी के कौशल को प्रभावित करता है। किन्तु प्रशासन एक कौशल है। प्रत्येक व्यक्ति इस कौशल को हासिल नहीं कर सकता। प्रशिक्षण और अभ्यास के बाद ही इस उच्चतम कला को ग्रहण किया जा सकता है। अतः यह कहना उचित होगा कि लोक प्रशासन एक कला है।

अब प्रश्न यह उठता है कि इस विषय को विज्ञान का दर्जा दिया जाय या नहीं। यह एक विवादित प्रश्न है तथा इसका उत्तर इस बात पर निर्भर करता है कि हम विज्ञान शब्द का प्रयोग किस अर्थ में करते हैं। साधारणतः विज्ञान शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है- व्यापक और संकीर्ण।

व्यापक अर्थ में इस शब्द का प्रयोग 'अनुभव एवं पर्यवेक्षण से प्राप्त क्रमबद्ध ज्ञान' के रूप में किया जाता है। इसी अर्थ में हम सामाजिक विज्ञानों को जिनमें राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, आदि शामिल हैं, विज्ञान की संज्ञा प्रदान करते है। दूसरे अर्थ में विज्ञान, ज्ञान का वह निकाय है जो ऐसे परिशुद्ध सामान्य सिद्धान्तों की स्थापना करता है जिनके आधार पर एक बड़ी सीमा तक परिणामों के सम्बन्ध में पूर्वकथन किया जा सकता है। इस प्रकार के विज्ञानों को 'शुद्ध विज्ञान' के नाम से पुकारा जाता है, जैसे- भौतिकी, रसायनशास्त्र और गणित। सामान्यता लोक प्रशासन को एक 'सामाजिक विज्ञान' माना जाता है, यद्यपि इस विषय पर सभी विद्वान एकमत नहीं है। विद्वानों का एक ऐसा वर्ग भी है जो इस विषय को विज्ञान नहीं मानते। ऐसे विद्वानों द्वारा निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

मानवीय क्रियाओं से सम्बन्धित हो ने के कारण लोक प्रशासन के नियम कम विश्वसनीय होते है। ये स्थान और काल के अनुसार बदलते रहते हैं।

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र में सर्वसम्मत एवं सार्वभौमिक सिद्धान्तों का अभाव है।
2. विज्ञान की भाँति लोक प्रशासन के पास कोई ऐसी प्रयोगशाला नहीं है जहाँ पूर्व अर्जित तथ्यों की सत्यता स्थापित की जा सके।
3. विज्ञान में नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों का कोई स्थान नहीं होता जबकि लोक प्रशासन के सिद्धान्त निरन्तर प्रशासकीय क्रिया की तथ्यपरक एवं आदर्शपरक धारणाओं, अर्थात 'क्या है' और 'क्या होना चाहिए' के बीच झूलते रहते हैं।
4. इसमें पूर्व कथनीयता अर्थात भविष्यवाणी करने की क्षमता का अभाव है।
5. प्रशासकीय आचरण न तो पूर्णतः विवेकनिष्ठ होता है और न ऐसा होना सम्भव ही है। ऐसी स्थिति में उसके विज्ञान होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

इसमें कोई दो राय नहीं कि संकीर्ण अर्थ में लोक प्रशासन को विज्ञान की संज्ञा प्रदान नहीं की जा सकती, परन्तु विषय से सम्बद्ध अधिकांश विद्वानों में इस बात पर मतैक्य पाया जाता है कि व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन के विज्ञान होने के दावे को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

लोक प्रशासन के विज्ञान होने के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं-

1. एक विषय के रूप में लोक प्रशासन, प्रशासन से सम्बन्धित ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन करता है।
2. इस विषय के अध्ययन के लिए लगभग सुनिश्चित क्षेत्र निर्धारित कर लिया गया है तथा इस आधार पर इसे अन्य शास्त्रों से पृथक किया जा सकता है।
3. गत वर्षों में प्रशासन के क्षेत्र में जो पर्यवेक्षण, परीक्षण तथा अनुसंधान हुये हैं, उनके परिणामस्वरूप अनेक सुनिश्चित अवधारणाऐं तथा परिकल्पनाऐं विकसित हुई हैं।
4. भारी संख्या में ऐसे तथ्यों का संग्रह कर लिया गया है, जिन पर वैज्ञानिक अध्ययन की पद्धतियों का प्रयोग किया जा रहा है।
5. अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति लोक प्रशासन में भी कुछ ऐसे सामान्य सिद्धान्त विकसित किये जा चुके हैं, जो प्रभावी शासन की स्थापना के लिए पथ प्रदर्शक का काम कर सकते हैं।

6. यह विषय तथ्यों एवं घटनाओं की वैज्ञानिक विवेचना करता है और इसके माध्यम से प्रशासक अनुमान लगा सकते हैं कि इन घटनाओं के क्या परिणाम होंगे? अर्थात इसमें भविष्यवाणी करने की क्षमता है।
7. इस विषय से सम्बन्धित घटनाओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने के उपरान्त इस प्रकार के कारण खोजें की जा सकती हैं, जिनके आधार पर यह कहा जा सकता है कि समान कारणों का काफी बड़ी सीमा तक समान प्रभाव होता है। उक्त सन्दर्भ में सच तो यह है कि प्रत्येक ज्ञान के दो पहलू होते हैं- एक कला का और दूसरा विज्ञान का। उदाहरण के लिए, फोटोग्राफी अथवा औषधि विज्ञान कला भी है और विज्ञान भी। इसी प्रकार लोक प्रशासन विज्ञान और कला दोनों का समन्वित रूप है। चार्ल्स बेयर्ड के अनुसार, लोक प्रशासन उतना ही विज्ञान है जितना कि अर्थशास्त्र। उनके मत में जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसंधान, वैज्ञानिक समितियों तथा वैज्ञानिकों द्वारा ज्ञान एवं परिकल्पनाओं के आदान-प्रदान ने ज्ञान की परिशुद्धता में वृद्धि की है, उसी प्रकार हम यह आशा कर सकते हैं कि प्रशासन के क्षेत्र में भी अनुसंधान, प्रशासकीय समितियों तथा प्रशासकों के पारस्परिक आदान-प्रदान भी ज्ञान की परिशुद्धता में वृद्धि करने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। यहाँ पर ध्यान देने योग्य बात यह है कि लोक प्रशासन केवल तथ्यों अर्थात 'क्या है' का ही अध्ययन नहीं करता, वरन् आदर्शों अर्थात 'क्या हो ना चाहिए' का भी अध्ययन करता है। इस प्रकार अन्य सामाजिक विज्ञानों की भाँति यह तथ्यपरक एवं आदर्शपरक दोनों प्रकार का विज्ञान हो सकता है। अपने पारंपरिक रूप में यह एक तथ्यपरक विज्ञान ही बना रहा है। परन्तु आधुनिक विचारकों ने इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं किया। उनका कहना है कि प्रशासन का ध्येय श्रेष्ठ प्रशासन है। इस धारणा को स्वीकार कर लेने के बाद यह प्रश्न सहज ही उठता है कि श्रेष्ठ प्रशासन की कसौटी क्या है? स्पष्टतः इन प्रश्नों में प्रयोजनों और मूल्यों की समस्या निहित है और यह प्रश्न लोक प्रशासन को आदर्शमूलक अध्ययन का स्वरूप प्रदान करता है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन एक प्रगतिशील विज्ञान है, जिसके निष्कर्ष अथवा सिद्धान्त भी नये अनुसंधान तथा नये अनुभव के अनुसार अपने आप को भी बदल डालते हैं। यह सही है कि समय-समय पर प्रतिपादित किये जाने वाले विभिन्न मतों से लोक प्रशासन की समस्या के बारे में सही समझ कायम करने में सहायता मिली है, तथापि उनके सम्बन्ध में पूर्णता का दावा नहीं किया जा सकता है।

1.5 लोक प्रशासन का विषय क्षेत्र

लोक प्रशासन की प्रकृति को समझने के उपरान्त आप यह जानेंगे कि इस विषय के अंतर्गत किन तथ्यों तथा समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, अर्थात लोक प्रशासन का अध्ययन क्षेत्र क्या है? जिस प्रकार आपने इस विषय की परिभाषा तथा इसके स्वरूप के सम्बन्ध में विद्वानों में तीव्र मतभेद पाया, उसी प्रकार का मतभेद विषय के अध्ययन क्षेत्र के सम्बन्ध में भी पाया जाता है। वास्तव में, परिवर्तन के इस युग में लोक प्रशासन जैसे गतिशील विषय का क्षेत्र निर्धारित करना अत्यन्त मुश्किल कार्य है। मोटे तौर पर इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दृष्टिकोण प्रचलित हैं-

1.5.1 संकुचित दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन का सम्बन्ध शासन की कार्यपालिका शाखा से है, इसलिए इसके अंतर्गत केवल कार्यपालिका से सम्बन्धित कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। हर्वर्ट साइमन तथा लूथर गुलिक जैसे विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक है। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर लोक प्रशासन के क्षेत्र के अंतर्गत निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जा सकती हैं- कार्यरत कार्यपालिका अर्थात असैनिक कार्यपालिका का

अध्ययन, सामान्य प्रशासन का अध्ययन, संगठन सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन, कार्मिक प्रशासन का अध्ययन, वित्तीय प्रशासन का अध्ययन और प्रशासनिक उत्तरदायित्व एवं उपलब्धियों का अध्ययन।

1.5.2 व्यापक दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन के क्षेत्र के अंतर्गत उन सभी क्रियाओं के अध्ययन पर बल देता है जिनका उद्देश्य लोक नीति को पूरा करना अथवा क्रियान्वित करना होता है। दूसरे शब्दों में इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के अंतर्गत सरकार के तीनों अंगों- कार्यपालिका, व्यवस्थापिका एवं न्यायपालिका से सम्बन्धित कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। निग्रो, व्हाइट, मार्क्स, विलोबी आदि विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। इस दृष्टिकोण को स्वीकार करने पर लोक प्रशासन के विषय क्षेत्र की व्याख्या में निम्नलिखित बातें दृष्टिगोचर होती है- 1. समाज के सहयोगात्मक प्रयास का अध्ययन, 2. सरकार के तीनों अंगो का अध्ययन, 3. लोक नीति के निर्माण एवं क्रियान्वयन का अध्ययन, 4. प्रशासन के सम्पर्क में आने वाले निजी संगठनों एवं व्यक्तियों के व्यवहार का अध्ययन।

1.5.3 पोस्डकार्ब दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के प्रमुख प्रणेता लूथर गुलिक हैं। यद्यपि गुलिक से पहले उर्विक, हेनरी फेयोल इत्यादि विद्वानो ने भी पोस्डकॉब दृष्टिकोण अपनाया था, किन्तु इन विचारों को सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय गुलिक को जाता है। पोस्डकॉब शब्द अंग्रेजी के सात शब्दों के प्रथम अक्षरों से मिलकर बना है। ये शब्द निम्नवत है- 1. Planing- योजना बनाना, 2. Organization- संगठन बनाना, 3. Staffing- कर्मचारियों की व्यवस्था करना, 4. Directing- निर्देशन करना, 5. Coordinaton- समन्वय करना, 6. Reporting- रपट देना और 7. Budgeting- बजट तैयार करना।

1.5.4 आदर्शवादी दृष्टिकोण

यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि लोककल्याणकारी राज्य और लोक प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है। जिस प्रकार लोक कल्याणकारी राज्य का उद्देश्य जनता का हित करना है, ठीक उसी प्रकार लोक प्रशासन का अर्थ जनता के हित में सरकार के कल्याणकारी कार्यों को मूर्त रूप प्रदान करना है। लोक प्रशासन एक व्यापक विषय है और इसके अंतर्गत जनहित में किये जाने वाले समस्त कार्यों का अध्ययन किया जाना चाहिए। उपर्युक्त दृष्टिकोण की समीक्षा करने पर आपको यह स्पष्ट हो जायेगा कि इनमें से कोई भी दृष्टिकोण पूर्ण नहीं है।

प्रथम दृष्टिकोण लोक प्रशासन को शासन की कार्यपालिका शाखा से सम्बन्धित मानता है, लेकिन यथार्थ में यह केवल कार्यपालिका शाखा का ही अध्ययन नहीं है, बल्कि इससे बहुत ज्यादा है। दूसरे व्यापक दृष्टिकोण के मुताबिक लोक प्रशासन में सरकार के तीनों अंगों को शामिल किया गया है जिसे भी पूर्णतः उचित नहीं कहा जा सकता है। अगर इस दृष्टिकोण को माना जाए तो लोक प्रशासन अस्पष्ट विषय बनकर रह जायेगा। तीसरे दृष्टिकोण, जिसे 'पोस्डकॉर्ब' का नाम दिया जाता है इस आधार पर आलोचना की जा सकती है कि यह केवल प्रशासन की तकनीकों से सम्बन्धित है, उसके पाठ्य विषय से नहीं। इस दृष्टिकोण में यह भी कमी है कि इसमें मानवीय पहलू की उपेक्षा की गयी है। अंत में चौथा दृष्टिकोण आदर्शवादी दृष्टिकोण भी सही नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह लोक प्रशासन के वास्तविक क्षेत्र का विवेचन नहीं करके भविष्य में बनने वाले लोक प्रशासन के क्षेत्र का काल्पनिक वर्णन करने लगता है।

स्पष्टतः उपर्युक्त दृष्टिकोणों में किसी एक को पूर्णतः सही मानना ठीक नहीं है, परन्तु सत्यता का अंश सभी में है। यानि लोक प्रशासन सरकार के तीनों अंगों से सम्बन्धित है, परन्तु कार्यपालिका से ज्यादा जुड़ा हुआ है। इसमें 'पोस्डकॉर्ब' की प्रक्रिया अपनायी जाती है और इसका भावी स्वरूप विस्तृत और व्यापक है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन में निम्नलिखित विषय क्षेत्रों का अध्ययन किया जाना चाहिए-

- सार्वजनिक कार्मिक प्रशासन का अध्ययन,
- सार्वजनिक वित्तीय प्रशासन का अध्ययन,
- प्रशासनिक अथवा संगठनात्मक सिद्धान्तों का अध्ययन,
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन,

1.6 लोक प्रशासन का महत्व

किसी भी विषय के अध्ययनकर्ता सम्बन्धित विषय के अध्ययन में दिलचस्पी तभी लेते हैं, जबकि वह विषय उन्हें महत्वपूर्ण एवं उपयेागी प्रतीत होता है। लोक प्रशासन के इस विषय का अध्ययन करते समय आप भी विषय के महत्व को जानने को इच्छुक होंगे। राजनीतिक व्यवस्था का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो, लोक प्रशासन एक अनिवार्यता है। आधुनिक युग में इसका महत्व इतना अधिक बढ़ गया है कि यह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित करता है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानों में लोक प्रशासन ने अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर ली है और प्रशासनिक व्यवस्था की आधारशिला के साथ-साथ सभ्यता की पहचान बन गया है। यह न कवेल एक सैद्धान्तिक विषय है बल्कि सभ्य समाजों में व्यक्ति तथा सरकार के बीच औपचारिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने वाला आवश्यक ज्ञान है। इस सम्बन्ध में चार्ल्स बेयर्ड ने ठीक ही कहा है कि ''प्रशासन के विषय से अधिक महत्वपूर्ण अन्य कोई विषय नहीं हो सकता है। मेरे विचार से शासन तथा हमारी सभ्यता का भविष्य इसी बात पर निर्भर करता है कि सभ्य समाज के कार्यों की पूर्ति के लिए प्रशासन का दार्शनिक, वैज्ञानिक तथा व्यावहारिक स्वरूप कितना विकसित होता है।''

लोक प्रशासन, प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उपकरण है। देश में शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना तथा नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना, पारंपरिक रूप से लोक प्रशासन के महत्वपूर्ण कार्य रहे हैं। आधुनिक काल में व्यक्ति की अपेक्षाओं, महत्वाकांक्षाओं तथा आवश्यकताओं में वृद्धि के साथ-साथ लोक प्रशासन का दायित्व भी बढ़ गया है। इसे कई अन्य चुनौतीपूर्ण कार्यों का सम्पादन करना पड़ता है। देश के विकास और प्रगति को आगे बढाने के लिए सुचारू रूप से संचालन के लिए तथा इनके मार्ग में आने वाली समस्याओं से जूझने के लिए लोक प्रशासन अत्यन्त आवश्यक है। यह विकास एवं परिवर्तन का भी एक प्रमुख उपकरण बन गया है।

आज राज्य का स्वरूप लोककल्याणकारी है तथा यह जनता के उत्थान के लिए बहुमुखी योजनाऐं चलाती है। इन योजनाओं की सफलता प्रशासन की कार्यकुशलता एवं निष्पक्षता पर निर्भर करती है। योजनाओं को लागू करने का कार्य लोक सेवकों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। ऐसी स्थिति में राज्य और लोक प्रशासन में अन्तर नहीं रह गया है। डिमॉक के अनुसार ''लोक प्रशासन सभ्य समाज का आवश्यक अंग तथा आधुनिक जीवन का एक प्रमुख तत्व है और इसने राज्य के उस स्वरूप को जन्म दिया है जिसे 'प्रशासकीय राज्य' कहा जाता है। वस्तुतः लोक प्रशासन व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक सम्पादित होने वाले तमाम कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।''

आज लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का भी एक प्रमुख साधन बन गया है। विकासशील देशों की परम्परागत जीवन शैली, अंधविश्वास रूढियों तथा कुरीतियों में परिवर्तन लाना एक सामाजिक आवश्यकता है। सुनियोजित सामाजिक परिवर्तन के लिए शिक्षा, राजनीतिक चेतना, आर्थिक विकास, कानून, दबाव समूह तथा स्वयंसेवी संगठनों सहित प्रशासन भी एक उपकरण माना जाता है। सामाजिक परिवर्तन का हथियार होने के साथ-साथ लोक प्रशासन सामाजिक नियन्त्रण का माध्यम भी है। सामाजिक नियन्त्रण का तात्पर्य उस ढंग से है जिसके द्वारा सम्पूर्ण

सामाजिक व्यवस्था की एकता तथा स्थायित्व को बनाया रखा जा सके और जिसमें सामाजिक व्यवस्था परिवर्तनशील रहते हुए क्रियाशील रहे। हमारे देश में गरीबी, भूखमरी, बेरोजगारी, शोषण, महिला अत्याचार, बाल अपराध, दहेज, छुआछूत, आदि जैसी सामाजिक समस्यायें विद्यमान हैं। ऐसी जटिल एवं व्यापक सामाजिक समस्याओं एवं कुरीतियो का समाधान केवल सरकार द्वारा निर्मित सामाजिक नीतियों एवं सामाजिक कानूनों द्वारा ही संभव है और इन नीतियों एवं कानूनों को क्रियान्वित करने में लोक प्रशासन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लोक प्रशासन की भूमिका केवल नीतियों के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसके निर्धारण में भी यह महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। नीतियों के निर्माण की औपचारिक जिम्मेदारी भले ही राजनीतिज्ञों की हो, लेकिन अपने विशिष्ट ज्ञान प्रशिक्षण तथा अनुभव के कारण एक सलाहकार के रूप में लोक सेवक नीतियों के निर्माण में अहम भूमिका निभाते हैं। वस्तुतः सरकार के कार्यों के सफल संचालन के लिए प्रशासनिक लोक सेवकों का सहयोग आवश्यक है। प्रशासन सरकार के हाथ-पैर हैं और सरकार की सफलता का महत्वपूर्ण माध्यम है।

लोक प्रशासन द्वारा प्रशासकों के प्रशिक्षण जैसे महत्वपूर्ण कार्यों का सम्पादन करने प्रशासनिक व्यवस्था की गतिशीलता व उपादेयता में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी जाती है। प्रशिक्षण के द्वारा ही लोक प्रशासक यह सीख पाते हैं कि कानून व व्यवस्था बनाये रखा जाये। प्रशासनिक जीवन में समन्वय, संचार, सोपान, नियन्त्रण क्षेत्र इत्यादि की जानकारी भी प्रशासकों को लोक प्रशासन से ही सम्भव है। यही कारण है कि लोक सेवकों को लोक प्रशासन का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक अध्ययन करना पड़ता है।

भूमंडलीकरण एवं आर्थिक उदारीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ होते समय कुछ विद्वानों ने यह आशंका व्यक्त की थी कि लोकप्रशासन का महत्व कम हो जायेगा। लेकिन वास्तविकता यह है कि भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन की भूमिका और चरित्र में कुछ बदलाव आया है, लेकिन इसका महत्व कम नहीं हुआ है। अब लोक प्रशासन की एक नवीन भूमिका सुविधाकारक तथा उत्प्रेरक की है। यह और सक्रिय होकर देखता है कि विस्तृत होता हुआ निजी क्षेत्र राष्ट्र के कानून तथा नियमनों की संरचना के अंतर्गत क्रियाशील है या नहीं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सरकार का स्वरूप किसी भी प्रकार का हो लेकिन लोक प्रशासन का महत्व एवं इसकी भूमिका कम नहीं हो सकती। लोकतांत्रिक शासन प्रणाली ने तो इसके महत्व को और भी बढा दिया है। आज लोक प्रशासन सभ्य समाज की प्रथम आवश्यकता है। देश में शांति-व्यवस्था एवं स्थिरता बनाये रखने तथा विकास कार्य एवं सामाजिक परिवर्तन को गति प्रदान करने के लिए लोक प्रशासन अपरिहार्य है। फाइनर के शब्दों में ''कुशल प्रशासन सरकार का एक मात्र सहारा है जिसकी अनुपस्थिति में राज्य क्षत-विक्षत हो जायेगा।''

अभ्यास प्रश्न-

1. प्रशासन एक सुनिश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों द्वारा परस्पर सहयोग का नाम है। सत्य/असत्य
2. प्रशासन का सम्बन्ध निजी समस्याओं से है। सत्य/असत्य
3. प्रशासन में वे सभी कार्य आ जाते हैं, जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीतियों को लागू करना है। सत्य/असत्य
4. एकीकृत दृष्टिकोण में लोक प्रशासन के अंतर्गत किन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है?
5. प्रबन्ध कीय दृष्टिकोण केवल उन्हीं लोगों के कार्यों को प्रशासन मानता है जो किसी उपक्रम संबंधी केवल प्रबन्ध कीय कार्यों का संपादन करते हैं। सत्य/असत्य
6. एकीकृत दृष्टिकोण प्रत्येक क्षेत्र के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखता है। सत्य/असत्य
7. ''एक अच्छे प्रशासक को पोस्डकॉब तकनीकों में पारंगत होना चाहिए'' यह किसका कथन है?
8. लोक प्रशासन के विज्ञान होने के पक्ष में दो तर्क प्रस्तुत कीजिए।
9. लोक प्रशासन के अध्ययन के चार विषय-क्षेत्रों को निर्धारित कीजिए।

10. लोक प्रशासन की भूमिका केवल नीतियों के क्रियान्वयन तक सीमित है। सत्य/असत्य

11. लोक प्रशासन विकास एवं परिवर्तन का प्रमुख उपकरण है। सत्य/असत्य

12. भूमंडलीकरण के इस युग में लोक प्रशासन की भूमिका एक सुविधाकारक एवं उत्प्रेरक की है। सत्य/असत्य

1.7 सारांश

लोक प्रशासन प्रशासन का वह विशिष्ट भाग है, जिसमें उन सभी क्रियाकलापों का अध्ययन किया जाता है जो सार्वजनिक नीतियों को क्रियान्वित करने से सम्बन्धित है। यह एक गतिशील विषय है जिसके स्वरूप में निरंतर परिवर्तन होता रहा है। यह एक सामाजिक विज्ञान तथा व्यावहारिक कला का समन्वित रूप है। आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों में इसकी भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हो गयी है। यह न केवल शांति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने का बल्कि विकास एवं सामाजिक परिवर्तन का भी एक प्रमुख उपकरण बन गया है। भूमंडलीकरण एवं उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन के लिए नयी भूमिका का सृजन हुआ है।

इस इकाई में हमने लोक प्रशासन की आधारभूत विशेषताओं तथा इसके महत्व पर प्रकाश डाला है। अगले अध्याय में हम इस विषय के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण पर प्रकाश डालेंगे।

1.8 शब्दावली

प्रशासनिक राज्य- ऐसा राज्य जिसमें कार्यपालिका शाखा का प्रभुत्व होता है, यद्यपि इसमें व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका भी स्थापित रहते हैं।

लोक कल्याणकारी राज्य- ऐसा राज्य जो समस्त जनता और विशेषकर कमजोर एवं जरूरतमंद लोगों अर्थात निर्धन, वृद्ध, अपंग, बीमार इत्यादि लोगों को कानून और प्रशासन के द्वारा पर्याप्त सुविधायें प्रदान करता है।

प्रबन्धन- एक ऐसी प्रक्रिया जो प्रशासन द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है।

लोक नीति- वे सार्वजनिक नीतियॉ जो सरकार द्वारा जनहित में निर्धारित की जाती हैं।

1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** असत्य, **3.** सत्य, **4.** छोटे कर्मचारियों से लेकर बड़े अधिकारियों तक के कार्यों को, **5.** सत्य, **6.** असत्य, **7.** लूथर गुलिक, **8.** प्रशासन से सम्बंधित ज्ञान का क्रमबद्ध अध्ययन व सुनिश्चित अवधारणाओं तथा परिकल्पनाओं का विकसित होना इत्यादि, **9.** सार्वजनिक क्रमिक प्रशासन, सार्वजनिक वित्तीय प्रशासन, संगठनात्मक सिद्धान्त और तुलनात्मक लोक प्रशासन, **10.** असत्य, **11.** सत्य, **12.** सत्य

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी; 2008, लोक प्रशासन, लक्ष्मीनरायण अग्रवाल आगरा, 2008,
2. व्हाइट, एल0डी0; 1968, इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्टेशन, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
3. निग्रो, फेलिक्स ए0 एवं निग्रो, लायड जी0; 1980, मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, हार्पर और रो, न्यूयार्क।

1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. पेरी, जे0; 1989, हैन्डबुक ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन फ्रांसिस्को।
2. वाल्दो, डवाइट, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशन साईसेज।

1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिए तथा इसके प्रमुख लक्षणों को स्पष्ट कीजिये।

2. लोक प्रशासन की प्रकृति के सन्दर्भ में एकीकृत एवं प्रबन्ध कीय दृष्टिकोणों को स्पष्ट कीजिये।
3. लोक प्रशासन विज्ञानं है अथवा कला? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
4. लोक प्रशासन के विषय-क्षेत्र को स्पष्ट कीजिये।
5. लोक प्रशासन विषय के महत्व पर प्रकाश डालिए। क्या भूमंडलीकरण के इस युग में इस विषय का महत्व कम हुआ है?

इकाई- 2 लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण

इकाई की संरचना

2.0 प्रस्तावना
2.1 उद्देश्य
2.2 परम्परागत दृष्टिकोण
    2.2.1 दार्शनिक उपागम
    2.2.2 वैधानिक उपागम
    2.2.3 ऐतिहासिक उपागम
    2.2.4 संस्थागत-संरचनात्मक उपागम
2.3 आधुनिक दृष्टिकोण
    2.3.1 वैज्ञानिक उपागम
    2.3.2 व्यवहारवादी उपागम
    2.3.3 पारिस्थितिकीय उपागम
    2.3.4 घटना या प्रकरण पद्धति
2.4 सारांश
2.5 शब्दावली
2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.9 निबंधात्मक प्रश्न

2.0 प्रस्तावना

प्रथम इकाई के अध्ययन के पश्चात आप लोक प्रशासन विषय के अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र तथा महत्व को समझ चुके होंगे। इस इकाई में हम आपको इस विषय के अध्ययन से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोणों या उपागमों से अवगत करायेंगे।

जिस प्रकार लोक प्रशासन की परिभाषा, प्रकृति तथा विषय क्षेत्र के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद पाया जाता है, उसी प्रकार इस बात को लेकर भी मतभेद है कि इस विषय का अध्ययन किस दृष्टि से किया जाय अर्थात दार्शनिक, वैधानिक, संस्थागत, ऐतिहासिक, या फिर वैज्ञानिक व्यवहारवादी, पारिस्थितिकीय या प्रकरण प्रधान दृष्टि से। दूसरे शब्दों में लोक प्रशासन के अध्ययन के सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण या उपागम प्रचलित हैं।

इस इकाई के अध्ययन के वाद आप लोक प्रशासन के परम्परागत एवं आधुनिक दृष्टिकोणों की समीक्षा कर सकेंगे।

2.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोणो या उपागमों से अवगत होंगे।
- इन उपागमों या दृष्टिकोणों में अन्तर कर सकेंगे।
- इनके गुण-दोषों को जान सकेंगे।
- यह तय कर सकेंगे कि लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए उपयुक्त दृष्टिकोण क्या होना चाहिए?

2.2 परम्परागत दृष्टिकोण

परम्परागत दृष्टिकोण के अंतर्गत लोक प्रशासन के अध्ययन में निम्नलिखित उपागमों को सम्मिलित किया जा सकता है-

2.2.1 दार्शनिक उपागम

यह उपागम लोक प्रशासन के अध्ययन का सबसे प्राचीन उपागम है। यह इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन कैसा होना चाहिए। महाभारत का 'शांतिपर्व', प्लेटो रचित 'रिपब्लिक', हॉब्स की रचना, 'लेवियाथन', लॉक रचित 'ट्रीटाइज ऑफ सिविल गवर्मेन्ट' इत्यादि रचनाओं में इस दृष्टिकोण की झलक मिलती है।

आधुनिक काल में लोक प्रशासन को एक दर्शन के रूप में देखने की आवश्यकता पर अनेक विद्वानों ने बल दिया है, जिनमें मार्शल डिमॉक, क्रिस्टोफर हॉगकिन्सन, चेस्टर बनार्ड, साइमन, थाम्पसन इत्यादि के नाम प्रमुख हैं। इन विद्वानों की मान्यता है कि राज्य की नीतियों को सत्यनिष्ठा एवं कुशलतापूर्वक लागू किया जाना चाहिए। प्रशासन का दर्शन प्रशासन के विज्ञान की अपेक्षा अधिक व्यापक होना चाहिए तथा लोक प्रशासन को उन सभी तत्वों की ओर ध्यान देना चाहिए, जिनका समावेश प्रशासकीय क्रिया में होता है।

इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रशासन का सम्बन्ध लक्ष्य तथा साधन दोनों से है। इन दोनों का कुशलतापूर्वक समन्वय ही प्रशासन के उत्कृष्टता की कसौटी है। दूसरे शब्दों में, लोक प्रशासन के दर्शन का प्रयोजन हमारे लक्ष्यों को पारिभाषित करना तथा उनकी प्राप्ति के लिए समुचित साधनों की खोज करना है। लोक प्रशासन का कार्य हमारे सामाजिक और भौतिक पर्यावरण के अविवेकपूर्ण तथ्यों पर मर्यादा लगाकर उन्हें नियंत्रित करना होता है। वर्तमान समय में लोक प्रशासन का मूल उद्देश्य समस्त समाज के लिए श्रेष्ठ जीवन की स्थितियों का निर्माण करना है।

चार्ल्स बेयर्ड के अनुसार, 'सभ्य शासन तथा स्वयं सभ्यता का भी भविष्य हमारी उस क्षमता पर निर्भर करता है कि हम प्रशासन को एक ऐसे विज्ञान, दर्शन और व्यवहार के रूप में विकसित कर पाते हैं या नहीं, जो सभ्य समाज के कार्यों को पूरा करने में समर्थ हो।'

इस प्रकार दार्शनिक उपागम का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है और यह अपनी परिधि में सभी प्रकार की प्रशासकीय क्रियाओं को समेट लेता है। इसका ध्येय इन क्रियाओं में अन्तर्निहित सिद्धान्तों और उद्देश्यों का पता लगाना होता है।

दार्शनिक उपागम की आलोचना इस आधार पर की जा सकती है कि इसमें केवल लोक प्रशासन के आदर्श स्वरूप का चित्रण किया गया है अर्थात प्रशासन कैसा होना चाहिए? लेकिन इससे हमें वास्तविक प्रशासकीय स्थिति का ज्ञान नहीं हो सकता। अतः यह दृष्टिकोण अपूर्ण है।

2.2.2 वैधानिक उपागम

दार्शनिक उपागम या दृष्टिकोण के पश्चात लोक प्रशासन का अध्ययन सामान्यतया वैधानिक दृष्टिकोण से करने की परम्परा रही है। यह एक व्यवस्थित उपागम है जिसका मूल यूरोप की परम्परा में व्याप्त है। यूरोप में लोक प्रशासन का विकास कानून के अंतर्गत हुआ तथा वहाँ वैधानिक दृष्टि से ही इस विषय के अध्ययन पर बल दिया जाता है। इस उपागम का विकास उस समय हुआ था जब राज्य के कार्य अत्यन्त सरल तथा क्षेत्र अत्यन्त सीमित थे।

इस उपागम में लोक प्रशासन के अध्ययन को संविधानों में प्रयुक्त भाषा, विधि संहिताओं, प्रकाशित अधिनियमों तथा न्यायिक निकायों के निर्णयों पर आधारित किया जाता है।

इस उपागम का अनुसरण सबसे अधिक जर्मनी, फ्रान्स तथा बेल्जियम जैसे यूरोपियन देशों में हुआ है। इन देशों में लोक विधि को दो प्रमुख शाखाओं में विभाजित कर दिया गया है, यथा संवैधानिक विधि तथा प्रशासकीय विधि।

इन देशों में राजनीति का अध्ययन प्रधानतः संवैधानिक विधि की दृष्टि से तथा प्रशासन का अध्ययन प्रशासकीय विधि की दृष्टि से किया जाता है। यही कारण है कि इन देशों में उच्च असैनिक अधिकारियों की भर्ती तथा प्रशिक्षण के समय वैधानिक अध्ययन के ऊपर ही अधिक बल दिया जाता है। इस उपागम को इंग्लैण्ड और अमेरिका में भी समर्थन प्राप्त हुआ है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि लोक प्रशासन वैधानिक ढ़ाँचे के अंतर्गत कार्य करता है, अतः उस ढ़ाँचे पर प्रकाश डालने के लिए यह उपागम उपयोगी है। परन्तु इस उपागम की एक सीमा यह है कि यह प्रशासन की समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि की सर्वथा उपेक्षा करता है। परिणामस्वरूप प्रशासन का वैधानिक अध्ययन औपचारिक एवं रूढिवादी बन जाता है तथा उसमें प्रशासकीय कार्यकलाप तथा व्यवहार के लिए सजीव आधारों का कोई बोध ही नहीं रह पाता।

2.2.3 ऐतिहासिक उपागम

लोक प्रशासन के अध्ययन का ऐतिहासिक उपागम भी अति प्राचीन है। भूतकालीन लोक प्रशासन का अध्ययन इसके माध्यम से किया जाता है और सूचनाऐं कालक्रम की दृष्टि से संग्रहीत की जाती हैं तथा उनकी व्याख्या की जाती है। गौरवशाली अतीत से युक्त समाज में यह पद्धति अत्यधिक लोक प्रिय और प्रशासकीय प्रणाली के अनोखेपन को निर्धारित करने में सहायक होती है।

यह दृष्टिकोण वर्तमानकालीन प्रशासकीय संस्थाओं एवं प्रणालियों को पिछले अनुभवों के आधार पर देखने की चेष्टा करता है। वास्तव में अनेक प्रशासकीय संस्थाओं को उनके अतीत के आधार पर ही समझा जा सकता है और यह ऐतिहासिक उपागम द्वारा ही संभव है। उदाहरण के लिए, भारत के वर्तमान प्रशासन को समझने के लिए यह आवश्यक है कि हम प्राचीन काल से लेकर अब तक देश में जिस प्रकार प्रशासकीय संस्थाओं का विकास हुआ है उसके बारे में जानकारी प्राप्त करें। संयुक्त राज्य अमेरिका में भी इस उपागम के माध्यम से प्रशासन की समस्याओं को समझने का प्रयत्न किया गया है। इस सम्बन्ध में एल0 डी0 व्हाइट की दो पुस्तकें 'द फेडरलिस्ट' तथा 'जेफेरसोनियन' विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहली पुस्तक 1948 में प्रकाशित हुई थी और दूसरी 1951 में तथा इनमें अमेरिकी गणतंत्र के प्रथम चालीस वर्षों के संघ प्रशासन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया हैं।

प्रशासन के ऐतिहासिक उपागम से मिलता जुलता संस्मरणात्मक उपागम है। इस उपागम का अर्थ है प्रसिद्ध तथा वरिष्ठ प्रशासकों के अनुभवों तथा उनके कार्यों के अभिलेख के अध्ययन की प्रणाली। ये संस्मरण चाहे स्वयं उन्होंने लिखे हों अथवा दूसरों ने। हर स्थिति में इनसे प्रशासकीय समस्याओं तथा निर्णय की प्रक्रिया का वास्तविक और व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें एक कठिनाई यह है कि सार्वजनिक कार्यकर्ताओ की जीवन गाथाओं में प्रशासकीय कार्यों की अपेक्षा राजनीतिक महत्व की बातों पर बल दिया जाता है। अतः इस उपागम को उपयोगी बनाने के लिए इस कमी को दूर करना अत्यन्त आवश्यक है।

ऐतिहासिक तथा संस्मरणात्मक दृष्टिकोण प्रशासन के अतीत के आधार पर उसके वर्तमान स्वरूप के कुछ पहुलुओं पर भले ही प्रकाश डालता हो, लेकिन वर्तमान प्रशासन के समक्ष कई ऐसी चुनौतियां या समस्याएँ हैं, जिनका निराकरण केवल अतीत के अनुभव के आधार पर नहीं किया जा सकता। उदाहरणस्वरूप- कम्प्यूटर के इस युग में साईबर क्राइम की समस्या। अतः केवल ऐतिहासिक पद्धति के माध्यम से लोक प्रशासन के वर्तमान स्वरूप को समग्र रूप में नहीं समझा जा सकता।

2.2.4 संस्थागत-संरचनात्मक उपागम

यह उपागम लोक प्रशासन का अध्ययन औपचारिक दृष्टि से करता है। इस दृष्टिकोण के समर्थक सार्वजनिक संस्थाओं के औपचारिक ढ़ाँचे तथा उनके कार्यों पर ध्यान देते हैं। दूसरे शब्दों में, इस उपागम के अंतर्गत सरकार के

अंगों तथा भागों का अध्ययन किया जाता है, जैसे-कार्यपालिका, व्यवस्थापिका, विभाग, सरकारी निगम, मण्डल और आयोग, बजट बनाने का रचना-तंत्र, केन्द्रीय कर्मचारी अभिकरण इत्यादि। जहाँ तक इस उपागम में इन संस्थाओं द्वारा कार्यान्वित कार्यों का उल्लेख होता है, यह यथार्थवादी है। परन्तु इस यथार्थवाद के साथ कभी-कभी संगठन एवं प्रक्रियाओं में सम्भावित सुधारों का भी सुझाव दिया जाता है।

इस दृष्टिकोण को यांत्रिक दृष्टिकोण भी कहा जाता है, क्योंकि यह प्रशासन को एक यन्त्रवत इकाई मानता है। यह संगठनों के व्यवस्थित विश्लेषण पर आधारित सबसे पुराने निरूपणों में से एक है, इसलिए इसे परम्परागत या शास्त्रीय दृष्टिकोण की भी संज्ञा दी जाती है। हेनरी फेयोल, लूथर गुलिक, एल0 एफ0 उर्विक, एम0 पी0 फॉलेट, ए0 सी0 रैले, जे0 डी0 मूने आदि विद्वान इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं।

इस दृष्टिकोण के अनुसार, प्रशासन, प्रशासन होता है, चाहे उसके द्वारा किसी प्रकार का कार्य किसी परिप्रेक्ष्य में क्यों न सम्पादित किया जाय। इसमें अतिरिक्त प्रशासकीय पद्धति के महत्वपूर्ण तत्वों तथा सभी प्रशासकीय संरचनाओं में सामान्य विशेषताओं या तत्वों को स्वीकार किया जाता है। इसका उद्देश्य प्रशासनिक संगठन के निश्चित सिद्धान्तों का विकास करना है।

हेनरी फेयोल ने अपनी पुस्तक 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल एडमिनिस्ट्रेशन' में प्रशासन के पांच कार्यों- नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय एवं नियंत्रण का उल्लेख किया है। इस सन्दर्भ में व्यापक विश्लेषण लूथर गुलिक और एल0 एफ0 उर्विक द्वारा 1937 में सम्पादित 'पेपर्स ऑन द साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में किया गया। गुलिक ने प्रशासन के कर्तव्यों को 'पोस्डकार्ब' शब्द में संग्रहीत किया है जिसका प्रत्येक अक्षर प्रशासन के विशेष कार्य का उल्लेख करता है-

1. Planning; नियोजन- संपन्न किये जाने वाले कार्यों का निर्धारण तथा उद्यम के निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्हें संपन्न करने के तरीकों का निर्धारण।
2. Organization; संगठन बनाना- सत्ता के औपचारिक स्वरूप की स्थापना करना तथा उनके माध्यम से निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कार्य को विभिन्न भागों में व्यवस्थित, पारिभाषित एवं समन्वित करना।
3. Staffing; कर्मचारियों की नियुक्ति करना- कर्मचारियों की भर्ती और प्रशिक्षण की व्यवस्था तथा उनके कार्यों के अनुकूल परिस्थितियों का निर्माण करना।
4. Direction; निर्देशन करना- निर्णय लेना और उन्हे विशिष्ट और सामान्य आदेशों और निर्देशों का रूप प्रदान करना।
5. Coordination; समन्वय- कार्य के विभिन्न भागों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करने का सबसे महत्वपूर्ण कार्य।
6. Reporting; प्रतिवेदन- कार्य स्थिति के विषय में कार्यपालिका को सूचित करना जिसमें स्वयं को तथा अधीनस्थो को आलेखों, अनुसंधान तथा निरीक्षण के द्वारा सूचित करना।
7. Budgeting; बजट बनाना- आर्थिक येाजना, लेखांकन तथा नियंत्रण के रूप में बजट बनाने संबंधित सभी कार्य।

अपने गुण व दोषों के साथ पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण प्रशासनिक प्रक्रियाओं में एक प्रचलित दृष्टिकोण रहा है। संस्थात्मक-संरचनात्मक दृष्टिकोण की कई दृष्टियों से आलोचना की जाती है-

1. हरबर्ट साइमन के अनुसार इस दृष्टिकोण में यह स्पष्ट नहीं होता कि किस विशेष स्थिति में कौन सा सिद्धान्त महत्व देने योग्य है। उन्होंने प्रशासन के सिद्धान्तों को प्रशासन की कहावतें मात्र कहा है।

2. इस दृष्टिकोण से सम्बन्धित सभी विचारकों में प्रबन्ध की ओर झुकाव नजर आता है। वे केवल प्रबन्ध की समस्याओं से चिन्तित थे न कि प्रबन्ध तथा व्यक्तियों से संबंधित अन्य संगठनात्मक समस्याओं के विषय से।
3. यह एक संकुचित विचार है जो संगठन में उनके व्यक्तियों को उनके साथियों से अलग रखकर निरीक्षण करने पर बल देता है। यह कार्य करने वाले मनुष्यों की अपेक्षा कार्य के विषय में अधिक चिन्तित है।
4. इस दृष्टिकोण से लोक प्रशासन के अर्थ एवं क्षेत्र का पूरा बोध नहीं होता और न ही लोक प्रशासकों के मार्गदर्शन की दृष्टि से उनका महत्व है।
5. उपर्युक्त कमियों के बावजूद संस्थागत-संरचनात्मक दृष्टिकोण की पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती।
6. इस दृष्टिकोण ने ही सर्वप्रथम इस बात पर बल दिया कि प्रशासन को एक स्वतन्त्र क्रिया मानकर उसका बौद्धिक अन्वेषण किया जाना चाहिए।
7. सबसे पहले इस दृष्टिकोण ने ही प्रशासन के क्षेत्र में अवधारणाओं और शब्दावली पर बल दिया, जो इस क्षेत्र के परवर्ती शोध का आधार बनी।
8. इस दृष्टिकोण की कमियों ने संगठन तथा उसके व्यवहार के भावी शोध की प्रेरणा प्रदान की।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि संस्थागत संरचनात्मक दृष्टिकोण लोक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है। किन्तु इस उपागम से किसी संगठन के व्यावहारिक रूप का सही ज्ञान नहीं होता।

2.3 आधुनिक दृष्टिकोण

लोक प्रशासन के अध्ययन के आधुनिक दृष्टिकोण के अंतर्गत निम्नलिखित उपागमों को सम्मिलित किया जा सकता है-

2.3.1 वैज्ञानिक अथवा तकनीकी उपागम

बीसवीं सदी के आरंभ में संयुक्त राज्य अमेरिका के 'वैज्ञानिक प्रबन्ध आंदोलन' ने लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए वैज्ञानिक उपागम के प्रयोग को शामिल किया। वैज्ञानिक प्रबन्ध वस्तुतः उस प्रयास का परिणाम था, जिसके द्वारा सरकार के कार्यों के परिचालन में वैज्ञानिक चिन्तन को लागू किया गया। इस आंदोलन का सूत्रपात एफ0 डब्ल्यू0 टेलर नामक एक इंजीनियर ने किया था। कालान्तर में अमेरिका में ऐसे लोगों की संख्या में पर्याप्त रूप से वृद्धि हो गयी जो यह मानते थे कि मनुष्यों के प्रबन्ध का कार्य यथार्थ में एक वैज्ञानिक कार्य है जिसके लिए ज्ञान का एक निकाय निर्मित किया जा सकता है। यह ज्ञान कम या अधिक मात्रा में पूर्ण हो सकता है और यह पर्यवेक्षण तथा अनुभव के विश्लेषण पर आधारित होता है। इस ज्ञान के चार भाग हैं, पहला- उन कार्यों का विश्लेषण जिन्हें करने के लिए लोगों को कहा जाता है, दूसरा- व्यक्तियों का उन कार्यों के साथ समायोजन, तीसरा- मानवीय अनुभव से प्राप्त ज्ञान के आधार पर कार्यों को व्यवस्थित तथा सह-वर्णित करना तथा चौथा- निर्धारित कार्यों का प्रत्येक समूह के साथ समायोजन। इसके अंतर्गत नेतृत्व, संचार, सहभाग तथा मनोबल को शामिल किया जा सकता है।

प्रबन्ध के अध्ययन का प्रारम्भ व्यापार के साथ हुआ था, परन्तु अब उसका प्रयोग बड़ी मात्रा में लोक कार्यों के प्रबन्ध के लिए भी किया जाने लगा है। उदाहरण के लिए, अब मुख्य कार्यपालिका के लिए जनरल मैनेजर तथा व्यवस्थापिका के लिए संचालक मण्डल शब्दावलियों को प्रयुक्त किया जाने लगा है। स्पष्टतः इन शब्दावलियों को लोक प्रशासन के अध्ययन में नूतन प्रवृतियों का परिचायक समझा जाना चाहिए।

इस दृष्टिकोण के समर्थक प्रशासन से सम्बद्ध समस्याओं के ऊपर वैज्ञानिक ढंग से विचार करते हैं तथा वे उन समस्याओं का समाधान उन यंत्रों के माध्यम से खोजने का प्रयत्न करते है जिनका प्रयोग वैज्ञानिकों द्वारा किया जाता है।

डेविड लिलियनथल के अनुसार आज जनता की यह मांग है कि उनके देश की सरकारें आधुनिक प्रबन्ध के मूल सिद्धान्तों को अमल में लाये। इस प्रकार आज के सन्दर्भ में महत्वपूर्ण बात केवल यह नहीं है कि कार्य का निष्पादन किस प्रकार से हो, परन्तु यह भी है कि कौन सा कार्य किया जाय। इस आंदोलन ने कुछ विशिष्ट प्रकार की पद्धतियों को विकसित करने में सहायता पहुँचायी है। जैसे- प्रकरण पद्धति तथा सांख्यिकीय परिमाप विधि। परन्तु इस पद्धति की अपनी सीमाऐं हैं।

यहाँ पर आपको यह ध्यान रखना होगा कि लोक प्रशासन के अध्ययन में हमें वैज्ञानिक उपागम या दृष्टिकोण के प्रयोग से उतने परिशुद्ध परिणामों की अपेक्षा नहीं करनी चाहिए, जो हमें प्राकृतिक विज्ञानों से प्राप्त होते हैं। यहॉ उल्लेखनीय बात यह है कि लोक प्रशासन के अध्ययन को राजनीति विज्ञान, अर्थशास्त्र, आचारशास्त्र तथा मनोविज्ञान से अलग नहीं किया जा सकता।

2.3.2 व्यवहारवादी उपागम

लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी उपागम इस विषय के परम्परागत उपागम के प्रति असंतोष के फलस्वरूप विकसित हुआ। यद्यपि इस उपागम का आरम्भ मानव सम्बन्ध आंदोलन के साथ ही 1930 तथा 1940 वाले दशक में हुआ, लेकिन द्वितीय विश्व युद्ध के बाद इसकी महत्ता काफी बढ गयी और उसने लोक प्रशासन के मुख्य उपागम का दर्जा प्राप्त कर लिया।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में व्यवहारवादी उपागम को विकसित करने का मुख्य श्रेय हर्बट साइमन को जाता है। इसके अतिरिक्त पीटर एम0 ब्लान, में ट्रन, वेडनर, रिग्स, एलम, राबर्ट ए0 डॉहल आदि का नाम भी इसके समर्थकों में लिया जा सकता है। इस विषय पर शुरू में लिखी गयी पुस्तकों में साइमन की पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर' सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसके अतिरिक्त 1950 में साइमन तथा उसके दो सहयोगियों द्वारा लिखी गयी पुस्तक 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रकाशित होने के बाद इस उपागम का प्रभाव और बढ गया।

लोक प्रशासन के व्यवहारवादी दृष्टिकोण की निम्नलिखित विशेषताऐं हैं-

1. व्यवहारवादी उपागम का यह आग्रह है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध प्रशासन में संलग्न मनुष्यों के व्यक्तित्व तथा सामूहिक व्यवहार से होना चाहिए। व्यक्तिगत तथा सामूहिक इच्छा, आकांक्षा एवं मूल्य प्रशासन में व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते है, इसलिए प्रशासन की समुचित जानकारी के लिए मानवीय तत्व को समझना एवं ध्यान में रखना आवश्यक है। हर्बर्ट साइमन के मत में वास्तविक एवं अर्थपूर्ण प्रशासनिक अध्ययन के लिए लोक प्रशासन के विद्वानों को लोक नीति पर कम ध्यान देकर उन लोगों के व्यवहार पर ध्यान देना चाहिए जो लोक नीति को पारिभाषित करते है और इस सम्बन्ध में निर्णय लेते हैं।
2. यह उपागम संगठन के औपचारिक रूप पर ध्यान न देकर इसके वास्तविक कार्यकरण पर ध्यान देता है। इसके समर्थकों का ऐसा विश्वास है कि संगठन के वास्तविक कार्यकरण पर ध्यान देकर इस सम्बन्ध में कुछ सामान्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।
3. इसके अंतर्गत संगठन के सदस्यों के बीच अनौपचारिक सम्बन्धों एवं अनौपचारिक संचार प्रतिमानों पर अधिक बल दिया जाता है। परम्परागत उपागमों के अंतर्गत श्रेष्ठ पदाधिकारियों द्वारा जारी किये गये औपचारिक आदेश एवं सर्कुलर तथा नीचे के पदाधिकारियों द्वारा श्रेष्ठ पदाधिकारियों को ही दोनों प्रकार

के पदाधिकारियों के बीच सम्बन्ध एवं संचार साधन थे, परन्तु व्यवहारवादी उपागम के अंतर्गत श्रेष्ठ पदाधिकारियों एवं अधीनस्थ पदाधिकारियों के बीच सम्पर्क एवं संचार के अनौपचारिक साधन भी उतने ही महत्वपूर्ण माने जाने लगे हैं।

4. यह उपागम परिमाणामात्मक पद्धति के इस्तेमाल पर बल देता है। प्राकृतिक विज्ञान की भाँति प्रयोगशाला तथा अन्य सांख्यिकी तरीकों के इस्तेमाल के माध्यम से यह निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचने का प्रयास करता है। इस प्रकार यह पद्धति प्रशासकीय समस्याओं के अध्ययन एवं उनके समाधान के लिए वैज्ञानिक पद्धति पर बल देती है। यह पर्यवेक्षण, साक्षात्कार, सर्वेक्षण, प्रकरण पद्धति इत्यादि विधियों के प्रयोग को आवश्यक मानता है।
5. यह अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण में विश्वास करता है। व्यवहारवादियों का मत है कि लोक प्रशासन का अध्ययन अन्य सामाजशास्त्रों से बिल्कुल पृथक ढंग से नहीं किया जा सकता, क्योंकि मानव क्रियाओं के मूल में ऐसे अभिप्रेरक पाये जाते हैं, जिन्हें समाजशास्त्र, आर्थिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक वातावरण से प्रेरणा मिलती है। अतः इसका अध्ययन तभी संभव है जब समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र तथा मनोविज्ञान जैसे सामाजशास्त्रों की सहायता ली जाय।
6. इस उपागम का उद्देश्य मूल्यों पर आधारित निर्णयों के स्थान पर यथार्थ पर आधारित निर्णयों को विकसित करना है।
7. यह दृष्टिकोण लोक प्रशासन के औपचारिक संगठन एवं वैधानिक संरचना की अनदेखी करता है, जोकि उचित नहीं है। यदि एक ओर मानवीय व्यवहार को समझे बिना प्रशासनिक संगठन को समझना मुश्किल है, तो दूसरी ओर यह ध्यान देना भी आवश्यक है कि संगठन का वैधानिक एवं औपचारिक रूप भी मानव व्यवहार को प्रभावित करता है।
8. यह प्रशासनिक संगठन को राजनीतिक वातावरण से स्वायत्त मानकर राजनीतिक प्रक्रिया की उपेक्षा करता है। जबकि प्रशासनिक व्यवस्था एक राजनीतिक व्यवस्था की उप-व्यवस्था है। राजनीति तथा राजनीतिक शक्ति ही प्रशासन के लक्ष्य निर्धारित करते हैं।
9. यह लोक प्रशासन के अध्ययन को मूल्य स्वतंत्र तथा तटस्थ बनाना चाहता है, जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं। ऐसा सिद्धान्त जो समाज के व्यापक हित में वांछित और अवांछित के प्रश्न की उपेक्षा करता है, न तो सही प्रकार से विकास को गति दे सकता है और न ही सही परिप्रेक्ष्य दे सकता है।
10. यह न तो संगठन की कार्य पद्धति की बेहतरी और न ही संगठन में निर्णय निर्माण प्रक्रिया को सुधारने के लिए कोई ठोस सुझाव देता है।
11. अन्तर-अनुशासनात्मक दृष्टिकोण पर बल देकर व्यवहारवाद लोक प्रशासन के क्षेत्र को इतना व्यापक बना दिया है कि यह तय कर पाना मुश्किल है कि इसमें किन विषयो को सम्मिलित किया जाय तथा किन विषयों को नहीं।
12. लोक प्रशासन में परिमापीकरण तथा पर्यवेक्षण उस हद तक सम्भव नहीं है जिस हद तक यह प्राकृतिक विज्ञानों में सम्भव है।

उपर्युक्त कमियों के बावजूद व्यवहारवादी उपागम लोक प्रशासन का एक लोकप्रिय उपागम बन चुका है। इस उपागम की लोकप्रियता ने कई नई अध्ययन प्रणालियों के विकसित हो ने में सहायता पहुँचाई है।

2.3.3 पारिस्थितिकीय उपागम

इस उपागम का उद्-भव तृतीय विश्व की प्रशासनिक समस्याओं के अध्ययन के सन्दर्भ में हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमेरिका के अनेक देश औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुए। उनके समक्ष जन आंकाक्षाओं की पूर्ति हेतु राष्ट्र निर्माण तथा सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन की बड़ी चुनौती थी। पश्चिमी विद्वानों ने जो इन देशों में बहुत से देशों के सलाहकार के रूप में कार्य कर रहे थे, अनुभव किया कि पश्चिमी संगठनात्मक प्रतिमान तृतीय विश्व के समाजों में वास्तविकता की व्याख्या करने में असफल थे। इसी सन्दर्भ में पारिस्थितकीय दृष्टिकोण का विकास हुआ।

यह दृष्टिकोण इस मान्यता पर आधारित है कि प्रशासन एक निश्चित परिवेश या वातावरण में रहकर कार्य करता है। प्रशासन उस परिवेश को प्रभावित करता है तथा स्वयं उससे प्रभावित भी होता है। अतः प्रशासन को समझने के लिए दोनों के बीच की पारस्परिक क्रिया को समझना आवश्यक है।

'पारिस्थितिकीय' शब्द जीव विज्ञान से लिया गया है जो जीवों तथा उनके परिवेश के अर्न्तसम्बन्धों की व्याख्या करता है। जिस प्रकार एक पौंधे के विकास के लिए एक विशेष प्रकार की जलवायु मिट्टी, नमी तथा तापमान आदि की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार किसी समाज का विकास उसके अपने इतिहास, आर्थिक संरचना, मूल्यों, राजनतिक व्यवस्था आदि से जुड़ा होता है। अतः लोक प्रशासन की प्रकृति तथा समस्याओं को समझने के लिए उस सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है, जिसमें प्रशासन कार्य करता है।

जे0 एम0 गॉस, राबर्ट ए0 डाहल तथा राबर्ट ए0 मर्टन ने लोक प्रशासन के अध्ययन में इस दृष्टिकोण की शुरूआत की थी, लेकिन इस दिशा में सबसे महत्वपूर्ण योगदान एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स का रहा है।

रिग्स के अनुसार प्रत्येक समाज की अपनी कुछ विलक्षण विशेषताऐं होती हैं जो उसकी उप-व्यवस्थाओं को प्रभावित करती है। चूँकि पश्चिमी देशों का समाजिक-आर्थिक परिवेश तृतीय विश्व के देशों से भिन्न रहा है, इसलिए विकसित देशों के लिए निर्मित सिद्धान्त या प्रतिमान तृतीय विश्व के देशों में लागू नहीं होते, इसलिए रिग्स ने तृतीय विश्व के देशों के सन्दर्भ में प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विश्लेषणात्मक ढाँचे को विस्तृत किया है।

रिग्स ने वृहद स्तर पर मुख्य व्यवस्थाओं को श्रेणीबद्ध किया तथा उन श्रेणियों को प्रशासन जैसी सूक्ष्म या छोटी उप-व्यवस्थाओं पर लागू करने का प्रयास किया। उन्होंने अपने श्रेणीकरण के लिए व्यापक व्यवस्थाओं को लिया तथा विकासशील समाजों में परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए तीन आदर्श रूपों- बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय तथा अल्पकार्यात्मक को विकसित किया। उनके अनुसार, एक बहुकार्यात्मक समाज में एक अकेला संगठन या संरचना बहुत से कार्य करती है। इसके विरूद्ध एक अल्पकार्यात्मक समाज में निश्चित कार्य करने के लिए अलग-अलग संरचनाऐं बनाई जाती हैं। परन्तु इन दोनों के बीच में अनेक ऐसे समाज हैं, जिनमें बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक समाज दोनों की विशेषताऐं लगभग समान पायी जाती हैं। ऐसे समाजों को समपार्श्वीय कहा जाता है।

रिग्स इस बात पर बल देता है कि कोई भी समाज पूर्ण रूप से बहुकार्यात्मक या अल्पकार्यात्मक नहीं कहा जा सकता। सामान्यतः सभी समाज प्रकृति में संक्रमणकालीन होते हैं। प्रत्येक समाज चाहे वह बहुकार्यात्मक है या अल्पकार्यात्मक, उसका चरित्र विभिन्न संरचनाओं एवं उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों की प्रकृति पर निर्भर करता है।

अपने विश्लेषण में रिग्स ने बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक प्रारूपों का विकासशील देशों के समपार्श्वीय वस्तुस्थिति की व्याख्या करने के साधन के रूप में प्रयोग किया है।

रिग्स के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की कई आधारों पर आलोचना की जाती है-

1. यह प्रारूप एक संतुलन प्रारूप है जो व्यवस्था को सुरक्षित रखने में तो सहायता देगा, परन्तु व्यवस्था में कोई परिवर्तन करने में नहीं। यह सामाजिक परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया के विश्लेषण में सहायक नहीं है।
2. विशेष समाजों में रिग्स के प्रारूपों को क्रियान्वित करने में मूल्यांकन की समस्या उत्पन्न होती है। मूल्यांकन के अभाव में समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों की पहचान कठिन हो जाती है। सत्य तो यह है कि रिग्स के प्रारूप कुछ मान्यताओं पर आधारित है। परन्तु किसी अनुभव परस्त प्रमाण के अभाव में इस प्रकार की मान्यताओं को चुनौती दी जा सकती है।
3. रिग्स ने एक समपार्श्वीय समाज के सकारात्मक चरित्र को इतना महत्व नहीं दिया जितना इसके नकारात्मक चरित्र को।
4. इस उपागम में कई ऐसे नये शब्दों का प्रयोग किया जाता है जिनके सही अर्थ को समझना मुश्किल है।
5. समाजों का बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों के रूप में वर्गीकरण पूँजीवादी व्यवस्था में अंतनिर्हित मूल्यों पर आधारित है।

उपर्युक्त आलोचनाओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण विषय सामग्री तथा विश्लेषण दोनों दृष्टि से एक समन्वित दृष्टिकोण है। यह विकासशील देशों की प्रशासनिक प्रक्रिया के परीक्षण में हमारी मदद करता है।

2.3.4 घटना या प्रकरण पद्धति

लोक प्रशासन की अध्ययन पद्धतियों में घटना या प्रकरण पद्धति एक अमेरिकी देन है। घटना या प्रकरण का अर्थ है- प्रशासन की कोई भी विशिष्ट समस्या जो किसी प्रशासकीय अधिकारी को हल करनी पड़ी हो तथा वास्तव में हल कर ली गयी हो। इस प्रकार की समस्या का अध्ययन करने के लिए घटना की परिस्थितियों का अभिलेख तैयार कर लिया जाता है। साथ ही यह ब्यौरा संग्रह किया जाता है कि निर्णय करने के लिए किन प्रक्रियाओं का आश्रय लिया गया और क्या कदम उठाये गये तथा जो भी निर्णय लिया गया, उसका तार्किक आधार क्या था? इसके उपरान्त परिणामों के आधार पर निर्णय का मूल्यांकन किया जाता है।

1940 में संयुक्त राज्य अमेरिका की सामाजिक अनुसंधान परिषद की लोक प्रशासन समिति ने घटना अध्ययन प्रकाशित करने का कार्य आरम्भ किया। अब तक नीति निर्माण, पुनर्संगठन तथा ऐसे ही अन्य अनके समस्याओं से सम्बद्ध कई घटनाओं की अध्ययन प्रकाशित की जा चुकी हैं।

इस पद्धति के अनुगामियों के मन में यह आशा है कि लोक प्रशासन के विभिन्न क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में घटना अध्ययन किये जाने के उपरान्त प्रशासन के विषय में अनुभवसिद्ध सिद्धान्तों का प्रतिपादन सम्भव हो जायेगा तथा शायद यह भी मुमकिन हो जायेगा कि ये घटना अध्ययन न्यायिक प्रथाओं और दृष्टान्तों की भाँति सही समाधान खोजने के काम में प्रशासक के लिए सहायक सिद्ध हो सके।

लेकिन इस पद्धति की भी अपनी सीमाऐं हैं। किसी घटना या प्रकरण विशेष के अध्ययन के आधार पर ही किसी सर्वमान्य या सर्वकालिक सिद्धान्त का प्रतिपादन संभव नहीं है। यहीं कारण है कि यह उपागम अभी तक लोक प्रशासन के अध्ययन का प्रमुख उपागम नहीं हो सका है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोक प्रशासन के अध्ययन के चार परम्परागत उपागमों के नाम लिखिए।
2. दार्शनिक उपागम इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन कैसा होना चाहिए? सत्य/असत्य
3. संस्थागत उपागम लोक प्रशासन का अध्ययन अनौपचारिक दृष्टि से करता है। सत्य/असत्य

4. 'पोस्डकार्ब' शब्द का अर्थ बताइए।
5. वैज्ञानिक उपागम के प्रमुख प्रणेता कौन है?
6. वैज्ञानिक प्रबन्ध पर्यवेक्षण एवं अनुभव के विश्लेषण पर आधारित है। सत्य/असत्य
7. व्यवहारवादी उपागम संगठन के औपचारिक रूप पर ध्यान देता है। सत्य/असत्य
8. 'एडमिनिस्ट्रेटीव विहेवियर' नामक पुस्तक के रचयिता कौन है?
9. पारिस्थितिकीय उपागम का विकास किन प्रशासनिक समस्याओं के अध्ययन के सन्दर्भ में हुआ?
10. रिग्स के अनुसार सामान्यतः सभी समाज प्रकृति में संक्रमणकालीन होते हैं। सत्य/असत्य
11. घटना या प्रकरण पद्धति के आधार पर किसी सर्वकालिक या सर्वमान्य सिद्धान्त का प्रतिपादन संभव है। सत्य/असत्य

2.4 सारांश

उपर्युक्त विवेचनाओं से स्पष्ट है कि जहाँ परम्परागत रूप में लोक प्रशासन का अध्ययन दार्शनिक, वैधानिक, संस्थागत तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से किया जाता रहा है, वहीं आधुनिक काल में इस विषय को वैज्ञानिक, व्यवहारवादी, पारिस्थितिकीय तथा घटना अध्ययन पद्धतियों के माध्यम से समझने का प्रयत्न किया गया है। लेकिन कोई भी अध्ययन पद्धति अपने आप में पूर्ण नहीं है। अतः लोक प्रशासन का अध्ययन भली प्रकार विभिन्न उपागमों के समन्वय से ही सम्भव है। वास्तव में इन उपागमों की एक दूसरे से पृथकता और विरोध नहीं है, अपितु वे एक दूसरे के पूरक एवं सहायक हैं।

2.5 शब्दावली

उपागम- इसे अभिगम या दृष्टिकोण भी कहा जाता है।

संरचना- व्यवहार का वह स्वरूप जो किसी सामाजिक प्रणाली की मानक विशेषता बन गया हो। औपचारिक

परिमाणात्मक पद्धति- ऐसी पद्धति जिसमें गणित एवं साख्यिकी की विधियों के प्रयोग पर बल दिया जाता है।

अन्तर-अनुशासनात्मक- जिसमें एक विषय का ज्ञान अन्य विषयों के ज्ञान से संबंधित होता है।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. दार्शनिक, वैधानिक, ऐतिहासिक, संस्थागत-संरचनात्मक, **2.** सत्य, **3.** असत्य, **4.** उपभाग 2.3.4 देखिए, **5.** एफ0डब्लू0टेलर, **6.** सत्य, **7.** असत्य, **8.** हर्बर्ट साइमन, **9.** तृतीय विश्व, **10.** सत्य, **11.** असत्य

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य मोहित, (1998), न्यू हॉरिजन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
2. गोलम्बिस्की रॉवर्ट डी, (1977), पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डेवलपिंग डिसिप्लिन, माइसेल डेकर, न्यूयार्क।
3. बेलौन, कार्ल टी, (1980), आर्गनाईजेशन थ्योरी एण्ड न्यू पब्लिक एडमिनिस्टेशन, एलिन एण्ड बैकन (इंक) बोस्टन।
4. शरण, परमात्मा एवं चतुर्वेदी दिनेशचन्द (1985) लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ।

2.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रसाद, रविन्द्र डी, संपादित, 1989, एडमिनिस्ट्रेटिव थिंकर्स, स्टरलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली।
2. रिग्स, फ्रेड डब्लू, 1964, एडमिनिस्ट्रेशन इन डेवलपिंग कन्ट्रीज, द थ्योरी ऑफ प्रिजमैटिक सोसाइटी, हॉघटोन मिफलिन, बोस्टन।

2.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के अध्ययन के परम्परागत उपागमों औरआधुनिक दृष्टिकोण पर प्रकाश डालिए।
2. लोक प्रशासन के अध्ययन में व्यवहारवादी उपागम कितना उपयोगी है? व्याख्या कीजिए।
3. एफ0 डब्लू0 रिग्स द्वारा प्रस्तुत पारिस्थितिकीय उपागम की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।
4. लोक प्रशासन के अध्ययन में वैज्ञानिक उपागम की महत्ता पर प्रकाश डालिए।
5. घटना या प्रकरण पद्धति पर एक निबंध लिखिए।

इकाई- 3 लोक प्रशासन और निजी प्रशासन

इकाई की संरचना

3.0 प्रस्तावना
3.1 उद्देश्य
3.2 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में समानताऐं
3.3 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर
3.4 उदारीकरण के अंतर्गत लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन
3.5 सारांश
3.6 शब्दावली
3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
3.10 निबंधात्मक प्रश्न

3.0 प्रस्तावना

दूसरी इकाई में आपको लोक प्रशासन के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोणों से अवगत कराया गया। इस इकाई में हम आपको लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच अन्तर को स्पष्ट करेंगे।

सामान्यतया प्रशासन को 'लोक प्रशासन' एवं 'निजी प्रशासन' में वर्गीकत किया जाता है तथा यह माना जाता है कि कुछ समानताओं के बावजूद दोनों प्रकार के प्रशासन में मौलिक अन्तर है, परन्तु कुछ ऐसे भी विचारक हैं, जो यह मानते हैं कि सभी प्रकार के प्रशासन एक से होते हैं और सबकी आधारभूत विशेषताऐं एक सी होती हैं। दूसरे शब्दों, में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में कोई मौलिक अन्तर नहीं है। ऐसी स्थिति में आपके मन में स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठ रहा होगा कि वास्तव में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन एक जैसे हैं या दोनों में कुछ आधारभूत अन्तर है? कुछ विद्वानों का मानना है कि इन दोनों प्रकार के प्रशासन में जो अन्तर भी था वह उदारीकरण के इस युग में मिट चुका है। ऐसी स्थिति में इस दोनों प्रकार के प्रशासन को एक ही दृष्टि से देखा जाना चाहिए। अब आप यह जानने को उत्सुक होंगे कि उदारीकरण का 'लोक प्रशासन' एवं निजी प्रशासन के संबंधों पर क्या प्रभाव पड़ा है?

3.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप-

- लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन की समानताओं को समझ सकेंगे।
- इनके बीच अन्तर कर सकेंगे।
- उदारीकरण के अंतर्गत लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के स्वरूपों पर प्रकाश डाल सकेंगे।

3.2 लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में समानताऐं

हेनरी फेयोल, एम0 पी0 फॅालेट तथा एल0 उर्विक जैसे कुछ विचारक हैं जो यह मानते हैं कि सभी प्रकार के प्रशासन एक से होते हैं और सबकी आधारभूत विशेषताऐं एक समान होती है। वे लोक और निजी प्रशासन में कोई अन्तर नहीं मानते हैं। हेनरी फेयोल के शब्दों में ''अब हमारे समक्ष कोई प्रशासनिक विज्ञान नहीं है, बल्कि केवल एक है जिसे लोक तथा निजी दोनों ही प्रशासनों के लिए समान रूप से भली-भाँति प्रयोग किया जा सकता है।''

फेयोल के विचार से सहमत होते हुए और उस विचार को और अधिक स्पष्ट करते हुए उर्विक ने लिखा है कि ''यह बात गम्भीरतापूर्वक सोचना कठिन है कि पिछे से काम करने वाले व्यक्तियों का एक अलग जीव रसायन विज्ञान होता है, प्राध्यापकों का एक पृथक शरीर क्रिया ज्ञान तथा राजनीतिज्ञों का एक अलग रोग मनोविज्ञान होता है। वस्तुतः ये सब व्यक्तियों के लिए समान रूप से एक जैसे ही होते हैं।'' इसी प्रकार उर्विक के अनुसार, किसी संगठन के विशेष स्वरूप के प्रयोजनों के आधार पर प्रबन्ध प्रशासन का उप-विभाजन करना गलत है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि सार्वजनिक तथा निजी दोनों ही प्रशासनों में बहुत सी बातें समान हैं। दोनों में अन्तर मात्रा का है, प्रकार का नहीं।

लोक तथा निजी दोनों प्रशासनों की समानताओं को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है-

1. प्रशासन में चाहे वह व्यक्तिगत हो या सार्वजनिक, समान रूप से संगठन की आवश्यकता होती है। यह संगठन लगभग समान सिद्धान्तों तथा गुणों पर आधारित होता है और प्रशासन का शरीर है। यदि मानवीय एवं भौतिक साधनों का उचित संगठन न किया जाए तो प्रशासन के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती।
2. दोनों प्रकार के प्रशासन की कार्यप्रणाली लगभग समान होती है। बड़े पैमाने के एक व्यावसायिक उद्यम का प्रशासन तथा एक बड़ी सरकारी सेवा का प्रशासन न्यूनाधिक रूप से एक ही रीति से सम्पन्न किया जाता है। दोनों प्रकार के प्रशासन में नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण की आवश्यकता होती है।
3. प्रबन्ध एवं संगठन सम्बन्धी अनके तकनीकें दोनों ही प्रकार के प्रशासन में समान रूप से अपनायी जाती है। फाइलें रखना, रिपोर्ट तैयार करना, नोटिंग तथा ड्राफ्टिंग करना, आदेश देना, हिसाब-किताब रखना, आंकड़े उपलब्ध करना आदि की पद्धति सार्वजनिक तथा निजी दोनों प्रकार के प्रशासनों में समान रूप से देखने को मिलती है।
4. दोनों प्रकार के प्रशासन के उत्तरदायित्व समान होते हैं। इसका कारण यह है कि पदाधिकारियों के ध्येय एक जैसे रहते हैं- अपने नियत कार्य-क्षेत्र में काम करते हुए उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक सामग्री को इस प्रकार प्रयुक्त करना, ताकि यथासम्भव अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकें।
5. दोनों ही प्रकार के प्रशासन की सफलता के लिए जनसंपर्क आवश्यक है। प्रजातंत्र में लोक प्रशासन जनता के प्रति उत्तरदायी होता है। निजी प्रशासन में भी प्रचार द्वारा जनता से निकट सम्पर्क स्थापित किया जाता है। यदि प्रबन्धकों से जनता का विश्वास उठ जाता है तो व्यापार को हानि उठानी पड़ती है।
6. दोनों ही प्रकार का प्रशासन कर्मचारियों की योग्यता और दक्षता पर निर्भर करता है। ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा, परिश्रम, कुशलता, बौद्धिक स्तर, नेतृत्व आदि के गुण दोनों ही प्रशासनों के कर्मचारियों के लिए समान रूप से आवश्यक होते हैं। अच्छे कुशल सरकारी कर्मचारियों के कार्यमुक्त होने पर निजी उद्योग पुनः नियुक्ति देते हैं।

7. आधुनिक युग में निजी प्रशासन के क्षेत्र में कर्मचारियों की नियुक्ति, पदोन्नति, वेतनक्रम, सेवानिवृत्ति, पदच्युत करने के नियम तथा पेंशन आदि की वही व्यवस्था अपनायी जाती है जो सार्वजनिक क्षेत्र में अपनायी जाती है। नौकरशाही ढ़ाँचा, प्रशासनिक ज्ञान, नियुक्ति की परीक्षा पद्धति, शिकायतों का निपटारा तथा अनुशासन के नियम आदि ने व्यक्तिगत सेवाओं को सरकारी सेवाओं के समान बना दिया है।
8. दोनों ही प्रकार के प्रशासन समान रूप से विकास की ओर अग्रसर होते हैं। यह विकास आन्तरिक संगठन की दृढता और कुशलता पर निर्भर करता है। इसके लिए नये-नये सिद्धान्त, तकनीकें एवं उपकरण अपनाये जाते हैं तथा प्रशासन को आधुनिकतम बनाया जाता है। वस्तुतः दोनों प्रकार के प्रशासन को अधिक क्षमताशील तथा उन्नतिशील बनाने के लिए अन्वेषण की आवश्यकता होती है। नवीन अन्वेषणों द्वारा नवीन सिद्धान्त, विधाएँ तथा उपकरण आदि उपलब्ध कराये जाते हैं, जिनके परिणामस्वरूप कार्यक्षमता में वृद्धि होती है।

इस प्रकार लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन कई दृष्टियों से समान है।

3.3 लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में अन्तर

कुछ समानताओं के वावजूद लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन एक दूसरे से भिन्न है। लोक प्रशासन में ऐसे अनेक लक्षण हमें देखने को मिलते है जो निजी प्रशासन में देखने में नहीं आते। लोक तथा निजी प्रशासन के बीच असमानताओं के पक्ष में साइमन, एपलबी, सरजोसिया स्टाम्प आदि ने अपने विचार प्रकट किए हैं।

हर्बर्ट साइमन के अनुसार ''सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में सार्वजनिक प्रशासन राजनीति से परिपूर्ण नौकरशाही और लालफीताशाही वाला होता है, जबकि निजी प्रशासन राजनीति शून्य और चुस्ती से काम करने वाला होता है।''

इसी प्रकार पॉल एच0 एपलबी ने लोक प्रशासन की यह विशेषता बतायी है कि इसमें निजी प्रशासन की अपेक्षा सार्वजनिक आलोचना और जाँच की अधिक सम्भावना होती है।

निजी तथा लोक प्रशासन के अन्तर को निम्नलिखित रूप में स्पष्ट किया जा सकता है-

1. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में उद्देश्यगत भिन्नता होती है। लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा करना होता है, जबकि निजी प्रशासन मुख्य रूप से लाभ की भावना से प्रेरित होता है। लोक प्रशासन का दायित्व न केवल जनता को सुरक्षा प्रदान करना बल्कि उनके बहुमुखी विकास की दशाऐं भी उपलब्ध कराना है, जबकि निजी प्रशासन ऐसे किसी दायित्व से बंधा हुआ नहीं होता और अपने हर कार्य को लाभ-हानि की दृष्टि से देखता है।
2. लोक प्रशासन का क्षेत्र एवं प्रभाव निजी प्रशासन की तुलना में व्यापक होता है। पॉल एच0 एपलबी के अनुसार ''संगठित शासन समाज में विद्यमान या गतिशील प्रत्येक वस्तु को किसी भी रूप में अपने में समाविष्ट कर लेता है, उससे टकराता है और उसे प्रभावित करता है।'' वर्तमान समय में राज्य ने अपने परम्परागत दृष्टिकोण का परित्याग करके आर्थिक क्षेत्र में भी प्रवेश कर लिया है। वह रोजगार प्रदान करने, उद्योग चलाने तथा निर्माण कार्य करने से लेकर सामाजिक सुरक्षा तक के समस्त कार्यों को पूर्ण करता है। निजी प्रशासन का क्षेत्र एवं प्रभाव सीमित है क्योंकि व्यक्तिगत प्रशासन का सम्बन्ध निजी संस्थानों के कार्य क्षेत्रों तक ही सीमित रहता है।
3. निजी प्रशासन की जनता के प्रति जबावदेही उस रूप में नहीं होती, जिस रूप में लोक प्रशासन की। लोक प्रशासन को समाचार पत्रों तथा राजनीतिक दलों की आलोचनाओं का सामना करना पड़ता है। कोई भी विशिष्ट कदम उठाने से पूर्व प्रशासकों को इस बात पर सावधानी के साथ विचार करना पड़ता है कि उस पर जनता की सम्भावित प्रतिक्रिया क्या होगी, उस पर व्यवस्थापिका तथा कार्यपालिका का भी नियन्त्रण

रहता है। इस तरह जनता के प्रति उत्तरदायित्व लोक प्रशासन का एक ऐसा लक्षण है जो निजी प्रशासन में नहीं पाया जाता।

4. लोक प्रशासन के अंतर्गत व्यवहार में कुछ एकरूपता अथवा समानता पायी जाती है। इस प्रशासन में प्रशासकों द्वारा बिना किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किए समाज के सभी सदस्यों को वस्तुऐं तथा सेवाऐं प्रदान की जाती हैं। निजी प्रशासन में पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किया जा सकता है। दुकानदार उस व्यक्ति को उधार देने में संकोच नहीं करता जो उससे रोज सामान खरीदता है लेकिन एक डाक क्लर्क रोजाना पोस्टकार्ड खरीदने वाले को उधार नहीं दे सकता। निजी प्रशासन में उन व्यक्तियों के प्रति अगाध रूचि प्रकट की जाती है जिनसे व्यवसाय को अधिक से अधिक लाभ हो सकता है।
5. लोक प्रशासन द्वारा समाज को प्रदान की जाने वाली अनेक सेवाऐं एकाधिकारी प्रवृत्ति की होती है। जैसे- सेना, रेल आदि के कार्य निजी स्तर पर नहीं किए जा सकते। इन विषयों पर सरकार का पूर्ण नियंत्रण होता है। निजी प्रशासन में इस प्रकार का एकाधिकार नहीं पाया जाता। एक ही क्षेत्र में अनेक उद्यम होते हैं तथा इनमें परस्पर प्रतिस्पर्द्धा रहती है।
6. लोक प्रशासन की अनेक क्रियाओं में एक प्रकार की अनिवार्यता होती है, जिसका निजी प्रशासन के क्षेत्र में अभाव होता है। देश की सुरक्षा, शांति और सुव्यवस्था, आदि ऐसे कार्य हैं जिनकी एक भी दिन अवहेलना नहीं की जा सकती।
7. लोक प्रशासन अपेक्षाकृत कानूनों एवं नियमों से अधिक नियमित होता है, जितना निजी प्रशासन नहीं होता है। इसमें कार्य संचालन की पद्धति, क्रय-विक्रय तथा टेण्डर आदि के निश्चित नियम होते हैं, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। जबकि निजी प्रशासन में सुविधानुसार कार्य किया जाता है तथा प्रक्रिया एवं नियमों पर अधिक ध्यान नहीं दिया जाता। इसमें पद्धति की जटिलता की अपेक्षा प्राप्त होने वाले परिणाम का ध्यान रखा जाता है।
8. लोक प्रशासन में प्रशासकीय कार्य की गति धीमी होती है तथा प्रक्रियात्मक कठोरता के परिणामस्वरूप लापरवाही, भ्रष्टाचार, अदक्षता जैसी प्रशासनिक बुराईयां उत्पन्न होती है। इस प्रशासन में प्रश्नों के उत्तर विलम्ब से दिए जाते हैं तथा प्रशासकीय-तंत्र में शिथिलता आ जाती है। इसके प्रतिकूल निजी प्रशासन के क्षेत्र में प्रशासकीय कार्य तीव्र गति से सम्पन्न होते हैं और निर्णय लेने में बिलम्ब नहीं होता।
9. सेवा सुरक्षा की दृष्टि से भी लोक प्रशासन, निजी प्रशासन से भिन्न होता है। सरकारी सेवाओं में कर्मचारियों को सुरक्षा का भरोसा होता है। निजी सेवाओं में मनोवैज्ञानिक रूप से कर्मचारी अपने को असुरक्षित समझते हैं। आर्थिक नुकसान की स्थिति में निजी उद्यम या तो पूरी तरह बंद कर दिए जाते है या बहुत से कर्मचारियेां की छटनी कर दी जाती है। ऐसी स्थिति में निजी प्रशासन के क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों को अपनी सेवा के स्थायित्व का कोई आश्वासन नहीं होता है। लोक सेवा में एक बार प्रवेश पा लेने पर आसानी से किसी कर्मचारी को नौकरी से निकाला नहीं जा सकता।
10. लोक प्रशासन शासन की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है। इसमें शासन की बाध्यकारी शक्ति होती है। निजी प्रशासन में यह गुण नहीं होता है। यह न तो जनता का प्रतिनिधित्व करता है और न ही बाध्यकारी शक्ति रखता है।
11. लोक प्रशासन का स्वरूप राजनीतिक होता है। एपलबी का विचार है कि प्रशासन राजनीति है, क्योंकि इसका ध्येय लोक हित है। उन्हीं के शब्दों में ''इन तथ्यों पर बल देना आवश्यक है कि लोक प्रिय

राजनीतिक प्रक्रियाएँ जो प्रजातन्त्र का स्तर हैं, केवल शासकीय संगठनों द्वारा ही कार्य करती हैं और सभी शासकीय संगठन केवल प्रशासकीय ही नहीं हैं, वरन् राजनीतिक जीवाणु भी हैं और उन्हें ऐसा होना भी चाहिए।'' निजी प्रशासन का स्वरूप राजनीतिक नहीं होता है। इसीलिए इसका विस्तार सीमित होता है तथा यह व्यक्तिगत हित का ध्यान रखता है।

12. लोक प्रशासन के विभिन्न विभागों में पारस्परिक सहयोग, सामंजस्य तथा समन्वय पाया जाता है। इसलिए वे एक-दूसरे के साथ सहयेाग की भावना से कार्य करते हैं। इसके विपरीत निजी प्रशासन में प्रतिस्पर्द्धा, ईष्या-द्वेष और प्रतियोगिता की भावना होती है। यहॉ विभिन्न प्रतिष्ठान एक-दूसरे को पीछे छोड़ने तथा एक-दूसरे से आगे निकलने में लगे रहते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि लोक प्रशासन और निजी प्रशासन कई दृष्टियों से एक दूसरे से भिन्न हैं। लोक प्रशासन में जो लोक हित की भावना, जबावदेहिता, व्यवहार की एकरूपता, कानून और नियमों का अनुपालन, वित्त पर बाह्य नियन्त्रण इत्यादि विशेषताएँ पायी जाती हैं, वे निजी प्रशासन में नहीं पायी जाती। परन्तु फिर भी लोक प्रशासन और निजी प्रशासन दो भिन्न विधाएँ नहीं हैं, वरन् एक ही प्रशासन के दो भाग हैं। इनके बीच का अन्तर मात्रात्मक है, गुणात्मक नहीं।

3.4 उदारीकरण के अन्तर्गत लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन

कतिपय विद्वानों का यह मानना है कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस युग में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के मध्य संस्थागत विशिष्टताऐं लगातार धुंधली पड़ती जा रही हैं। इनके मध्य सीमा रेखा अस्पष्ट तथा अवास्तविक है और अब तो बिल्कुल समाप्ति की ओर है। लेकिन दूसरी ओर अधिकांश विद्वानों का मानना हैं कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के कारण लोक प्रशासन की भूमिका में थोड़ा परिवर्तन अवश्य हुआ है, लेकिन यह अब भी आधारभूत रूप से निजी प्रशासन से भिन्न है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में राज्य बनाम बाजार चर्चा का एक प्रमुख विषय बन गया है। इसका प्रमुख कारण लगभग दो दशक पूर्व साम्यवादी देश सोवियत संघ का विघटन तथा उदारवाद को विश्वव्यापी स्वरूप धारण करना है। ऐसा माना जा रहा है कि विकासशील देशों के आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकास की बागडोर राज्य के हाथों से छूटती जा रही है। राज्य विकासशील देशों के नियोजनात्मक विकास के कार्यों में अपनी भूमिका सीमित करके नियामकीय कार्यों को बेहतर बनाने में लग गया है ताकि बाजार व्यवस्था बेहतर बनाई जा सके। राज्य को निजी उद्यमों की भाँति बाजार प्रणाली में कूदना पड़ रहा है। परिणामस्वरूप विकासशील देशों में राज्य और बाजार में अन्तर का प्रतिशत सिमटता जा रहा है। इस आधार पर कुछ लोगों का यह मानना है कि आने वाले समय में लोक प्रशासन की वे सभी विशिष्टताऐं जो इसे निजी प्रशासन से अलग करती है बिल्कुल समाप्त हो जायेंगी।

इनमें कोई दो राय नहीं कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में राज्य का सिकुड़न हो रहा है और निजी क्षेत्र का विस्तार हो रहा है। सार्वजनिक क्षेत्र में घाटे में चल रहे उद्योगों का विनिवेशीकरण किया जा रहा है और निजी उद्यमियों को अधिक से अधिक पूँजी निवेश के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। शिक्षा एवं स्वास्थ्य जैसी आधारभूत सुविधायें प्रदान करना पहले राज्य का मुख्य दायित्व समझा जाता था, लेकिन अब इन क्षेत्रों में भी निजी पूँजी निवेश को बढावा दिया जा रहा है। अब लोक प्रशासन में भी निजी प्रशासन की तरह 'मितव्ययिता' तथा दक्षता को अपनाने तथा आधुनिक वैज्ञानिक प्रबन्धन तकनीक के अधिक से अधिक प्रयोग करने पर बल दिया जा रहा है। निजी प्रशासन की तरह लोक प्रशासन में भी कार्य सम्पादन की गुणवत्ता को बढाना एक प्रमुख उद्देश्य बन गया है। आज लोक प्रशासन प्रमुख नियोक्ता नहीं रह गया है और बड़े पैमाने पर निजी प्रशासन में रोजगार के अवसर सृजित हो रहे है। सार्वजनिक सुविधाऐं तथा सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के क्षेत्र में भी लोक

प्रशासन की भूमिका सीमित हो गयी है। ऐसी स्थिति में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच के अन्तर को समाप्त मान लेना चाहिए?

सच तो यह है कि उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस दौर में लोक प्रशासन की भूमिका एवं इसके स्वरूप में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है। लोक प्रशासन में धीरे-धीरे नियंत्रणों, नियमनों, लाइसेंस परमिट आदि को कम करने के प्रयास किये गये हैं तथा इसकी भूमिका एक 'नियामक' एवं 'सुविधाकारक' के रूप में महत्वपूर्ण बन गयी है।

लेकिन उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के इस युग में भी लोक प्रशासन की कुछ ऐसी विशिष्टताएँ हैं, जो उसे निजी प्रशासन से अलग करती है-

1. 'जनहित संरक्षण' एवं 'लोक हित संरक्षण' आज भी लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य है, जबकि निजी प्रशासन का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है। इसमें कोई दो राय नहीं कि शिक्षा, स्वास्थ्य, जीवन सुरक्षा बीमा इत्यादि कई ऐसी सेवाऐं हैं जो पहले लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र में ही आती थी, लेकिन आज निजी क्षेत्र बड़े पैमाने पर इन सेवाओं को प्रदान कर रहा है। लेकिन यहाँ भी इसका उद्देश्य लाभ कमाना ही होता है या कम से कम किसी प्रकार का नुकसान उठाना नहीं होता है। परिणामस्वरूप निजी क्षेत्र में प्रदान की गयी शिक्षा या स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाएँ सरकारी क्षेत्र की तुलना में काफी महंगी होती है जिसे समाज का निर्धन-वर्ग वहन नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में समाज के कमजोर वर्गों के हितों की रक्षा लोक प्रशासन के माध्यम से ही की जाती है। इस प्रकार लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में उद्देश्य गत भिन्नता उदारीकरण के इस युग में भी बनी हुई है।
2. प्रभाव की दृष्टि से भी लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच का अन्तर बना हुआ है। यद्यपि उदारीकरण में सरकार की भूमिका पहले से थोड़ी कम अवश्य हुई है, लेकिन एक 'नियामक' एवं 'नियंत्रक' के रूप में इसकी विशिष्टता अब भी बनी हुई है। जैसे- प्रदूषण फैलाने वाले उद्यमों पर रोक लगाना या निर्धारित मापदंडों का उल्लंघन करने वाले उद्यमों को दंडित करना इत्यादि लोक प्रशासन का ही दायित्व है। इसके अतिरिक्त आर्थिक उथल-पुथल या मंदी के दौर में देश को संकट से उबारना या मंहगाई को नियंत्रित करना भी लोक प्रशासन का ही दायित्व माना जाता है। देश में शांति और सुव्यवस्था स्थापित करना या कमजोर वर्गों के हितों की सुरक्षा करना तो परंपरागत रूप लोक प्रशासन की विशिष्टता रही है जो आज भी बनी हुई है। अतः उदारीकरण के इस युग में भी लोक प्रशासन का प्रभाव क्षेत्र निजी प्रशासन की तुलना में व्यापक है।
3. जबाबदेहिता की दृष्टि से भी लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच का अन्तर बना हुआ है। सार्वजनिक होने के कारण लोक प्रशासन जनता के जाँच के लिए खुला होता है, सरकारी अधिकारियों द्वारा की गयी एक छोटी सी गलती भी समाचार-पत्रों की सुर्खियों में प्रकाशित होती है। संसद एवं विधान सभाओं में हंगामा खड़ा हो जाता है। पुलिस जैसे संगठनों को भी अपने कार्यों का स्पष्टीकरण देना होता है और यह सिद्ध करना होता है कि उनके किसी भी कार्य से जनता में रोष नहीं फैले। इस प्रकार का व्यापक प्रचार निजी प्रशासन में नहीं होता और न उस पर जनता तथा समाचार पत्रों की निगाह ही रहती है।
4. उदारीकरण के इस युग में भी लोक प्रशासन के कार्यों में लचीलापन देखने को नहीं मिलता। कानूनों, नियमों एवं विनियमों से बंधे होने के कारण सरकारी कर्मचारियों द्वारा कई बार आवश्यक कार्यों के सम्पादन में भी अनावश्यक विलंब होता है। इसके विपरीत निजी प्रशासन इस तरह के कानूनी बन्धनों से मुक्त रहते हैं। हर प्रकार के व्यवसाय के नियंत्रण के लिए सामान्य कानून जरूर होते है, किन्तु निजी फर्में

बदलती हुई परिस्थितियों को देखते हुए अपने कार्यों में काफी लचीलापन अपनाती है। ऐसा करना केवल उन्हीं के लिए सम्भव है, क्योंकि उन पर लोक प्रशासन की तरह के कानूनी बन्धन नहीं होते।

5. लोक प्रशासन में किसी भी प्रकार के पक्षपात अथवा भेदभावपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा नहीं की जाती। अगर ऐसा होता है तो यह संसद, विधानसभाओं या जनसंचार के माध्यमों में तीव्र आलोचना का विषय बन जाता है तथा संबंधित प्रशासनिक अधिकारियों के विरूद्ध सख्त कार्रवाई की मांग की जाती है। लेकिन निजी प्रशासन में प्रतियोगी मांगों के कारण खुलकर भेदभाव होता है। उत्पादनों के चयन तथा कीमतें निश्चित करने में व्यापारिक प्रतिष्ठान भेदभाव और पक्षपात करते हैं, जो व्यापारिक संस्कृति का एक अंग बन गया है।
6. लोक प्रशासन का संगठन एक व्यापारिक अथवा निजी संगठन से बहुत अधिक जटिल होता है। प्रकाशन की प्रत्येक इकाई संबंधित लोक संगठनों के साथ जुड़ी होती है और उस इकाई को संबंधित इकाईयों के साथ कार्य करना होता है। इसके विपरीत निजी प्रशासन अधिक संक्षेपता, पृथकता और स्वायत्ता के साथ कार्य करता है।
7. उदारीकरण की प्रक्रिया ने निजी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर सृजित किये हैं तथा उच्च तकनीकी अथवा व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त युवकों को लोक प्रशासन की तुलना में अधिक आकर्षक वेतनमान एवं सुविधाऐं भी दी जा रही हैं, लेकिन फिर भी इनमें असुरक्षा का भाव बना रहता है, क्योंकि बाजार पर आधारित व्यापार अनिश्चितताओं से भरा होता है। इसके विपरीत लोक प्रशासन में कार्यरत कर्मचारियों में सुरक्षा का भाव होता है। अभी हाल ही में विश्वव्यापी आर्थिक मंदी के दौरान जिस प्रकार निजी क्षेत्र में बड़े पैमाने पर कर्मचारियों की छंटनी की गयी, इससे हमारे युवकों में लोक प्रशासन के अंतर्गत कार्य करने का रूझान एक बार फिर से बढ गया है। अतः सेवा सुरक्षा की दृष्टि से भी उदारीकरण के इस युग में लोक प्रशासन की विशिष्टता बनी हुई है।
8. लोक प्रशासन राजनीतिक प्रभाव और दबाव से प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होता है, जबकि निजी प्रशासन इससे मुक्त होता है।
9. लोक प्रशासन अत्यधिक जटिल सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक पर्यावरण में क्रियाशील होता है, जिसके परिणामस्वरूप कार्यक्रम प्रभाव एवं संगठनात्मक कार्यशीलता का मापन कठिन हो जाता है। निजी प्रशासन में संगठनात्मक कार्यशीलता का मापन अपेक्षाकृत सरल होता है।
10. लोक प्रशासन के ऊपर राष्ट्र निर्माण और भावी समाज को दिशा देने जैसी जिम्मेदारियां होती हैं, इसलिए यह सामाजिक मूल्यों की स्थापना करने की ओर झुका होता है। निजी प्रशासन को सरकार द्वारा निर्धारित मार्गदर्शन का पालन करना होता है।

इस प्रकार उदारीकरण के युग में भी लोक प्रशासन एंव निजी प्रशासन के बीच अन्तर बना हुआ है, यद्यपि यह अन्तर पहले की अपेक्षा कम हुआ है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन दोनों में नियोजन एवं संगठन की आवश्यकता होती है। सत्य/असत्य
2. लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में उद्देश्यगत भिन्नता होती है। सत्य/असत्य
3. लोक प्रशासन का क्षेत्र निजी प्रशासन की तुलना में संकुचित होता है। सत्य/असत्य
4. निजी प्रशासन की जनता के प्रति जबावदेहिता उस रूप में नहीं होती, जिस रूप में लोक प्रशासन की। सत्य/असत्य

5. उदारीकरण के अंतर्गत प्रशासन में नियंत्रणों, नियमनों, लाइसेंस, परमिट आदि को कम करने के प्रयास किये गए हैं। सत्य/असत्य
6. उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन की भूमिका एक सुविधाकारक की बन गई है। सत्य/असत्य
7. उदारीकरण के युग में लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में कोई अन्तर नहीं है। सत्य/असत्य
8. जनहित संरक्षण आज भी लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य है। सत्य/असत्य

3.5 सारांश

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन में कुछ समानताऐं पायी जाती हैं, लेकिन फिर भी आधारभूत रूप से ये दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं। दोनों ही प्रशासन में नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण की आवश्यकता होती है। प्रबन्ध की अनेक तकनीकें तथा कार्यप्रणाली भी समान होती है। लेकिन लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य जनता की सेवा करना होता है, जबकि निजी प्रशासन लाभ की भावना से प्रेरित होता है। निजी प्रशासन की तुलना में लोक प्रशासन का क्षेत्र एवं प्रभाव व्यापक होता है। निजी प्रशासन की जबावदेहिता जनता के प्रति उस रूप में नहीं होती, जिस रूप में लोक प्रशासन की होती है। लोक प्रशासन के कार्यों में प्रक्रियात्मक कठोरता पाई जाती है, लेकिन निजी प्रशासन के कार्यों में लचीलापन। प्रशासकीय कार्यों की गति लोक प्रशासन में निजी प्रशासन की तुलना में धीमी होती है। लोक प्रशासन में कार्यरत कर्मचारियों में सुरक्षा का भाव होता है, जबकि निजी प्रशासन में कार्यरत कर्मचारियों में असुरक्षा का। लोक प्रशासन राजनीतिक प्रभाव और दबाव से प्रभावित होता है, जबकि निजी प्रशासन इन प्रभावों से मुक्त होता है। लोक प्रशासन में नैतिक एवं सामाजिक मूल्यों की प्रधानता निजी प्रशासन की तुलना में अधिक होती है।

उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के परिणामस्वरूप लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के बीच अन्तर कुछ कम अवश्य हुआ है, लेकिन इनके मध्य की सीमा रेखा अब भी बनी हुई है। उदारीकरण के युग में भी लोक प्रशासन जनहित से प्रेरित होता है, ना कि व्यापारिक दृष्टिकोण से। सार्वजनिकता की विशेषता इस प्रशासन को विशिष्टता की स्थिति प्रदान करती है और निजी प्रशासन से अलग करती है। उदारीकरण के अंतर्गत जहाँ कुछ क्षेत्रों में लोक प्रशासन की भूमिका में कटौती हुई है, वहीं दूसरी तरफ एक नियामक एवं सुविधाकारक के रूप में इसके लिए नई भूमिका का सृजन हुआ है।

3.6 शब्दावली

व्यावसायिक उद्यम- ऐसे उद्यम जिनका उद्देश्य लाभ कमाना होता है।

नियामक- दूसरों के कार्यों पर निगरानी तथा नियंत्रण रखने वाला।

सुविधाकारक- प्रक्रियात्मक कठिनाईयों को दूर कर किसी कार्य को सरल या सुविधाजनक बनाने वाला।

उदारीकरण- उस प्रक्रिया को कहते हैं जिसमें आयात-निर्यात तथा पूँजी निवेश को बढावा देने के लिए आर्थिक नियमों को लचीला बनाया जाता है।

वैश्वीकरण- आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं तकनीकी रूप से विश्व के विभिन्न देशों में एकीकरण की प्रवृत्ति जिसमें विभिन्न देशों में व्यक्ति, वस्तु या मुद्रा के आवागमन पर लगी रोक कम कर दी जाती है या हटा ली जाती है।

3.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** असत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य, **6.** सत्य, **7.** असत्य, **8.** सत्य

3.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अवस्थी एवं माहेश्वरी, (2008), लोक प्रशासन, लक्ष्मी नरायण अग्रवाल, आगरा।

2. निग्रो, फलिक्स ए0 एवं निग्रो लॉयड जी, (1980), मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, हार्पर और रो, न्यूयार्क।
3. व्हाइट, एल0डी0,(1968), इंट्रोडक्शन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।
4. भट्टाचार्य, मोहित, (1998), न्यू हॉरिजन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्टेशन, जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली।
5. अरौड़ा, रमेश के (संपादित) (1979), पर्सपेक्टिव इन एडमिनिस्ट्रेटिव थ्योरी, एसोसियेटेड पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

3.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. बार्कर, आर0जे0एस0,1972, एडमिनिस्ट्रेटिव थ्योरी एण्ड पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन।
2. गॉर्टनर, हैरोल्ड एफ0, (1977) एडमिनिस्ट्रेशन इन द पब्लिक सेक्टर।

3.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. कुछ समानताओं के वावजूद लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन एक दूसरे से मौलिक रूप से भिन्न है। विवेचना कीजिए।
2. क्या आप इस मत से सहमत हैं कि उदारीकरण के अंतर्गत लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के मध्य सीमा रेखा अस्पष्ट एवं अवास्तविक है? तर्क सहित उत्तर दीजिए।
3. 'लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन के मध्य अन्तर मात्रा का है, प्रकार का नहीं।' क्या आप इस मत से सहमत है? स्पष्ट कीजिए।

इकाई- 4 लोक प्रशासन का विकास, नवीन लोक प्रशासन

इकाई की संरचना

4.0 प्रस्तावना
4.1 उद्देश्य
4.2 लोक प्रशासन का विकास: प्राचीन काल
4.3 लोक प्रशासन का विकासः आधुनिक काल
    4.3.1 प्रथम चरण (1887-1926)
    4.3.2 द्वितीय चरण (1927-1937)
    4.3.3 तृतीय चरण (1938-1947)
    4.3.4 चतुर्थ चरण (1948-1970)
    4.3.5 पंचम चरण (1971-1990)
    4.3.6 षष्टम चरण (1991- अब तक)
4.4 नवीन लोक प्रशासन: पृष्टभूमि
    4.4.1 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताऐं
    4.4.2 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य
        4.4.2.1 प्रासंगिकता
        4.4.2.2 मूल्य
        4.4.2.3 सामाजिक समता
        4.4.2.4 परिवर्तन
4.5 सारांश
4.6 शब्दावली
4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
4.10 निबंधात्मक प्रश्न

4.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन के अध्ययन से संबंधित यह चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप बता सकते हैं कि लोक प्रशासन क्या है, इसके अन्तर्गत किन विषयों का अध्ययन किया जाता है, इसके अध्ययन के परम्परागत एवं आधुनिक दृष्टिकोणों में क्या अन्तर है तथा यह किस प्रकार निजी प्रशासन के भिन्न है?

किसी भी विषय के वर्तमान स्वरूप को समझने के लिए उसके अतीत को समझना आवश्यक होता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अध्ययन के विषय को व्यापक सन्दर्भ में स्थापित करने में सहायक होता है तथा व्यावहारिक दृष्टि से भूतकाल के ज्ञान का उपयेाग वर्तमान में विषय के विकास की प्रक्रिया को आगे बढाने में सहायक होता है। प्रबन्ध की क्रिया के रूप में लोक प्रशासन उतना ही प्राचीन है जितना कि मनुष्य का सामाजिक जीवन। परन्तु अध्ययन की एक शाखा या विधा के रूप में इसका विधिवत विकास आधुनिक काल में ही संभव हो सका है। इस इकाई में लोक प्रशासन विषय के विकास के विभिन्न चरणों पर प्रकाश डाला गया है।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह स्पष्ट कर सकेंगे कि नवीन लोक प्रशासन किस प्रकार परम्परागत लोक प्रशासन से भिन्न है तथा इसकी क्या विशिष्टताएँ है?

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास की विभिन्न अवस्थाओं को जान सकेंगे।
- विभिन्न चरणों में विषय की प्रकृति में अन्तर कर सकेंगे।
- नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ एवं इसके महत्व के बारे में जान सकेंगे।
- विकासशील समाजों के लिए नवीन लोक प्रशासन की प्रासंगिकता को स्पष्ट कर सकेंगे।

4.2 लोक प्रशासन का विकास: प्राचीन काल

एक क्रियाकलाप के रूप में लोक प्रशासन प्राचीन काल से ही अस्तित्व में रहा है। इसके विभिन्न सिद्धान्त हमें प्राचीन भारत के ग्रन्थ- रामायण, महाभारत तथा विभिन्न स्मृतियों के साथ-साथ मुख्यतः कौटिल्य के अर्थशास्त्र में मिलते हैं। अर्थशास्त्र राज्य के उद्देश्यों तथा उन उद्देश्यों की प्राप्ति के व्यावहारिक साधनों पर एक विशिष्ट तथा कुशल शोध प्रबन्ध माना जाता है। प्राचीन भारत में लोक प्रशासन पर यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

कौटिल्य ने प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए 'राजनैतिक अर्थनीति' का मार्ग अपनाया है। प्रशासन के सिद्धान्त मुख्यतः राजा, मंत्रियों आदि के कार्यों द्वारा इंगित किये गये हैं। अधिकार आज्ञापालन तथा अनुशासन के सिद्धान्तों को राज्य के प्रशासन का केन्द्र माना गया है। इस बात पर बल दिया गया है कि कार्य विभाजन, श्रेणीबद्ध पदानुक्रम तथा समन्वय जैसे सिद्धान्तों को आंतरिक संगठन की कार्यविधि में अपनाया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त संभवतः कौटिल्य ही ऐसे जाने-माने विचारक थे जिन्होंने प्रशासन में सांख्यिकी के महत्व को मान्यता दी। उनके चिंतन में जिस प्रकार राज्य के व्यापक दायित्वों, जैसे- अनाथ बच्चों, महिलाओं, वृद्धों कमजोर वर्गों इत्यादि का भरण-पोषण करना तथा जनसामान्य के हितों के लिए कल्याणकारी योजनाएं चलाना इत्यादि पर बल दिया गया है, इससे एक कल्याणकारी राज्य की झलक मिलती है जो बहुत कुछ आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्य की तरह ही है।

यद्यपि कौटिल्य द्वारा वर्णित प्रशासकीय व्यवस्था राजतंत्रीय शासन के सन्दर्भ में थी, जोकि आधुनिक लोकतांत्रिक समाजों की प्रशासनिक व्यवस्था से भिन्न है, फिर भी उसके द्वारा स्थापित लोक प्रशासन ही परम्पराएँ महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि ये लोक प्रशासन विज्ञान तथा शासन कला के व्यवस्थित विश्लेषण पर जोर देते हैं।

इसी प्रकार के विवेचन में चीन में कन्फ्यूसियस द्वारा दिये गये उपदेशों, अरस्तू की महान रचना 'पॉलिटिक्स' हॉब्स की रचना 'लेवियाथन' और मैकियावली की रचना 'द प्रिन्स' में देखने को मिलते हैं।

4.3 लोक प्रशासन का विकासः आधुनिक काल

18वीं सदी में जर्मनी और आस्ट्रिया में कैमरलवाद का अभ्युदय हुआ जो सरकारी मामलों के व्यवस्थित प्रबन्धन से जुड़ा हुआ था। कैमरलवादियों ने लोक प्रशासन की संरचनाओं, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के विवरणात्मक अध्ययनों पर और लोक अधिकारियों के पेशेवर प्रशिक्षण पर बल दिया।

18वीं सदी के अंतिम वर्षों में संभवतः अमेरिका में पहली बार लोक प्रशासन के अर्थ और उद्देश्य को हैमिल्टन की पुस्तक 'फेडरलिस्ट' में पारिभाषित किया गया। चार्ल्स ज्यां बूनिन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने अलग से लोक प्रशासन पर फ्रेन्च भाषा में पुस्तक की रचना की। परन्तु परम्परागत रूप से शोध के अलग क्षेत्र के रूप में लोक प्रशासन का विकास उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ।

आधुनिक काल में अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास का इतिहास उतार-चढाव से भरा हुआ है, जिसे निम्नलिखित चरणों में समझा जा सकता है-

4.3.1 प्रथम चरण (1887-1926)

विकास के प्रथम चरण में लोक प्रशासन एवं राजनीति के द्विभाजन पर बल दिया गया। वुडरो विल्सन, जिन्हें लोक प्रशासन का जनक माना जाता है, ने 1887 में एक निबन्ध प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था 'दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन'। इस निबन्ध में उन्होंने राजनीति और प्रशासन को अलग-अलग बताया तथा यह भी कहा कि ''एक संविधान की रचना सरल है पर इसको चलाना बड़ा कठिन है।'' उन्होंने इस चलाने के क्षेत्र अर्थात लोक प्रशासन को एक स्वायत्त विषय बनाने पर बल दिया।

विल्सन के पश्चात फ्रैंक गुडनाउ ने 1900 में अपनी पुस्तक 'पॉलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन' में यह तर्क दिया कि राजनीति राज्य इच्छा को प्रतिपादित करती है, जबकि प्रशासन इस इच्छा या नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इसलिए नीति-निर्माण का कार्य नीति-क्रियान्वयन के कार्य से अलग है। नीति-निर्माण का कार्य जनता द्वारा निर्वाचित व्यवस्थापिकाओं द्वारा सम्पादित किया जाना चाहिए तथा उसके क्रियान्वयन का कार्य राजनीतिक रूप से तटस्थ, योग्य एवं तकनीकी दक्षता से युक्त प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा सम्पन्न किया जाना चाहिए।

1926 में एल0 डी0 व्हाइट द्वारा 'इंन्ट्रोडक्शन टू द स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' नामक पुस्तक प्रकाशित की गयी जिसे लोक प्रशासन की प्रथम पाठ्य पुस्तक होने की मान्यता प्राप्त है। इस पुस्तक में व्हाइट ने राजनीति एवं प्रशासन के मध्य अन्तर को स्वीकार करते हुए इस बात पर बल दिया कि लोक प्रशासन का मुख्य लक्ष्य दक्षता एवं मितव्ययिता हैं। उनके अनुसार प्रशासन किसी विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बहुत से व्यक्तियों का निर्देशन, समन्वयीकरण तथा नियन्त्रण की कला है।

4.3.2 द्वितीय चरण (1927-1937)

इस चरण में लोक प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर बल दिया गया। ऐसी आस्था व्यक्त की गयी कि प्रशासन के कुछ निश्चित सिद्धान्त हैं जिनका पता लगाकर इनके क्रियान्वयन को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इस सन्दर्भ में 1927 में डब्ल्यू0 एफ0 विलोबी द्वारा लिखित पुस्तक 'प्रिसिंपल्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विलोवी इस बात में पूर्ण विश्वास रखते थे कि प्रशासन के अनेक सिद्धान्त हैं, जिन्हें कार्यान्वित करने से लोक प्रशासन में सुधार हो सकता है।

विलोबी के बाद अनेक विद्वानों ने उक्त सन्दर्भ में पुस्तकें लिखी जिनमें मेरी पार्कर फॉलेट, हेनरी फेयोल, मूने तथा रैले इत्यादि के नाम प्रमुख हैं।

1937 में लूथर गुलिक तथा उर्विक द्वारा लिखित ग्रन्थ 'पेपर्स ऑन दी साइंस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में इस बात पर बल दिया गया कि प्रशासन में सिद्धान्त होने के कारण यह एक विज्ञान है। गुलिक तथा उर्विक ने प्रशासन के सिद्धान्तों को 'पोस्डकॉर्ब' के रूप में व्यक्त किया। इस चरण को लोक प्रशासन के विकास में स्वर्णिम युग माना जाता है।

4.3.3 तृतीय चरण (1938-1947)

यह चरण लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में विध्वंसकारी चरण माना जाता है, जिसमें प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती दी गयी।

चेस्टर बनार्ड ने 1938 में अपनी पुस्तक 'दी फक्सन्स ऑफ एक्सक्यूटिव' में प्रशासन को एक सहकारी सामाजिक क्रिया बताते हुए इस बात पर बल दिया कि व्यक्तियों के आचारण प्रशासकीय कार्यों को विशेष रूप से प्रभावित करते हैं। बनार्ड के विचारों के फलस्वरूप लोक प्रशासन के सिद्धान्त वादी दृष्टिकोण पर प्रहार शुरू हुआ।

1946 में हरबर्ट साइमन ने अपना एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने तथाकथित सिद्धान्तों का उपहास करते हुए उन्हें मुहावरे की संज्ञा दी। एक वर्ष बाद ही उन्होंने अपनी पुस्तक 'एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर' में यह भली-भाँति सिद्ध कर दिया कि प्रशासन में सिद्धान्त नाम की कोई चीज नहीं है।

1947 में रॉबर्ट ए0 डॉहल ने अपने एक लेख में सिद्धान्तवादियों की इस मान्यता का जोरदार खण्डन किया कि लोक प्रशासन एक विज्ञान है। उन्होंने लोक प्रशासन के सिद्धान्त की खोज में तीन बांधाओं का जिक्र किया, यथा- मूल्य सापेक्षता, मानव व्यवहार की विविधता, एवं सामाजिक ढ़ाँचा।

इस प्रकार लोक प्रशासन का तीसरा चरण चुनौतियों एवं आलोचनाओं से परिपूर्ण रहा।

4.3.4 चतुर्थ चरण (1948-1970)

इस चरण में लोक प्रशासन अपनी 'पहचान के संकट' से जूझता रहा। विषय की सिद्धान्तवादी विचारधारा अविश्व सनीय प्रतीत होने लगी तथा इसका वैज्ञानिक स्वरूप भी वाद-विवाद का विषय बन गया।

विषय को इस पहचान के संकट से उबारने के लिए मोटे तौर पर दो रास्ते अपनाये गये। कुछ विद्वान राजनीति शास्त्र की ओर मुखातिब हुए परन्तु राजनीतिशास्त्र में इस समय कुछ परिवर्तन आ रहे थे। लोक प्रशासन का राजनीति शास्त्र में जितना महत्व पहले था, उसमें गिरावट आ गयी। ऐसी अवस्था में यह विषय सौतेलापन व अकेलापन अनुभव करने लगा।

दूसरे प्रयास में कुछ विद्वानों ने लोक प्रशासन को निजी प्रबन्धों के साथ जोड़कर प्रशासनिक विज्ञान बनाने का प्रयास किया। इन विद्वानों की यह मान्यता थी कि प्रशासन चाहे दफ्तरों में हो या कारखानों में दोनों ही क्षेत्रों में यह प्रशासन है। इसी प्रयास के अंतर्गत 1956 में 'एडमिनिस्ट्रेटिव साइंस क्वार्टरली' नामक पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया गया। इस प्रयास में भी लोक प्रशासन को अपना निजी स्वरूप गंवाना पड़ा तथा इसे प्रबन्ध विज्ञान की ओर मुखातिब होना पड़ा। इस तरह दोनों ही प्रयासों के बावजूद लोक प्रशासन के 'पहचान का संकट' बरकरार रहा।

4.3.5 पंचम चरण (1971-1990)

इस चरण में विषय के अन्तर्विषयक दृष्टिकोण का विकास हुआ। चतुर्थ चरण के संकट ने लोक प्रशासन के विषय के विकास में अनेक चुनौतियां प्रस्तुत की थी, जो इसके लिए वरदान सिद्ध हुआ। अनेक शाखाओं के विज्ञान के समावेश से इसके विकास में सर्वांगीण उन्नति हुई। राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थी तो सदैव ही लोक प्रशासन में रूचि लेते रहे हैं, इसके साथ-साथ अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, आदि शास्त्रों के विद्वान भी इस विषय में रूचि लेने लगे। इन सबके फलस्वरूप लोक प्रशासन अंतर्विषयी बन गया। आज समाजशास्त्रों में यदि कोई सबसे अधिक अन्तर्विषयी है तो वह लोक प्रशासन ही है। 'तुलनात्मक लोक प्रशासन' तथा 'विकास प्रशासन' का प्रादुर्भाव भी विषय की नूतन प्रवृत्तियों को दर्शाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न देशों की सार्वजनिक प्रशासनिक संस्थाओं के तुलनात्मक अध्ययन से सम्बन्धित है। विकास प्रशासन विकासशील देशों की सरकार के प्रशासन से सम्बन्धित है।

4.3.6 षष्टम चरण (1991- अब तक)

इस चरण में उदारीकरण एवं वैश्वीकरण के सन्दर्भ में लोक प्रशासन के अंतर्गत नवीन लोक प्रबन्धन की अवधारणा का विकास हुआ है। ऐसा माना जा रहा है कि लोक प्रशासन को लोक प्रबन्धन में बदला जाना चाहिए, ताकि लोक निर्णय शीघ्रता एवं मितव्ययिता के साथ की जा सके। नवीन लोक प्रबन्धन लोक प्रशासन में कार्य सम्पादन को अधिक महत्व देता है। लोक प्रशासन में धीरे-धीरे नियन्त्रणों, नियमनों, लाइसेन्स, परमिट आदि को कम करने के प्रयास किये गये हैं तथा प्रशासन को एक सुविधाकारक तंत्र के रूप में विकसित करने का प्रयत्न किया गया है। दूसरे शब्दों में पारंपरिक लोक प्रशासन को बाजारोन्मुख लोक प्रशासन में परिवर्तित करने पर बल दिया जा रहा है। नवीन लोक प्रबन्धन का प्रयोग सर्वप्रथम 1991 में क्रिस्टोफर हुड के द्वारा किया गया। इसके उपरान्त इस दृष्टिकोण के विकास में गेराल्ड केइन, पी0 हैगेट, सी0 पौलिट, आर रोड्स तथा एल0 टेरी ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इस प्रकार, अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का स्वरूप बदलते हुए राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक परिवेश एवं विचारधाराओं के अनुरूप परिवर्तित, संशोधित एवं संवर्द्धित होता रहा है।

वर्तमान समय में लोक प्रशासन के अध्ययन में राजनैतिक एंव नीति निर्धारण प्रक्रियाओं तथा लोक कार्यक्रमों के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाने लगा है। 1971ई0 के पश्चात से नवीन लोक प्रशासन के विकास ने लोक प्रशासन के अध्ययन को समृद्ध किया है।

4.4 नवीन लोक प्रशासन: पृष्टभूमि

प्रायः देखा गया है कि उथल-पुथल, अस्थिरता एवं अव्यवस्था के कालों में नवीन विचारों का अभ्युदय होता है और वे परम्परागत शास्त्रों के विषयों को नवीन दिशा प्रदान करते हैं। यह बात लोक प्रशासन के सम्बन्ध में सत्य प्रतीत होती है। सातवें दशक में लोक प्रशासन की क्रिया प्रणाली के उद्देश्य के रूप में मितव्ययिता तथा कार्यकुशलता को अपर्याप्त एवं अपूर्ण पाया गया। इस दशक के अंतिम वर्षों में कुछ विद्वानों, विशेषकर युवा-वर्ग ने लोक प्रशासन में मूल्यों एवं नैतिकता पर विशेष बल देना प्रारम्भ कर दिया। यह कहा जाने लगा कि कार्यकुशलता ही समस्त लोक प्रशासन का लक्ष्य नहीं है, उसे मूल्योन्मुखी होना चाहिए। इस नवीन प्रवृत्ति को नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा दी गयी।

वास्तव में लोक कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने के प्रयत्नों ने लोक प्रशासन में अनेक नवीन प्रवृत्तियों को जन्म दिया है, जिन्हें नवीन लोक प्रशासन के नाम से जाना जाता है। इसके अंतर्गत नैतिकता एवं सामाजिक उपयोगिता पर बल दिया जाता है तथा इसका मुख्य उद्देश्य मानव कल्याण है।

नवीन लोक प्रशासन का आरम्भ 1967 के 'हनी प्रतिवेदन' से समझा जा सकता है। प्रो0 जॉन सी0 हनी का प्रतिवेदन अमेरिका में लोक प्रशासन का स्वतंत्र विषय के रूप में 'अध्ययन की सम्भावनाऐं' पर आधारित था। इस प्रतिवेदन में लोक प्रशासन को विस्तृत एवं व्यापक बनाने पर जोर दिया गया। इस प्रतिवेदन का जहाँ एक तरफ स्वागत हुआ वही दूसरी तरफ इसको लेकर तीव्र विवाद भी उत्पन्न हुआ। प्रतिवेदन में जो मुद्दे उठाये गये थे, वे महत्वपूर्ण थे। परन्तु जो मुद्दे नहीं उठाये गये थे, वे उनसे भी अधिक महत्वपूर्ण थे। तत्कालीन सामाजिक समस्याओं के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करने के लिए इस प्रतिवेदन में कोई ठोस सुझाव नहीं दिया गया था। फिर भी इस प्रतिवेदन ने अनेक विद्वानों को समाज में लोक प्रशासन की भूमिका पर गम्भीरता पूर्वक विचार करने के लिए प्रेरित किया।

हनी प्रतिवेदन के पश्चात 1967 में अमेरिका के फिलाडेल्फिया शहर में इसी विषय पर सम्मेलन आयोजित हुआ। सम्मेलन में जहाँ कुछ चिन्तकों ने लोक प्रशासन केा महज बौद्धिक चिन्तन का केन्द्र माना तो दूसरों ने उसे मात्र प्रक्रिया माना। कुछ चिन्तकों ने इसे प्रशासन का तो कुछ ने समाज का अंग माना। वस्तुस्थिति यह रही कि इस सम्मेलन में भी लोक प्रशासन का नवीन स्वरूप निर्धारित नहीं किया जा सका।

1968 में आयोजित मिन्नोब्रुक सम्मेलन ने लोक प्रशासन की प्रकृति में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया तथा यह नवीन लोक प्रशासन को स्थापित करने में मील का पत्थर सिद्ध हुआ। इस सम्मेलन में युवा विचारकों का प्रतिनिधित्व रहा तथा वे समस्त बिन्दुवाद विवाद की परिधि में आये जो बीते दो सम्मेलनों में शामिल नहीं किये गये थे। इस सम्मेलन में परम्परागत लोक प्रशासन के स्थान पर नवीन लोक प्रशासन नाम प्रकाश में आया।

1971 में फ्रेंक मेरीनी कृत 'टूवार्डस ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्टेशन-मिन्नोब्रुक पर्सपेक्टिव' के प्रकाशन के साथ ही नवीन लोक प्रशासन को मान्यता प्राप्त हुई। इसी समय ड्वाइट वाल्डो की कृति ने नवीन लोक प्रशासन को और सशक्त बना दिया। उक्त दोनों पुस्तकों में नवीन लोक प्रशासन को सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील माना गया है।

सन् 1980 व 1990 के दौरान विकसित राष्ट्रों को सार्वजनिक क्षेत्र प्रबन्धन में दृढता तथा अधिकारी प्रवृत्ति से नमनीयता की ओर मुड़ते देखा गया। इसके अतिरिक्त विभिन्न राष्ट्रों में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की चाह में लोक प्रशासन को सरकार व जनता के मध्य नवीन सम्बन्ध स्थापित करने पर बल दिया गया। इन तथ्यों का उल्लेख 1980 में प्रकाशित एच0 जार्ज फ्रेडरिक्सन की पुस्तक 'पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डेवलपमेंन्ट एज ए डिसिप्लिन' में देखा जा सकता है।

1990 के दशक में भी नवीन लोक प्रशासन में नये प्रतिमान विकसित किये गये हैं, जिसे नवीन लोक प्रबन्धन बाजार आधारित लोक प्रशासन, उद्यमकर्ता शासन आदि का नाम दिया जा सकता है। इसके अंतर्गत दक्षता, मितव्ययिता तथा प्रभावदायकता पर बल दिया गया है।

इस प्रकार विगत चार दशकों में लोक प्रशासन अपने नवीन रूप में लोक प्रिय हो चला हैं।

4.4.1 नवीन लोक प्रशासन की विशेषताऐं

नवीन लोक प्रशासन की विचारधारा समयानुकुल तथा परम्परागत लोक प्रशासन में परिवर्तन की विचारधारा है। परम्परागत लोक प्रशासन में मूल्य निरपेक्षता, दक्षता, निष्पक्षता, कार्यकुशलता इत्यादि पर बल दिया गया था, जबकि नवीन लोक प्रशासन नैतिकता, उत्तरदायित्व, सामाजिक सापेक्षता, नमनीय तटस्थता एवं प्रतिबद्ध प्रशासनिक प्रणाली पर बल देता है। यह माना जाता है कि नवीन लोक प्रशासन सामाजिक परिवर्तन का सर्वश्रेष्ठ संवाहक है तथा यह लक्ष्य अभिमुखी है।

नवीन लोक प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं को निम्नलिखित रूपों में व्यक्त किया जा सकता है-

1. नवीन लोक प्रशासन परम्परागत लोक प्रशासन की 'यान्त्रिकता' एवं आर्थिक मानव की अवधारणा को स्वीकार नहीं करता है। यह मानवीय व्यवहार दृष्टिकोण एवं मानवीय सम्बन्धों का समर्थन करता है। दूसरे शब्दों में नवीन लोक प्रशासन मानवोन्मुख है।
2. यह राजनीति और प्रशासन के द्विभाजन तथा निजी एवं लोक प्रशासन के बीच के अन्तर को अस्वीकार करता है। इस तरह का विभाजन अव्यहारिक, अप्रासंगिक तथा अवास्तविक माना जाता है।
3. यह सम्बन्धात्मक है और ग्राहक केन्द्रित दृष्टिकोण पर बल देता है। यह इस बात पर बल देता है कि नागरिक को यह बताने का अधिकार होना चाहिए कि उनको क्या, किस प्रकार और कब चाहिए? संक्षेप में लोक प्रशासन को नागरिकों की रूचि एवं आवश्यकतानुसार सेवा करनी चाहिए।
4. यह परिवर्तन तथा नवीनता का समर्थक है। परम्परागत दृष्टिकोणों को त्यागता हुआ और व्यवहारवादी दृष्टिकोण की दीवार को लांघता हुआ नवीन लोक प्रशासन उत्तर व्यवहारवादी दृष्टिकोण के निकट पहुँच चुका है। साथ ही इसमें पारिस्थिकी एवं पर्यावरण के अध्ययन पर अधिक बल दिया जाता है।
5. कल्याणकारी योजनाओं को शीघ्र एवं प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए नवीन लोक प्रशासन परिवर्तनशील प्रशासनिक तंत्र, विकेन्द्रीकरण तथा प्रत्यायोजन का समर्थन करता है।
6. यह मूल्यों से परिपूर्ण प्रशासन, जनसहभागिता, उत्तरदायित्व तथा सामाजिक रूप से हितप्रद कार्यों पर बल देता है।

इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन परम्परागत लोक प्रशासन से कई दृष्टियों में भिन्न है। कुछ विचारक इसे एक मौलिक विषय के रूप में प्रस्तुत करते है तो कुछ अन्य विचारक इसे परम्परागत प्रशासन का ही एक संशोधित रूप मानते हैं। कैम्पबेल के अनुसार नवीन लोक प्रशासन का विषय मौलिक अध्ययन की अपेक्षा पुनर्व्याख्या पर अधिक बल देता है। इसी प्रकार एक अन्य विचारक राबर्ट टी0 गोलमब्यूस्की का कहना है कि नवीन लोक प्रशासन शब्दों में क्रांतिवाद का उद्-घोष करता है, किन्तु वास्तव में यह पुरातन सिद्धान्तों व तकनीकों की स्थिति है।

यथार्थ में अगर देखा जाये तो कैम्पबेल एवं गोलमब्यूस्की जैसे विचारक पूर्वाग्रह से ग्रसित प्रतीत होते हैं। इस सन्दर्भ में निग्रो एंव निग्रो के इस मत से सहमति व्यक्त की जा सकती है कि नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों ने रचनात्मक वाद-विवाद को प्रेरित किया है। उन्ही के शब्दों में ''जब से नवीन लोक प्रशासन का उदय हुआ है मूल्यों और नैतिकता के प्रश्न लोक प्रशासन के मुख्य मुद्दे रहे हैं। नवीन लोक प्रशासन को जो लोग नयी बोतल में

पुरानी शराब मानते है, वे लोक प्रशासन के विकास और परिवर्तन के पक्षधर नहीं माने जा सकते हैं, क्योंकि लोक प्रशासन के विचारों, व्यवहारों, कार्यशैली और तकनीकों में जो अर्वाचीन प्रवृत्तियां आयी हैं, उसे समय के बहाव के साथ स्वीकार करना होगा और इसके सकारात्मक उद्देश्यों को समर्थन देना होगा।''

4. 4.2 नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य

नवीन लोक प्रशासन के चार प्रमुख लक्ष्य है- प्रासंगिकता, मूल्य, सामाजिक समता तथा परिवर्तन। इनकी व्याख्या निम्नवत की जा सकती है-

4.4.2.1 प्रासंगिकता

नवीन लोक प्रशासन तथ्यों की प्रांसगिकता पर अत्यधिक बल देता है। यह परम्परागत लोक प्रशासन के लक्ष्यों- कार्यकुशलता एवं मितव्यतिता को समकालीन समाज की समस्याओं के समाधान हेतु अपर्याप्त मानता है और इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन का ज्ञान एवं शोध समाज की आवश्यकता के सन्दर्भ में प्रासंगिक तथा संगतिपूर्ण होना चाहिए।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन में प्रतिनिधियों ने 'नीति उन्मुख लोक प्रशासन' की आवश्यकता पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और इस बात पर प्रकाश डाला कि लोक प्रशासन को सभी प्रशासनिक कार्यों के राजनीतिक एवं आदर्श निहित अर्थों एवं तात्पर्यों पर स्पष्ट रूप से विचार करना चाहिए।

4.4.2.2 मूल्य

नवीन लोक प्रशासन आदर्शपरक है और मूल्यों पर आधारित अध्ययन को महत्व प्रदान करता है। यह परम्परागत लोक प्रशासन के मूल्यों को छिपाने की प्रवृत्ति तथा प्रक्रियात्मक तटस्थता को अस्वीकार करते हुए ऐसे शोध प्रयासों को अपनाने पर बल देता है, जो सामाजिक न्याय के अनुरूप हों। इसके अनुसार लोक प्रशासन को खुले रूप में उन्हीं मूल्यों को अपनाना होगा जो समाज में उत्पन्न समस्याओं का समाधान कर सकें तथा समाज के दुर्बल वर्गों के लिए सक्रिय कदम उठाये।

4.4.2.3 सामाजिक समता

नवीन लोक प्रशासन समाज की विषमता को दूर करके सामाजिक समानता एवं सामाजिक न्याय के सिद्धान्तों को अपनाने पर बल देता है, यह इस बात पर बल देता है कि लोक प्रशासन समाज के कमजोर एवं पिछड़े-वर्गों की आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक पीड़ा को समझे और इस दिशा में समुचित कदम उठाये। फैरडरिक्सन के शब्दों में ''वह लोक प्रशासन जो परिवर्तन लाने में असफल है, जो अल्प संख्यकों के अभावों को दूर करने का निरर्थक प्रयास करता है, संभवतः उसका प्रयोग अंततः उन्हीं अल्प संख्यकों को कुचलने के लिए किया जायेगा।'' इस प्रकार नवीन लोक प्रशासन में जन कल्याण पर विशेष बल दिया गया है।

4.4.2.4 परिवर्तन

नवीन लोक प्रशासन यथास्थिति बनाये रखने का विरोधी है और सामाजिक परिवर्तन में विश्वास करता है। इसमें इस बात पर बल दिया जाता है कि परिवर्तनों के समर्थक लोक प्रशासन को केवल शक्तिशाली हित समूहों या दबाव समूहों के अधीन कार्य नहीं करना चाहिए, बल्कि इसे तो सम्पूर्ण सामाजिक आर्थिक तंत्र में परिवर्तन का अगुवा बनना चाहिए। इस प्रकार सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के लिए एक सशक्त अभिमुखता ही नवीन लोक प्रशासन की अनिवार्य विषय वस्तु है। शीघ्र परिवर्तित वातावरण के अनुरूप संगठन के नवीन रूपों का विकास किया जाना चाहिए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि परम्परागत लोक प्रशासन की अपेक्षा नवीन लोक प्रशासन जातिगत कम और सार्वजनिक अधिक, वर्णनात्मक कम और आदेशात्मक अधिक, संस्था उन्मुख कम और जन प्रभाव उन्मुख अधिक तथा तटस्थ कम और आदर्शात्मक अधिक है। साथ ही इसमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने पर भी बल दिया गया है।

अभ्यास प्रश्न-

1. एक क्रियाकलाप के रूप में लोक प्रशासन प्राचीन काल से ही अस्तित्व में रहा है। सत्य/असत्य
2. कौटिल्य ने प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए कौन सा मार्ग अपनाया?
3. लोक प्रशासन का जनक किसे माना जाता है?
4. द्वितीय चरण (1927-1937) में लोक प्रशासन के किस पहलू पर बल दिया गया?
5. नवीन लोक प्रशासन का आरम्भ 1667 के हनी प्रतिवेदन से समझा जाता है। सत्य/असत्य
6. नवीन लोक प्रशासन राजनीति एवं प्रशासन के द्विभाजन को स्वीकार करता है। सत्य/असत्य
7. नवीन लोक प्रशासन के चार लक्ष्य लिखिए।

4.5 सारांश

शासन की एक क्रिया के रूप में लोक प्रशासन का अस्तित्व प्राचीन काल से ही देखने को मिलता है, लेकिन एक व्यवस्थित एवं स्वातत्व विषय के रूप में इसका अध्ययन उन्नीसवीं सदी के अंतिम दशक में संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रारम्भ हुआ। आधुनिक काल में विषय का विकास अनेक उतार चढाव से भरा हुआ हैं। प्रथम चरण (1887-1926) में लोक प्रशासन एवं राजनीति के पृथक्करण पर बल दिया गया। द्वितीय चरण (1927-1937) में प्रशासन के सैद्धान्तिक पहलू पर बल दिया गया। गुलिक व उर्विक ने प्रशासन के सिद्धान्तों को 'पोस्डकार्ब' के रूप में व्यक्त किया। तृतीय चरण (1938-1947) में प्रशासनिक सिद्धान्तों को चुनौती दी गयी। चतुर्थ चरण (1948-1970) में यह विषय पहचान के संकट से जूझता रहा। पंचम चरण (1971-1990) में इस विषय में अन्तःअनुशासनात्मक दृष्टिकोण का विकास हुआ तथा तुलनात्मक लोक प्रशासन एवं विकास प्रशासन की नूतन प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव हुआ। 1991 के बाद से उदारीकरण एवं वैश्वीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत लोक प्रशासन में 'नवीन लोक प्रबन्धन' की अवधारणा का विकास हुआ है।

नवीन लोक प्रशासन की अवधारणा का अभ्युदय सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों में लोककल्याणकारी राज्य की अवधारणा को मूर्त रूप देने के प्रयत्नों में हुआ। यह परम्परागत लोक प्रशासन में परिवर्तन की विचारधारा हैं। मितव्ययिता एवं कार्यकुशलता के लक्ष्य को अपर्याप्त मानते हुए नवीन लोक प्रशासन नैतिकता एवं सामाजिक उपयोगिता पर बल देता है। यह मान्वोन्मुख एवं सम्बन्धात्मक हैं तथा मूल्यों से परिपूर्ण परिवर्तनशील प्रशासनिकतंत्र, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, जनसहभागिता, उत्तरदायित्व तथा सार्वजनिक रूप से हितकर कार्यों पर बल देता हैं।

4.6 शब्दावली

राजतंत्रीय शासन- शासन की वह प्रणाली जिसमें समस्त शक्तियाँ एक व्यक्ति के (राजा या रानी) हाथ में केन्द्रित होती हैं और सामान्यतया उसका पद वंशानुगत आधार पर निर्धारित होता है।

द्विभाजन- दो भागों में।

मूल्य सापेक्षता- मूल्यों अथवा आदर्शों के प्रति झुकाव अथवा उसमें आस्था व्यक्त करना।

मितव्ययिता- कम व्यय में किसी कार्य को सम्पादित करन की प्रवृत्ति।

अधिकारी प्रवृत्ति- प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा अपने आपको आम जनता से उच्च समझने की प्रवृत्ति।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** राजनैतिक अर्थनीति, **3.** वुडरो विल्सन, **4.** सैद्धान्तिक पहलू , **5.** सत्य, **6.** असत्य, **7.** प्रासंगिकता, मूल्य, सामाजिक समता तथा परिवर्तन

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गोलमब्यूस्की, राबर्ट टी, (1977), पब्लिक एडमिनिस्टेशन एज ए डेवलपिंग डिसीप्लीन, मॉरसिल डेक्कर, न्यूयार्क।
2. अवस्थी एवं माहेश्वरी, (2008), लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
3. मेरिनी, फ्रैंक , (1971), टूवर्ड्स ए न्यू पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन-मिन्नोब्रुक पर्सपेक्टिव।

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. स्वेर्डलो इरविग, (1968), डेवलपमेंट एडमिनिस्ट्रेशनः कॉन्सेप्ट एण्ड प्राब्लम्स, सिरेकुस, युनिवर्सिटी प्रेस, सिरेकुस।
2. वर्मा, एस0पी0 एवं शर्मा एस0 के0, (1983), डेवलपमें न्ट एडमिनिस्ट्रेशन, आई0आई0पी0ए0, नई दिल्ली।

4.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास पर प्रकाश डालिए।
2. नवीन लोक प्रशासन से आप क्या समझते हैं? यह पुराने लोक प्रशासन से किस प्रकार भिन्न है?
3. नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्यों अथवा उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 5 लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध

इकाई की संरचना

5.0 प्रस्तावना
5.1 उद्देश्य
5.2 लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान
5.3 लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र
5.4 लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र
5.5 लोक प्रशासन एवं विधिशास्त्र
5.6 लोक प्रशासन एवं इतिहास
5.7 लोक प्रशासन एवं मनोविज्ञान
5.8 लोक प्रशासन एवं नीतिशास्त्र
5.9 सारांश
5.10 शब्दावली
5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.13 सहायक/उपयोगी सहायक पाठ्य सामग्री
5.14 निबंधात्मक प्रश्न

5.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपको अध्ययन के एक विषय के रूप में लोक प्रशासन के विकास से अवगत कराया गया इस इकाई में हम आपको लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से सम्बन्ध पर प्रकाश डालेंगे।

व्यापक अर्थ में ज्ञान का स्वरूप एकीकृत होता है। यदि उसे विभिन्न शाखाओं में विभाजित किया जाता है तो ऐसा इसलिए कि उससे अध्ययन की सुगमता प्राप्त हो जाती है। कोई भी प्रशासनिक व्यवस्था एक विशेष राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में कार्य करती है। अतः प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना एवं उसकी भूमिका को सही रूप में समझने के लिए उस राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश को समझना आवश्यक है, जिसमें वह कार्य करती है। इस हेतु संबंधित विषयों का ज्ञान आवश्यक है। दूसरे शब्दों में किसी सामाजिक व्यवस्था में लोक प्रशासन की भूमिका को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों से क्या सम्बन्ध है?

प्रस्तुत इकाई में दी गयी पाठ्य सामग्री को पढकर आप भली-भाँति यह स्पष्ट कर सकेंगे कि लोक प्रशासन का विषय अन्य सामाजिक विज्ञानों से किस प्रकार सम्बन्धित है।

5.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- यह समझ सकेंगे कि लोक प्रशासन किस प्रकार अन्य सामाजिक विज्ञानों से संबंधित है।
- यह स्पष्ट कर सकेंगे कि लोक प्रशासन किस प्रकार अपने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, कानूनी, ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक एवं नैतिक परिवेशों से प्रभावित होता है और उन्हें भी प्रभावित करता है।
- ज्ञान के एकीकृत स्वरूप पर प्रकाश डाल सकेंगे।

5.2 लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान

लोक प्रशासन शायद ही किसी अन्य सामाजिक विज्ञान से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, जितना कि राजनीति विज्ञान से। राजनीति विज्ञान राज्य, सरकार तथा उन समस्त संस्थाओं का अध्ययन करता है, जिसके माध्यम से समाज के सदस्य अपने अधिकारों का प्रयोग करते हैं। यह व्यक्ति एवं राज्य के सम्बन्धों पर प्रकाश डालता है। प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के लगभग आठवें दशक तक लोक प्रशासन, राजनीति विज्ञान का ही एक भाग माना जाता था। 1887 से संयुक्त राज्य अमेरिका में वुडरो विल्सन ने इसे राजनीति विज्ञान से पृथक करने का आह्वान किया। अपने लेख 'द स्टडी ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन' में विल्सन ने लिखा कि 'प्रशासन राजनीति के विषय क्षेत्र के बाहर है। प्रशासकीय समस्याऐं राजनीतिक समस्याऐं नहीं होती। यद्यपि राजनीति, प्रशासन के कार्यों का स्वरूप निर्धारित करती है, तथापि उसको यह अधिकार नहीं दिया जाना चाहिए कि वह प्रशासकीय पक्षों के बारे में हेर-फेर कर सके।' एक अन्य लेखक फ्रेंक गुडनाउ ने राजनीति विज्ञान एवं लोक प्रशासन के पृथक्करण का समर्थन करते हुए तर्क दिया कि 'राजनीति राज्य-इच्छा को प्रतिपादित करती है, जबकि प्रशासन इस इच्छा या नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है।' उपर्युक्त मत संयुक्त राज्य अमेरिका की तत्कालीन प्रशासनिक व्यवस्था में सुधारों से प्रेरित थे, जो भ्रष्टाचार एवं अक्षमता से ग्रसित था। इसका उद्देश्य उस 'इनामी पद्धति' की बुराइयों को दूर करना था, जिसके अनुसार सत्ता में आने वाला राजनैतिक दल प्रशासन चलाने के लिए अपने पूर्ववर्ती द्वारा नियुक्त अधिकारियों के स्थान पर अपने चुने अधिकारियों को नियुक्त करता था। लेकिन कालान्तर में यह महसूस किया जाने लगा कि लोक प्रशासन की राजनीति विज्ञान से पृथकता इस विषय के विकास को अवरूद्ध कर रही है। परिणामस्वरूप, समकालीन विद्वान लोक प्रशासन एवं राजनीति विज्ञान के एकीकरण का पुनः समर्थन करने लगे है।

यह एक सर्वविदित तथ्य है कि किसी भी देश की राजनीतिक व्यवस्था उसकी प्रशासकीय व्यवस्था से जुड़ी होती है। वास्तव में प्रशासकीय व्यवस्था का सृजन ही राजनीतिक व्यवस्था के माध्यम से होता है। ये दोनों एक-दूसरे को इस सीमा तक प्रभावित करते हैं कि कभी-कभी इनकी पृथक भूमिका निर्धारित करना कठिन होता है। डिमॉक ने सही कहा है कि 'लोक प्रशासन तथा राजनीति एक-दूसरे से इतने घनिष्ठ हैं कि इन दोनों के मध्य कोई विभाजन रेखा नहीं खींची जा सकती। राजनीतिज्ञ जब एक विभाग की अध्यक्षता करता है तो वह एक प्रशासक के रूप में कार्य करता है और जब वह सरकार में अपने दल की तस्वीर को सुधारने की कोशिश करता है, तो वह एक कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में अपनी भूमिका का निर्वाह करता है।'

सैद्धान्तिक दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि प्रशासन का कार्य वहाँ आरम्भ होता है, जहाँ राजनीतिज्ञ का कार्य समाप्त होता है। अर्थात राजनीतिज्ञ पहले नीतियों का निर्धारण करता है तथा उसके बाद उन नीतियों को क्रियान्वित करने का दायित्व प्रशासक का होता है। लेकिन व्यावहारिक स्थिति तो यह है कि नीतियों के निर्धारण में भी प्रशासक वर्ग महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। मंत्री जन प्रतिनिधि होते हैं, अपने विभाग के विशेषज्ञ नहीं। वे आते-जाते रहते हैं, स्थायी रूप से नहीं रहते। ऐसी स्थिति में उन्हें विशेषज्ञ प्रशासकों के सलाह पर निर्भर रहना पड़ता है। वरिष्ठ प्रशासक मंत्रियों को आवश्यक आंकड़े, जानकारी तथा सलाह देकर नीति-निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

वास्तव में अगर देखा जाय तो राजनीति की सफलता प्रशासकीय कार्यकुशलता पर और प्रशासकीय सफलता स्थायी राजनीति तथा स्वरूप पथ-प्रदर्शन पर आधारित है। दूसरे शब्दों में, राजनीति के बिना प्रशासन तथा प्रशासन के बिना राजनीति अपूर्ण है। विभिन्न देशों की राजनीतिक व्यवस्थायें भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है जो उनके प्रशासन की प्रकृति और स्वरूप को प्रभावित करती है। ऐसी स्थिति में राजनीतिक व्यवस्था को समझे बिना

प्रशासनिक व्यवस्था को समझना मुश्किल है। उदाहरणस्वरूप, एक लोकतांत्रिक शासन-व्यवस्था में प्रशासनिक कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने राजनीतिक स्वामी के आदेशों का पालन करें। ऐसी स्थिति में मैक्स वेबर द्वारा प्रतिपादित 'नौकरशाही की तटस्थता' की अवधारणा सही नहीं रहती है। इसी प्रकार साम्यवादी देशों या विकासशील देशों में लोक प्रशासन एक विशेष प्रकार की भूमिका निभाता है। अतः संबंधित देशों में लोक प्रशासन की भूमिका को समझने के लिए उन देशों की राजनीतिक व्यवस्था को समझना होगा।

राजनीति विज्ञान तथा लोक प्रशासन दोनों में अध्ययन के कुछ सामान्य क्षेत्र पाये जाते हैं, जैसे-तुलनात्मक संविधान, स्थानीय शासन, लोक नीति इत्यादि। इसके अतिरिक्त दोनों विषयों के शोधकर्ताओं की पद्धतियों एवं तकनीकों में भी बहुत कुछ समानता देखने को मिलती है।

इस प्रकार, यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन का राजनीति विज्ञान से निकट सम्बन्ध है। सैद्धान्तिक रूप से राजनीति एवं प्रशासन में भले ही भिन्नता हो, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इन्हें पृथक करना मुश्किल है। लेसली लिपसन ने ठीक ही कहा है कि ''सरकार के कार्यों के मध्य पूर्ण विभाजन की कोई रेखा खींचना असम्भव है। सरकार निरन्तर गति से चलने वाली एक प्रक्रिया है। व्यवस्थापन उसकी एक मंजिल है और प्रशासन दूसरी। दोनों एक-दूसरे से मिली हुई हैं और कुछ बिन्दुओं पर उनमें अन्तर कर पाना मुश्किल है।'' वास्तव में राजनीति एवं प्रशासन एक-दूसरे के पूरक हैं और उन्हें एक ही सिक्के का दो पहलू माना जा सकता है।

5.3 लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र

समाजशास्त्र सामाजिक संरचनाओं, प्रक्रियाओं, रीति-रिवाजों, परम्पराओं इत्यादि का क्रमबद्ध अध्ययन करता है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में यह व्यक्ति के समस्त क्रियाओं से सम्बन्धित है। लोक प्रशासन भी समाज की एक प्रक्रिया है। जहाँ एक तरफ सामाजिक परिवेश लोक प्रशासन की संरचना एवं भूमिका को प्रभावित करता है, वहीं दूसरी तरफ लोक प्रशासन भी कई बार सामाजिक परिवेश को प्रभावित करता है। विशेषकर उन परम्परागत समाजों में जो वर्गीय, जातिगत एवं धार्मिक प्रतिबद्धताओं से ग्रसित है और जहाँ पर्याप्त सामाजिक आर्थिक विषमताऐं विद्यमान हैं। लोक प्रशासन का अध्ययन बिना सामाजिक परिवेश को दृष्टिगत किये किया जाना सम्भव नहीं है। रिग्स एवं प्रेस्थस जैसे विद्वानों ने इसी उद्देश्य से लोक प्रशासन के अध्ययन में 'पारिस्थिकीय दृष्टिकोण' विकसित किया है।

प्रत्येक समाज कुछ विशेष लक्ष्यों, मूल्यों एवं विश्वासों से सम्बन्धित होता है। समाज का एक अंग होने के नाते लोक प्रशासन भी उन्हीं लक्ष्यों, मूल्यों एवं विश्वासों से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार इनमें पारस्परिक सम्बद्धता होती है। समाजशास्त्र का सम्बन्ध विभिन्न प्रकार के समूहों के व्यवहारों एवं उन तरीकों के अध्ययन से है, जिनसे कि समूह मनुष्य के कार्यों एवं मूल्य प्रवृत्तियों को प्रभावित करते हैं। प्रशासन एक सहकारी प्रयास है, जिसमें बहुत सारे लोग किन्हीं लक्ष्यों की प्राप्ति में संलग्न होते हैं। प्रशासक वर्ग स्वयं अपने आप में एक समूह है जिसे ''नौकरशाही'' कहा जाता है और जिसकी एक विशिष्ट पहचान होती है। यह समूह अपने सामाजिक वातावरण को प्रभावित करता है और स्वयं इससे प्रभावित भी होता है। ऐसी स्थिति में प्रशासक वर्ग के लिए विभिन्न सामाजिक समूहों, उनके व्यवहारों एवं सामाजिक जीवन को प्रभावित करने वाले विभिन्न कारकों की जानकारी आवश्यक है, जोकि उन्हें समाजशास्त्र ही उपलब्ध कराता है।

प्रशासन की समस्याओं को समझने के लिए केवल व्यक्ति को समझना ही पर्याप्त नहीं है, अपितु उस वातावरण को भी समझना आवश्यक है, जिसके अंतर्गत वह निवास करता है। उदाहरणस्वरूप- अपराधों को रोकना एक प्रमुख प्रशासनिक समस्या है, लेकिन ऐसी समस्या का जड़ से उन्मूलन तब तक संभव नहीं है, जब तक कि उन सामाजिक आर्थिक कारणों का पता नहीं लगा लिया जाता, जिसके कारण बड़े पैमाने पर समाज में अपराध की प्रवृत्तियां

उत्पन्न होती है। यहाँ पर समाजशास्त्र लोक प्रशासन की मदद करता है। बहुत से व्यक्ति मजबूरी के कारण अपराध करते हैं और उनमें सुधरने की प्रवृत्ति होती है। अतः ऐसे व्यक्तियों के प्रति एक मानवीय दृष्टिकोण अपनाये जाने की जरूरत होती है। समाजशास्त्र प्रशासकों में इस तरह के मानवीय दृष्टिकोण विकसित करने में सहायता प्रदान करता है। इसी से प्रेरित होकर जेल व्यवस्था में कई प्रकार के सुधार किये गये हैं और अपराधियों को समाजोपयोगी बनाने हेतु अनेक प्रकार की योजनाऐं चलाई जाती हैं।

आधुनिक लोक कल्याणकारी राज्यों के अंतर्गत लोक प्रशासन का कार्य केवल कानून एवं व्यवस्था को बनाये रखने या कर वसूलने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि व्यापक सामाजिक हित में विभिन्न प्रकार की कल्याणकारी योजनाओं को लागू करने से भी सम्बन्धित है। किसी योजना का सफल कार्यान्वयन इस बात पर निर्भर करता है कि प्रशासक उस योजना के निहितार्थ सामाजिक मूल्यों एवं उद्देश्यों के प्रति कितनी आस्था या प्रतिबद्धता रखते हैं। लोक प्रशासन में 'प्रतिबद्ध नौकरशाही' की अवधारणा का विकास इसी सन्दर्भ में हुआ है। यहाँ समाजशास्त्र किसी नीतिगत फैसले के सामाजिक निहितार्थ को समझने में लोक प्रशासन की मदद करता है।

लोक प्रशासन की परंपरागत अवधारणा में मानव व्यवहार को स्थिर मानकर प्रशासन की संरचनाओं को अधिक महत्व दिया गया था। लेकिन समकालीन सिद्धान्तवादी मानव व्यवहार को गतिशील मानते हुए यह जानने में उत्सुकता रखते हैं कि किसी विशेष परिस्थिति में प्रशासक द्वारा कोई विशेष निर्णय क्यों लिया गया? इस तरह के शोध हेतु प्रशासकों की सामाजिक पृष्ठभूमि का ज्ञान आवश्यक होता है, जिसे प्राप्त करने के लिए समाजशास्त्र द्वारा विकसित साधनों का प्रयोग किया जा सकता है। विशेषकर आधुनिक काल में लोक प्रशासन में ऐसे शोध की प्रवृत्ति बढी हैं, जिसमें बड़े पैमाने पर समाजशास्त्र द्वारा विकसित प्रतिमानों का प्रयोग किया जा रहा है।

मैक्स बेवर जैसे समाजशास्त्री द्वारा प्रस्तुत 'नौकरशाही का सिद्धान्त' लोक प्रशासन का एक चर्चित सिद्धान्त है, जिसने कई विद्वानों को प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त पदस्थिति, वर्ग, सत्ता इत्यादि पर किये गये समाजशास्त्र के कुछ हाल के शोधकार्यों ने लोक प्रशासन के अध्ययन को समृद्ध करने में सहायता दी है। इस प्रकार, लोक प्रशासन एवं समाजशास्त्र एक-दूसरे से घनिष्ठ रूप से संबंधित है।

5.4 लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र

लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र की निकटता प्राचीनकाल से ही देखने को मिलती है। कौटिल्य का ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' न केवल प्रशासन की कला पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है बल्कि अर्थशास्त्र का भी सन्दर्भ-ग्रन्थ है। कई मामलों में यह ग्रन्थ लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र के निकट सम्बन्धों को दर्शाता है।

लोक-कल्याणकारी राज्य की अवधारणा ने लोक प्रशासन एवं अर्थशास्त्र की घनिष्ठता को और भी बढा दिया है। आज के सन्दर्भ में प्रशासक के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसे आर्थिक समस्याओं के बारे में पर्याप्त समझदारी है। वस्तुतः प्रत्येक प्रशासकीय नीति का मूल्यांकन उसके आर्थिक परिणामों के आधार पर ही किया जाता है। यही कारण है कि विभिन्न दबाव समूह अपने-अपने आर्थिक हितों के संरक्षण के लिए प्रशासन को प्रभावित करने का प्रयत्न करते हैं। स्पष्टतः आर्थिक समस्याओं से अवगत न होने की स्थिति में प्रशासक अपने उत्तरदायित्वों का सही तरीके से निर्वाह नहीं कर सकते।

नवीन आर्थिक विचार प्रशासन के संगठन और उसकी रीतियों को महत्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करते रहे हैं। व्यावसायिक क्षेत्र में राज्य के प्रवेश के फलस्वरूप नये प्रकार के प्रशासकीय संगठन, सार्वजनिक निगम का उदय हुआ है। आज प्रशासकों के नियंत्रण में बीमा कम्पनियों के प्रबन्ध बैकिंग, कृषि से सम्बन्धित समस्याओं का निपटारा आदि है। इस प्रकार आर्थिक मामलों में सरकारी क्षेत्र की भूमिका निरन्तर बढती रही है, जिसने लोक प्रशासन में अर्थशास्त्र के ज्ञान की महत्ता को बढा दिया है। यही कारण है कि हमारे देश में 'भारतीय आर्थिक सेवा'

का अलग से गठन किया गया है। इस प्रकार अर्थशास्त्र तथा लोक प्रशासन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। यदि लोक प्रशासन अर्थशास्त्र को संगठन प्रदान करता है तो अर्थशास्त्र, प्रशासन को संगठन के लिए धन के स्त्रोत प्रदान करता है। इन दोनों की घनिष्ठता निम्नलिखित रूप से स्पष्ट की जा सकती है-

1. एक आर्थिक प्रश्न भी है और यह लोक प्रशासन का विषय भी है।
2. बजट का सम्बन्ध लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र दोनों से ही है।
3. उद्योगों का राष्ट्रीयकरण केवल एक आर्थिक प्रश्न ही नहीं है, यह लोक प्रशासन का गम्भीर विषय भी है।
4. उत्पादन के साधनों में परिवर्तन के साथ समाज में परिवर्तन होता है और जिसके फलस्वरूप हमारी प्रशासकीय व्यवस्था भी बदल जाती है।
5. राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था प्रशासन की कार्यकुशलता पर अबलम्बित है।
6. नियोजन अर्थशास्त्र तथा लोक प्रशासन दोनों से सम्बन्धित है।
7. अर्थशास्त्र का 'सांख्यिकी विभाग' लोक प्रशासन के संगठन का महत्वपूर्ण विभाग है।
8. सामान्य नीतियों के निर्धारण पर आर्थिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता है।
9. सरकारी तथा सार्वजनिक निगम, उद्योग-धन्धों की व्यवस्था, श्रमिक समस्या, मुद्रा, अधिकोषण आदि का सम्बन्ध लोक प्रशासन तथा अर्थशास्त्र दोनों से है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि लोक प्रशासन का अर्थशास्त्र के साथ निकट सम्बन्ध है।

5.5 लोक प्रशासन एवं विधिशास्त्र

विधि या कानून सत्ता द्वारा आरोपित आचार-विचार के वे नियम हैं, जिसका पालन करना अनिवार्य होता है और जिसका उल्लंघन करने पर व्यक्ति दंड का भागी होता है। नियमों को लागू करने का कार्य प्रशासन का होता है। अतः लोक प्रशासन एंव विधिशास्त्र एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।

लोक प्रशासन का संचालन देश की विधियों द्वारा निर्धारित सीमाओं के अंतर्गत होता है। प्रशासक कोई ऐसा कार्य नहीं कर सकता जो विधि के प्रतिकूल हो, भले ही अन्य आधारों पर वह विवेकपूर्ण क्यों न प्रतीत होता हो। यथार्थ में लोक प्रशासन को विधि के दाहिनी ओर रहना होता है। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ है कि वह न केवल ऐसे कार्य करे जिनसे विधियों का उल्लंघन न हो, अपितु ऐसे कार्य करे जिनके लिए कानून अनुमति प्रदान करता हो। लोक प्रशासन एंव निजी प्रशासन में इसी आधार पर अन्तर किया जाता है कि निजी प्रशासन वैधानिक सत्ता की मर्यादा को उस रूप में स्वीकार नहीं करता है जिस रूप में लोक प्रशासन करता है। यद्यपि कानून प्रशासन को पर्याप्त 'स्वविवेकपूर्ण शक्तियां' भी प्रदान करता है, परन्तु स्वविवेक का प्रयोग भी स्वेच्छाचारी तरीके से नहीं किया जा सकता।

अधिकांश विधियों में सार्वजनिक नीतियों की अभिव्यक्ति होती है, जिसे क्रियान्वित करना प्रशासन का मुख्य दायित्व है। विल्सन के शब्दों में ''लोक प्रशासन सार्वजनिक विधि के व्यवस्थित तथा विस्तृत कार्यान्वयन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।'' इस निकट सम्बन्ध के कारण ही कई देशों में लोक प्रशासन को मुख्यतः सार्वजनिक विधि की एक शाखा के रूप में ही मान्यता प्राप्त है। यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि प्रशासन की भूमिका केवल विधियों के क्रियान्वयन तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विधियों के निर्माण से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है। अधिकांश विधेयकों की उत्पत्ति प्रशासकीय विभागों में ही होती है।

प्रशासन के उत्तरदायित्व को वहन करने के क्षेत्र में विधि एक बहुत बड़ा साधन है। प्रशासन के अनाधिकृत कार्यों तथा वैधानिक सत्ता के उल्लंघन को न्यायालय विधियों के अनुसार ठीक कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त विधि के आधार पर प्रशासकों को नागरिकों के अधिकारों का अतिक्रमण करने से रोका जा सकता है। एक बड़ी सीमा तक

विधि की मौलिक धारणाओं की रचना को प्रभावित करती है। वस्तुतः इसी आधार पर हम उन विधियों के औचित्य की व्याख्या कर सकते हैं, जिनके द्वारा समाज के कमजोर वर्गों के लोगों को शासन द्वारा संरक्षण प्रदान किया जाता है।

प्रशासन के विरूद्ध जाँच करने वाले अधिकारी 'ओमबुड्समैन' (भारतीय रूप लोकपाल एवं लोकायुक्त) का अध्ययन लोक प्रशासन के अंतर्गत जन-शिकायतों को दूर करने वाली संस्था के रूप में किया जाता है। इस प्रकार की संस्थाओं का अध्ययन विधिशास्त्र तथा लोक प्रशासन के बीच बढते हुए सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त, प्रत्यायोजित विधायन, प्रशासनिक न्यायाधिकरण का गठन, कार्य निष्पादन जैसे कुछ विषयों का अध्ययन लोक प्रशासन तथा विधिशास्त्र दोनों विषयों में किया जाता है। निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन का विधिशास्त्र से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।

5.6 लोक प्रशासन एवं इतिहास

इतिहास सामाजिक विज्ञान की वह शाखा है जो हमें भूतकाल की जानकारी उपलब्ध कराता है। लोक प्रशासन के अध्ययन हेतु अपेक्षित सामग्री हमें इतिहास से प्रचूर मात्रा में उपलब्ध होता है। वास्तव में ऐतिहासिक सन्दर्भ की अनुपस्थिति में किसी भी देश की प्रशासकीय प्रणाली का अध्ययन समुचित रूप से नहीं किया जा सकता। सच तो यह है कि विभिन्न प्रशासकीय संस्थाओं की उत्पत्ति और विकास को केवल इतिहास की सहायता से ही समझा जा सकता है।

इतिहास मानव अनुभवों की विशाल खान है। हमारी प्राचीन प्रशासनिक समस्याऐं क्या थीं और विशेष परिस्थितियों में उनका समाधान किस प्रकार हुआ? यह सब इतिहास से हमें ज्ञात हो सकता है। इतिहास में हम लोक प्रशासन के लिए उदाहरण एवं चेतावनी दोनों ही प्राप्त करते हैं। प्रशासन की भावी रूपरेखा तैयार करने में इतिहास हमारी बहुत बड़ी सहायता करता है। लोक प्रशासन अन्य प्राकृतिक विज्ञानों की भाँति प्रयोगात्मक नहीं है। इतिहास में प्रशासन सम्बन्धी जो अनुभव है वे ही हमारे लिए प्रयोग की सामग्री है। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में कौन-कौन से विचार कब और कैसी परिस्थितियों में उत्पन्न होते रहे हैं, किस प्रकार उसका खण्डन अथवा समर्थन होता रहा है, यह सब हमें इतिहास से मिल सकता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन की परम्परागत पद्धतियों में ऐतिहासिक पद्धति काफी लोकप्रिय रही है। इस सम्बन्ध में एल0डी0 व्हाइट की दो पुस्तकें 'द फेडरलिस्ट्स' तथा 'जेफ्रसोनियन्स' काफी चर्चित रही हैं। इन पुस्तकों में अमेरिकी गणतन्त्र के प्रथम चालीस वर्षों के संघ प्रशासन का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। ये पुस्तकें उस समय की प्रशासकीय व्यवस्था को समझने के लिए महत्वपूर्ण विषय सामग्री प्रदान करती हैं। इसके अतिरिक्त एस0 बी0 क्राइन्स की 'एन इंटोडक्शन टू द एडमिनिस्ट्रेटिव हिस्ट्री ऑफ में डिवल इंगलैण्ड' मुखर्जी की 'लोकल गवर्नमेंण्ट इन एन्सिऐंट इण्डिया' जदुनाथ सरकार द्वारा रचित 'मुगल एडमिनिस्टेशन' बी0 जी0 सप्रे की 'ग्रोथ ऑफ इन्डियन एडमिनिस्ट्रेशन' इत्यादि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

इस प्रकार का प्रशासनिक इतिहास का अध्ययन समकालीन लोक प्रशासन की पृष्टभूमि को समझने में हमारी मदद करता है। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा प्रचलित प्रशासकीय व्यवस्थाओं पर विशेष ध्यान देने की प्रवृत्ति लोक प्रशासन के विषय के लिए एक शुभ संकेत है, क्योंकि इससे अत्यन्त मूल्यवान सामग्री प्राप्त होगी। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन इतिहास से भी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं।

5.7 लोक प्रशासन एवं मनोविज्ञान

मनोविज्ञान समाज में मानवीय आचरण का अध्ययन है और लोक प्रशासन मानवीय प्रक्रियाओं का। अब से पहले प्रशासन में मनोविज्ञान के महत्व को स्वीकार नहीं किया जाता था, परन्तु अर्थशास्त्र की भाँति आज मनुष्य की

प्रत्येक क्रिया में मनोवैज्ञानिक तत्व को खोजने की चेष्टा की जाती है। लोक प्रशासन में मनोविज्ञान का महत्व दिन-प्रतिदिन बढ रहा है। विशेषकर सामाजिक एवं ओद्यौगिक मनोविज्ञान का महत्व आज सभी लोग स्वीकार करते हैं। सभी लोक कर्मचारियों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे अपने राजनीतिक स्वामी(जनता) के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाये रखेंगे और अच्छे सम्बन्धों को विकसित करने के लिए मनोविज्ञान की जानकारी आवश्यक है। मानव की प्रकृति परिवर्तनशील है। कई बार परिस्थितिवश अथवा किसी भावावेश में आकर व्यक्ति अपने व्यवहार को बदल देता है। ऐसी स्थिति में एक कुशल प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि वह जनमनोविज्ञान से परिचित हो। जनमत को समझने में मनोविज्ञान से काफी सहायता मिलती है। बहुत से अपराधों का विश्लेषण इसी आधार पर किया जाता है। इसके अतिरिक्त लोक सेवाओं में भर्ती के समय मनोवैज्ञानिकों द्वारा विकसित बुद्धि परिक्षणों का अधिकाधिक मात्रा में प्रयेाग होने लगा है। लोक सेवाओं के क्षेत्र में उत्प्रेरणाओं तथा मनोबल की समस्याऐं यथार्थ में मनोवैज्ञानिक समस्याऐं हैं, जिन्हें मनोविज्ञान की मदद से ही समझा जा सकता है तथा उनका निराकरण किया जा सकता है।

5.8 लोक प्रशासन एवं नीतिशास्त्र

नीतिशास्त्र मानव आचरण एवं व्यवहार के सम्बन्ध में उचित, अनुचित का ज्ञान कराता है। लोक प्रशासन का उद्देश्य ऐसे अनुकूल एवं स्वस्थ वातावरण का निर्माण करना है, जिसमें नैतिकता संभव हो सके। अतः ये दोनों विषय एक-दूसरे से सम्बन्धित है।

प्रशासन में नैतिकता का अपना एक विशिष्ट स्थान है। जिस प्रकार हम नैतिकता के अभाव में स्वस्थ राजनीति की कल्पना नहीं कर सकते, उसी प्रकार इसके अभाव में कुशल एवं उत्तरदायी प्रशासन की कल्पना करना व्यर्थ है। नैतिक वातावरण की उत्पत्ति प्रशासन का लक्ष्य है। नैतिकता प्रशासन को वह मापदण्ड प्रदान करती है, जिसकी सहायता से प्रशासक-वर्ग के कार्यों का मूल्यांकन किया जा सकता है। यद्यपि परम्परागत रूप से 'मितव्ययिता' एवं 'कार्यकुशलता' को प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य माना जाता रहा है, किन्तु वास्तविकता यह है कि नैतिकताविहीन प्रशासन न तो 'मितव्ययी' हो सकता है न ही कार्यकुशल। ऐसे प्रशासन से हम न तो प्रगति की अपेक्षा कर सकते हैं, नहीं जीवन में मूल्यवान वस्तुओं की।

विज्ञान और प्रविधि स्वयं किसी भी सामाजिक समस्या का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकती। चाहे वे जातिगत या साम्प्रदायिक विद्वेष एवं संघर्ष के रूप में हो या छुआछूत, सती प्रथा, बाल विवाह, नारी उत्पीड़न जैसी सामाजिक बुराईयों के रूप में। हमें इन समस्याओं के समाधान के लिए ऐसी सामाजिक नैतिकता की आवश्यकता है जो मनुष्य में मानवीय गुणों को बढावा दे। यथार्थ में लोकतंत्र का अस्तित्व ही उच्च नैतिक गुणों को विकसित किये बिना सम्भव नहीं है। यदि मनुष्यों के बीच बन्धुत्व की भावना को जान बूझकर विकसित नहीं किया गया तो प्रविधि का विकास अन्ततोगत्वा विनाश एवं अराजकता को ही जन्म देगा। इसलिए हमारी आज की पृष्ठभूमि में उच्च नैतिक गुणों से सम्पन्न व्यक्तियों की जितनी अधिक आवश्यकता है, उतनी पहले कभी नहीं थी। वस्तुतः आज के युग में प्रशासन की बागडोर ऐसे लेागों के हाथ में सौंपे जाने पर ही समाज एवं राष्ट्र का कल्याण हो सकता है।

लोक प्रशासकों में जो गुण सबसे अधिक अपेक्षित है वह है ईमानदारी। परन्तु आज हमारे देश के प्रशासकों में इस गुण का सर्वथा अभाव है। आम लोगों में यह धारणा बन गयी है कि बिना रिश्वत के कोई भी प्रशासनिक कार्य सम्पन्न नहीं होता। वास्तव में सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास इसका एक प्रमुख कारण है। विभिन्न विकास एवं कल्याणकारी योजनाओं के लिए आवंटित धनराशि का एक बहुत बड़ा हिस्सा प्रशासनिक अधिकारियों एवं राजनीतिज्ञों द्वारा हड़प लिया जाता है। ऐसी स्थिति में क्या हम अपेक्षित प्रगति की कल्पना कर सकते है? वास्तव में देश की प्रगति को सम्भव बनाने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि देश के प्रशासन में

व्याप्त भ्रष्टाचार का अन्त हो। नीतिशास्त्र का अध्ययन तथा उसके नियमों का कार्यान्वयन हमें वांछित लक्ष्य की ओर आगे बढने की प्रेरणा दे सकता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. प्राचीन काल से लेकर उन्नीसवीं सदी के लगभग आठवें दशक तक लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान का ही एक भाग माना जाता था। सत्य/असत्य
2. ..... ने लोक प्रशासन को राजनीति विज्ञान से पृथक करने का आह्वान किया।
3. सामाजिक परिवेश लोक प्रशासन की संरचना को प्रभावित नहीं करता है। सत्य/असत्य
4. प्रशासक वर्ग अपने आप में एक समूह है जिसे ..... कहा जाता है।
5. आज के प्रशासक के लिए आर्थिक समस्याओं की पर्याप्त जानकारी आवश्यक है। सत्य/असत्य
6. लोक प्रशासन इतिहास से सम्बन्धित नहीं है। सत्य/असत्य
7. लोक सेवा के क्षेत्र में उत्प्रेरणाओं तथा मनोबल की समस्याऐं यथार्थ में ..... समस्याऐं हैं।
8. परम्परागत रूप से मितव्ययिता एवं ..... को प्रशासन का मुख्य लक्ष्य माना जाता रहा है।

5.9 सारांश

विभिन्न सामाजिक घटनाऐं एक-दूसरे से सम्बद्ध होती हैं। अतः किसी भी सामाजिक घटना का विश्लेषण उसके विभिन्न आयामों को समझे बिना नहीं किया जा सकता। ज्ञान एक समन्वित इकाई है, लेकिन इसके विभिन्न पहलुओं के विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता ने विशिष्टीकरण को प्रेरित किया। यद्यपि विशिष्टीकरण की वृद्धि से शोध को बढावा मिला, लेकिन इससे सामाजिक यथार्थ के प्रति एकीकृत दृष्टिकोण की आवश्यकता की पूर्ति नहीं हो पाई है। अतः विभिन्न विषयों के अध्ययन में 'अन्तः अनुशासनात्मक दृष्टिकोण' अपनाना आवश्यक हो गया है। लोक प्रशासन का अन्य सामाजिक विज्ञानों- राजनीति विज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, विधिशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान तथा नीतिशास्त्र से घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसका अभ्युदय राजनीति विज्ञान से हुआ है। कुछ सताब्दी पूर्व इसे राजनीति विज्ञान से अलग किया गया, लेकिन एक स्वतंत्र विषय के रूप में बनाए रखने में कठिनाई हो रही है। यह महसूस किया जा रहा है कि राजनीति विज्ञान से ली गयी संकल्पनाओं से लोक प्रशासन को सुदृढ किया जाना चाहिए। सैद्धान्तिक दृष्टि से राजनीति एवं प्रशासन भले ही अलग-अलग हों, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि से इनमें भिन्नता करना मुश्किल है। इसी प्रकार समाजशास्त्र से भी इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि बिना सामाजिक परिवेश को समझे प्रशासन की प्रकृति एवं भूमिका को समझना मुश्किल है। मैक्स बेवर जैसे समाजशास्त्री के कार्यों ने लोक प्रशासन के सिद्धान्तों और व्यवहारों को प्रभावित किया है। आधुनिक काल में प्रशासन को सामाजिक परिवर्तन का एक प्रमुख संवाहक माना जाता है।

इसी प्रकार नियोजित आर्थिक विकास की आवश्यकताओं ने अर्थशास्त्र के साथ भी लोक प्रशासन के सम्बन्धों को मजबूत बनाया है। नीतियों को प्रभावी रूप से क्रियान्वित करने के लिए आधुनिक प्रशासकों को उसके आर्थिक पहलुओं की जानकारी आवश्यक है।

अर्द्ध-विकसित एवं विकासशील देशों में प्रशासन का केन्द्र-बिन्दु निर्धनता का उन्मूलन करना है। संसाधनों को संघटित करने सम्बन्धी सभी मामलों (कराधान, निर्यात, आयात आदि) का प्रशासन पर व्यापक प्रभाव पड़ता है।

प्रशासनिक संस्थाओं के वर्तमान स्वरूप को सही रूप में समझने के लिए उसके अतीत को जानना आवश्यक है। इस दृष्टि से इतिहास का ज्ञान लोक प्रशासन में लाभदायक है। विधिशास्त्र के साथ भी लोक प्रशासन का अटूट सम्बन्ध है, क्योंकि प्रशासन को सार्वजनिक विधि के व्यवस्थित निष्पादन का यंत्र समझा जाता है। इसके अतिरिक्त आधुनिक काल में एक कुशल प्रशासक के लिए यह आवश्यक है कि 'जन मनोविज्ञान' से परिचित हो। इस दृष्टि से

मनोविज्ञान से भी लोक प्रशासन की निकटता बढी है। अंत में बढते हुए प्रशासनिक भ्रष्टाचार तथा लालफीताशाही की प्रवृत्तियों के कारण लोक प्रशासन में नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना पर बहुत अधिक बल दिया जा रहा है। इस दृष्टि से नीतिशास्त्र के साथ भी इसके सम्बन्धों में प्रगाढता आई है।

5.10 शब्दावली

इनामी पद्धति- अमेरिका में पायी जाने वाली इस व्यवस्था को पद पुरस्कार व्यवस्था के नाम से भी जाना जाता है। यह एक प्रशासनिक बुराई थी जिसके अंतर्गत प्रत्येक चुनाव के बाद नया प्रशासनिक अध्यक्ष अपनी रूचि के अनुसार प्रशासनिक पदों पर अपने दल के लोगों की नियुक्ति करता था।

विकासशील देश- ऐसा देश जो अर्द्ध-विकसित अवस्था से विकास की ओर अग्रसर है।

प्रतिबद्ध नौकरशाही- कुछ निश्चित उददेश्यों एवं विचारधाराओं के प्रति समर्पित प्रशासनिक कर्मचारियों का वर्ग या प्रशासनिक व्यवस्था।

मनोबल- व्यक्तिगत अथवा सामूहिक आधार पर मानसिक या नैतिक विकास।

ओम्बुडसमैन- संसद या ऐसी ही किसी संस्था द्वारा नियुक्त अधिकारी जो कार्यपालिका के नियंत्रण से मुक्त हो और जो सरकारी विभागों द्वारा नागरिकों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार की शिकायतों की जाँच करे तथा शिकायतों का उचित समाधान सुझाये।

5.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** वुडरो विल्सन, **3.** असत्य, **4.** नौकरशाही, **5.** सत्य, **6.** असत्य, **7.** मनौवैज्ञानिक, **8.** कार्यकुशलता

5.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शरण, परमात्मा एवं चतुर्वेदी, दिनेश चन्द्र, (1985), लोक प्रशासन, मीनाक्षी प्रकाशन मेरठ।
2. सिंह, आर0 एन0,(1978), लोक प्रशासन सिद्धान्त एवं व्यवहार, रतन प्रकाशन मंदिर आगरा।

5.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. डिमॉक, एम0 इ0 एवं डिमॉक जी0 ए0 (1975) पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, ऑक्सफोर्ड एण्ड आई.बी.एच.पब्लिक कम्पनी, नई दिल्ली।
2. शर्मा, एम0 पी0, (1960), पब्लिक एडमिनिस्टेशन थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस, किताब महल इलाहाबाद।

5.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन का राजनीति विज्ञान, समाजशाशास्त्र तथा अर्थशास्त्र से क्या सम्बन्ध है? विवेचना कीजिए।
2. लोक प्रशासन का विधिशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान एवं नीतिशास्त्र से सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।

इकाई- 6 विकास प्रशासन

इकाई की संरचना

6.0 प्रस्तावना
6.1 उद्देश्य
6.2 विकास प्रशासन
    6.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
    6.2.2 विकास प्रशासन का उद्देश्य
    6.2.3 विकास प्रशासन की विशेषताऐं
    6.2.4 विकास प्रशासन की आवश्यक शर्तें
    6.2.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र
6.3 भारत में विकास प्रशासन
6.4 सारांश
6.5 शब्दावली
6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.9 निबंधात्मक प्रश्न

6.0 प्रस्तावना

विकास प्रशासन द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात नये स्वतंत्र राष्ट्रों के उदय एवं पुनर्निर्माण की धारणाओं से सम्बन्धित है। इसके अन्तर्गत विकास को सर्वोच्चता प्रदान करने हेतु समाज में आर्थिक-सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन की धारा को प्रमुखता देना है। विकास प्रशासन के माध्यम से प्रशासन की यह पहल होती है कि देश के लोगों का सर्वांगीण विकास एवं प्रशासन में सहभागिता सुनिश्चित की जा सके। तीसरी दुनिया के अधिकांश देशों में गरीबी, बेरोजगारी, अशिक्षा, कुपोषण एक सामान्य स्थिति थी। इन रूग्ण(बीमार) स्थितियों को परिवर्तित करने के लिए कम संसाधनों में अधिक से अधिक लोगों के जीवन स्तर को सुधारना एक कड़ी चुनौती थी। इसी सन्दर्भ में विकाश प्रशासन का उदय होता है जिसके अन्तर्गत सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लक्ष्यों को केन्द्रित करके उनका समाधान त्वरित समय में किया जा सके।

6.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विकास प्रशासन की अवधारणा, अर्थ एवं उद्देश्यों के बारे में जान करेंगे।
- विकास प्रशासन के विशेषताओं, क्षेत्र एवं आवश्यक शर्तों के सम्बन्ध में जान करेंगे।
- भारत में विकास प्रशासन की प्रगति के बारे में जान सकेंगे।

6.2 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन एक गतिशील और परिवर्तनशील अवधारणा है, जो समाज में आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक उद्देश्यों के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। यह सन्दर्भ प्राजातांत्रिक विधाओं में जनता की अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए एवं उनके जीवन स्तर को उपर लाने का एक प्रयास है। स्वतंत्रता के पश्चात अधिकांश देशों ने संवैधानिक एवं समाजवादी उद्देश्यों हेतु कई प्रकार के प्रशासनिक प्रयास किए गये। इनमें मुख्यतः रोजगार उन्मुख योजनाऐं, गरीबी रेखा से उपर उठाने के प्रयास एवं लोगों को प्राथमिक उपचार की आधारभूत सुविधाऐं उपलब्ध कराना शामिल है। आज विश्व के देश विकास कार्यों में लगे हैं और उन कार्यों को सुचारू रूप से करने के लिए विकास प्रशासन की आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता द्वितीय महायुद्ध के बाद उत्पन्न परिस्थितियों के कारण महसूस की गयी। युद्ध की विभीषिका ने देशों के आधारभूत ढ़ाँचागत व्यवस्था पर जबरदस्त कुठाराघात किया, जिसके कारण देशों को योजनाओं को कार्यान्वित करने के लिए नियोजकों, प्रशासकों एवं अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों की सहायता लेने के लिए बाध्य होना पड़ा। एक विषय के रूप में विकास प्रशासन अमेरिकी उपज है, जिसके विविध रूप अफ्रीका, लैटिन अमेरिका एवं एशिया के देशों में प्रचुर मात्रा में देखने को मिलता है। इन देशों में विकास प्रशासन का महत्व इतना हो गया है कि यहाँ इसकी प्रशासनिक संरचनाओं, संगठनों, नीतियों, योजनाओं, कार्यों एवं परियोजनाओं को विकासात्मक उद्देश्यों एवं लक्ष्यों के रूप में जाना गया है। आज के दौर में विकासात्मक कार्य राष्ट्र निर्माण और सामाजिक-आर्थिक प्रगति को लक्ष्य करके विभिन्न सामाजिक-राजनीतिक एवं आर्थिक उद्देश्यों को मूर्त रूप दे रहे हैं।

6.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

विकास प्रशासन की रचना का उद्देश्य यह अध्ययन करना है कि लोक प्रशासन सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विभिन्न पारिस्थितिकीय विन्यासों में किस प्रकार कार्य करता है और परिवर्तित भी होता है। इस विस्तृत परिप्रेक्ष्य में 'विकास प्रशासन' शब्द की अनेक व्याख्याएँ की गयी हैं। शब्दकोष में 'विकास' शब्द का अर्थ उद्देश्यमूलक है, क्योंकि इसका उल्लेख प्रायः उच्चतर, पूर्णतर और अधिकतर परिपक्वतापूर्ण स्थिति की ओर बढ़ना है। 'विकास' को मन की एक स्थिति तथा 'एक दिशा' के रूप में भी देखा गया है। एक निश्चित लक्ष्य की अपेक्षा विकास एक विशिष्ट दिशा में परिवर्तन की गति है। इसके अतिरिक्त विकास को परिवर्तन के उस पक्ष के रूप में भी देखा गया है जो नियोजित तथा अभीष्ट हो और प्रशासकीय कार्यों से निर्देशित हो।

'विकास प्रशासन' दो शब्दों के योग से बना है, विकास और प्रशासन। 'विकास' शब्द का अर्थ होता है निरन्तर आगे बढ़ना और 'प्रशासन' का अर्थ है सेवा करना। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विकास प्रशासन में जनता की सेवा के लिए विकास कार्यों को करना निहित है। लोक प्रशासन में विकास का तात्पर्य किसी सामाजिक संरचना का प्रगति की ओर बढ़ना है। इस प्रकार समाज में प्रगति की दिशा में जो भी परिवर्तन होते हैं उन्हें विकास की संज्ञा दी जाती है। विकास प्रशासन का आज विशेष महत्व है। इस शब्द को सबसे पहले 1955 में भारतीय विद्वान यू0 एल0 गोस्वामी ने प्रयोग किया था। परन्तु इसको औपचारिक मान्यता उस समय प्रदान की गयी जब इसके बौद्धिक आधार का निर्माण किया। तब से विकास प्रशासन की व्याख्याऐं और परिभाषाऐं बतायी जाती रही हैं। विद्वानों द्वारा विकास प्रशासन की निम्नलिखित परिभाषाऐं दी गयी हैं-

प्रो0 ए0 वीडनर के अनुसार, ''विकास प्रशासन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए संगठन का मार्गदर्शन करता है। यह मुख्य रूप से एक कार्योन्मुख एवं लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक प्रणाली पर जोर देता है।''

प्रो0 रिग्स के अनुसार, ''विकास प्रशासन का सम्बन्ध विकास कार्यक्रमों के प्रशासन, बड़े संगठन विशेषकर सरकार की प्रणालियों, विकास लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए नीतियों और योजनाओं को क्रियान्वित करने से है।''

डोनाल्ड सी0 स्टोन का कहना है कि ''विकास प्रशासन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त प्रयास के रूप में सभी तत्वों और साधनों (मानवीय और भौतिक) का सम्मिश्रण है। इसका लक्ष्य निर्धारित समयक्रम के अन्तर्गत विकास के पूर्व निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति है।''

जॉन डी0 मॉण्टगोमरी ने कहा है कि ''विकास प्रशासन का तात्पर्य अर्थव्यवस्था और कुछ हद तक सामाजिक सेवाओं में नियोजित ढंग से परिवर्तन लाना है।''

वी0 जगन्नाथ के अनुसार, ''विकास प्रशासन वह प्रक्रिया है जो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु क्रिया प्रेरित और अभिमुख होती है। इसके अन्तर्गत नीति, योजना, कार्यक्रम, परियोजनाऐं आदि सभी आती हैं।''

फेनसोड ने विकास प्रशासन की परिभाषा देते हुए कहा है कि ''विकास प्रशासन नवीन मूल्यों को लाने वाला है.....इसमें वे सभी नये कार्य सम्मिलित होते हैं जो विकासशील देशों ने आधुनिकीकरण और औद्योगीकरण के मार्ग पर चलने के लिए अपने हाथों में लिए हैं। साधारणतया विकास प्रशासन में संगठन और साधन सम्मिलित हैं जो नियोजन, आर्थिक विकास तथा राष्ट्रीय आय का प्रसार करने के लिए साधनों को जुटाने और बाँटने के लिए स्थापित किये जाते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से विकास प्रशासन की संकुचित और विस्तृत दोनों ही विचारधाराऐं स्पष्ट होती हैं। फेनसोड की परिभाषा संकुचित है तो वीडनर और रिग्स की परिभाषा विस्तृत है। विकास प्रशासन में भिन्नता के बावजूद भी सभी विद्वान इस मत से सहमत हैं कि यह लक्ष्योन्मुखी और कार्योन्मुखी है। सामान्यतया विकास प्रशासन को एक निश्चित और निर्धारित कार्यक्रम की पूर्ति के लिए अपनाया जाता है, न कि प्रतिदिन के प्रशासन को कार्यान्वित करने के लिए। परिभाषाओं के उपर्युक्त विश्लेषण के पश्चात विकास प्रशासन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तत्व उभरकर सामने आते हैं-

1. विकास प्रशासन आगे बढ़ने की ओर अग्रसर होने की प्रक्रिया है।
2. विकास प्रशासन गतिशील और निरन्तर प्रक्रिया है।
3. निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए विकास प्रशासन संयुक्त प्रयास है।
4. तीसरी दुनिया की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का यह साधन है।
5. विकास प्रशासन केवल विकास का प्रशासन ही नहीं अपितु वह स्यवं में प्रशासन का विकास भी है।
6. यह कार्योन्मुखी और लक्ष्योन्मुखी भी है।

6.2.2 विकास प्रशासन का उद्देश्य

विकास प्रशासन के उद्देश्यों को निम्न बिन्दुओं के माध्यम से समझा जा सकता है-

1. विकास सम्बन्धी नीतियों एवं लक्ष्यों का उचित सामंजस्य स्थापित करना।
2. कार्यक्रम एवं परियोजनाओं का प्रबन्धन।
3. प्रशासनिक संगठन एवं प्रक्रिया का पुर्नगठन करना।
4. विकास कार्यों में जनता की सहभागिता सुनिश्चित करना।
5. प्रशासनिक पारदर्शिता को स्थापित करना।
6. सामाजिक-आर्थिक और राजनीतिक संरचना की प्रगति करना।
7. परिणामों का मूल्यांकन करना।
8. आधुनिक वैज्ञानिक और तकनीकी साधनों का प्रयोग करना।
9. लोगों को विकास में सहभागी बनाना।
10. लोगों के जीवन स्तर को सुधारना।

6.2.3 विकास प्रशासन की विशेषताऐं

विकास प्रशासन की अवधारणा का श्रेय अमेरिकन विचारकों को जाता है। एडवर्ड वीडनर, जो इस क्षेत्र में अग्रज हैं, जिन्होंने विकास प्रशासन को प्रक्रियान्मुख और लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक तन्त्र के रूप में माना है। दूसरी ओर प्रो0 रिग्स के अनुसार विकास प्रशासन के अन्तर्गत प्रशासनिक समस्याऐं और सरकारी सुधार दोनों ही आते हैं। किसी भी प्रशासनिक व्यवस्था की क्षमता बढ़ाने और विकास के लक्ष्यों को कुशलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए नियोजित विकास की प्रक्रिया अपनायी जाती है। तथ्यों की दृष्टि से विकास प्रशासन योजना, नीति, कार्यक्रम तथा परियोजना से सम्बन्ध रखता है। अवधारणा रूप से विकास प्रशासन का अर्थ न केवल जनता के लिए प्रशासन है, परन्तु यह जनता के साथ कार्य करने वाला प्रशासन है। विकास प्रशासन सरकार का कार्यात्मक पहलू है, जिसका तात्पर्य सरकार द्वारा जनकल्याण तथा जनजीवन को व्यवस्थित करने के लिए किए गए प्रयासों से है। सामान्यतः विकास प्रशासन की विशेषताओं का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया जा सकता है-

1. विकास प्रशासन की शुरूआत ''कम्प्यूटरीकरण'' से होती है, वस्तुतः कम्प्यूटर प्रशासन में एक ''मौन क्रान्ति'' साबित हुआ है, क्योंकि कम्प्यूटरीकरण द्वारा प्रशासन का मशीनी कार्य, मशीन ले लेता है, जिसमें प्रशासन का मानवीय पक्ष सशक्त होता है, जिसे प्रशासन का मानकीकरण भी कहते हैं, क्योंकि आखिरकार प्रशासनिक संगठन एक मानवीय संगठन है।
2. ''वातावरण में लचीलापन'' विकास प्रशासन की अगली शर्त है और यह तब होता है, जब प्रशासन का कार्यबोझ कम्प्यूटर द्वारा बाँट दिया जाता है। लचीलापन का आशय है, प्रक्रियाओं का सरलीकरण, जिसमें संगठनात्मक तत्व साध्य नहीं, साधन होने हैं।
3. लचीले वातावरण में, (जिसे उदार वातावरण भी कह सकते हैं) नवीन सोच को बढ़ावा मिलता है, क्योंकि जब तक प्रशासन में नवीन सोच, कल्पनाशीलता नहीं होगी, विकास प्रशासन का सूत्रपात नहीं हो सकता, क्योंकि नवीन सोच ही परिवर्तन की शुरूआत करती है।
4. ''परिवर्तन उन्मुखता'' विकास प्रशासन की अगली शर्त है, क्योंकि नवीन सोच अनिवार्य रूप से परिवर्तन को बढ़ावा नहीं देता है। जबकि विकास प्रशासन व्यवस्था में परिवर्तन की मांग करता है।
5. ''लक्ष्य उन्मुखता'' विकास प्रशासन की महत्वपूर्ण शर्त है, जबकि सामान्य प्रशासन में, ज्यादातर क्षेत्रों में दिशाहीनता की स्थिति बनी रहती है। जैसे भारत में राजव्यवस्था, अर्थव्यवस्था, समाज में दशा स्पष्ट है, दिशा नहीं। जैसे भारत में औद्योगिक संस्कृति के माध्यम से वर्ग-समाज को बढ़ावा दिया जा रहा है, जो प्रतिस्पर्धात्मक एवं गतिशील होता है। जबकि दूसरी ओर आरक्षण नीति अथवा वोट बैंक के निर्माण में जातिगत चेतना को बढ़ावा दिया जाता है जबकि जातिगत समाज जड़गत होता है। इस प्रकार समाज, वर्ग और जाति के छंद में उलझकर रह गया है, जिससे दिशाहीनता की स्थिति उत्पन्न होती है।
6. ''प्रगतिवादिता'' अगला महत्वपूर्ण चरित्र है, जिसका अर्थ है, छोटे से बड़े लक्ष्य की ओर अग्रसर होना। जैसे भारत ताप विद्युत के पश्चात परमाणु विद्युत की ओर बढ़ रहा है, जो प्रगतिवादी दृष्टिकोण है और यह विकास प्रशासन का मूलमंत्र है। चूँकि प्रगति का कोई अन्त नहीं है, इसलिए विकास प्रशासन का कोई अन्त परिभाषित नहीं किया जा सकता है।
7. विकास प्रशासन ''परिणाम उन्मुख नियोजन'' पर टिका है, जबकि सामान्य प्रशासन प्रयासउन्मुख नियोजन करता है। इसी प्रकार पहले में क्रिया है तो दूसरे में विचार है, पहले में साध्य है तो दूसरे में साधन है। सरल शब्दों में विकास प्रशासन उपलब्धियों और प्रक्रियाओं से उलझा रहता है।

8. ''प्रेरणा'' विकास प्रशासन के लिए ऑक्सीजन की तरह है, क्योंकि प्रेरणा तभी कार्य करती है, जब योग्यता के अनुसार कार्य आवंटित होता है। कार्य के अनुसार उत्तरदायित्व, उत्तरदायित्व के अनुसार प्राधिकार और प्राधिकार के अनुसार पुरस्कार और इस आंतरिक संबन्ध को विकास प्रशासन समझता है, जबकि सामान्य प्रशासन में इसका अभाव होता है। यही कारण है कि सामान्य प्रशासन में प्रतिबद्धता बढ़ती नहीं घटती है।
9. ''लोक उन्मुखता'' अगली शर्त है, जिसका आशय है- लोक नीतियां, लोक समस्याओं पर आधारित हों। वह आधारभूत समस्याओं से जुड़ी हुई हों। जबकि सामान्य प्रशासन में लोक नीतियां सामान्य आधारभूत समस्याओं को नजर-अंदाज कर देती हैं। वस्तुतः लोक समस्याऐं वे हैं, जिसमें सार्वजनिक हित छिपा होता है, जिसका राष्ट्रीय महत्व होता है, उसके साथ व्यापक मांगें होती हैं और मांगों के साथ समर्थन भी होता है।
10. लोक उन्मुखता के पश्चात ''लोक भागीदारी'' अन्य महत्वपूर्ण शर्त है, यह पूर्वाग्रह नहीं होना चाहिए कि लोक उन्मुखता से ही लोक भागीदारिता सुनिश्चित होती है। वस्तुतः लोकभागीदारिता की कुछ अन्य शर्तें भी हैं, जैसे-
    - भागीदारिता के पर्याप्त अवसर होने चाहिए।
    - अवसर का लाभ उठाने के लिए योग्यता होनी चाहिए।
    - योग्यता साक्षरता से जुड़ा है।
    - योग्यता एवं साक्षरता पर्याप्त नहीं है, वस्तुतः भागीदारिता के लिए ''चाहत'' भी होनी चाहिए।
    - इन सब के उपर, समाज की सामाजिक मनोवैज्ञानिक संरचना सकारात्मक होनी चाहिए।
11. ''एकीकरण'' विकास प्रशासन की सफलता निर्धारित करता है, क्योंकि जब लोकभागीदारिता सुनिश्चित होती है, तो वैचारिक मतभेद एवं हितों के टकराव भी बढ़ते हैं, जिससे प्रशासन में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। जिसके लिए विकास प्रशासन तैयार रहता है। जबकि सामान्य प्रशासन अराजकता के समक्ष घुटने टेक देता है। वहीं विकास प्रशासन एकीकरण का प्रयास करता है, जिसका अर्थ है- समन्वय।
12. अंतिम किन्तु महत्वपूर्ण चरित्र है ''परिवर्तन ग्रहण करने की क्षमता'' क्योंकि विकास प्रशासन परिवर्तनों को आमंत्रित करता है, उन्हें समायोजित करता है और ऐसे परिवर्तन स्थायी होते हैं। जबकि सामान्य प्रशासन परिवर्तनों को आमतौर पर हतोत्साहित करता है और यही कारण है कि प्रशासनिक पकड़ जैसे ही कमजोर होती है, परिवर्तन वापस अपनी स्थिति में चला जाता है।

कुल मिलाकर सैद्धान्तिक रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि सामान्य प्रशासन एवं विकास प्रशासन अलग-अलग है, यह छंदात्मक है, लेकिन वस्तुस्थिति बिल्कुल भिन्न है। वस्तुतः यह सामान्य प्रशासन है, जो विकास प्रशासन को आधार प्रदान करता है। क्योंकि जब तक प्रशासनिक गतिविधियों का विस्तार नहीं होगा, तब तक प्रशासन का कम्प्यूटरीकरण सम्भव नहीं और इस प्रकार कम्प्यूटरीकरण से पहले प्रशासन का एक वृहद ढ़ाँचा तो होना ही चाहिए, जो और कुछ नहीं सामान्य प्रशासन है, क्योंकि प्रयास एवं परिणाम को अलग-अलग नहीं किया जा सकता है। संरचना एवं उत्पाद अलग-अलग नहीं हो सकते हैं। साधन और साध्य अलग-अलग नहीं हो सकते हैं। जब यह जुड़े हैं, तो सामान्य प्रशासन एवं विकास प्रशासन को अलग-अलग कैसे सोचा जा सकता है।

6.2.4 विकास प्रशासन की आवश्यक शर्तें

विकास प्रशासन देश के समग्र विकास तथा आय बढ़ाने की दिशा में नियोजन, अर्थिक उन्नयन, साधनों के कुशल आवंटन तथा संचारण हेतु उचित व्यवस्था के लिए कृत संकल्प है। इन उद्देश्यों हेतु निम्न आधार वांछनीय हैं-

1. निरंतर बढ़ते हुए कार्यों के साथ विकास क्षेत्र में प्रशासन की भूमिका बढ़ती जायेगी।
2. सरकार समस्त विकास प्रक्रिया को निर्देशित करेगी।
3. सरकारी कार्यों की जटिलता बढ़ाने से विशेषज्ञों द्वारा कार्यों का निष्पादन करने की प्रवृत्ति बढ़ाना।
4. प्रशासन में सभी स्तरों पर नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्तियों में सेवा की भावना तथा समर्पण का जोश होना।
5. प्रशासन में तकनीकी परिवर्तनों को समझने और अपनाने की क्षमता होनी चाहिए।
6. प्रशासन और जनता के मध्य सहयोग और विश्वास की भावना रहनी चाहिए।
7. निर्णय लेने वाले संगठनों को लचकदार और कल्पनाशील होना पड़ेगा।
8. विकास प्रशासन की प्रक्रिया में कार्मिकों के प्रशिक्षण पर अनवरत जोर दिया जाना चाहिए।
9. विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया अनवरत तौर पर जारी रहनी चाहिए, जिससे कि हर स्तर पर लोगों की सहभागिता को सुनिश्चित किया जा सके।
10. लोकसहभागिता एवं लोकविमर्श को निरन्तर प्रोत्साहन मिलना चाहिए, जिससे कि आम आदमी निर्णयन की प्रक्रिया में अपने को हिस्सेदार महसूस कर सके।
11. अविकसित क्षेत्रों के विकास के लिए योजनाओं में प्राथमिकता मिलनी चाहिये।
12. प्रेस एवं संचार माध्यमों को तटस्थ रखना चाहिए, जिससे सूचना का सही प्रसार हो सके।
13. राजनीतिक स्थायित्व का होना आवश्यक है, क्योंकि राजनीतिक अस्थिरता योजनाओं को विफल कर सकती है।

6.2.5 विकास प्रशासन का क्षेत्र

विकास प्रशासन लोक प्रशासन की एक नवीन और विस्तृत शाखा है। इसका जन्म विकासशील देशों की नयी-नयी प्रशासनिक योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने के सन्दर्भ में हुआ है। सामान्य तौर से विकास से सम्बन्धित कार्य विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। वैसे यह भी कहा जाता है कि विकासशील देश में सभी प्रशासन विकास प्रशासन ही है। विकास प्रशासन के क्षेत्र में वे समस्त गतिविधियाँ सम्मिलित हो जाती हैं जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक तथा प्रशासनिक विकास से सम्बन्धित हों एवं सरकार द्वारा संचालित की जाती हों। विकास प्रशासन से सम्बन्धित साहित्य में विकास प्रशासन का दो अर्थों में प्रयोग किया गया है, पहला- यह विकास के कार्यक्रमों में प्रशासन के रूप में देखा गया है और दूसरा- प्रशासन की क्षमता को बढ़ाने के रूप में इसका प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ यह हुआ कि विकास प्रशासन वह प्रशासन है जो विकास हेतु किये जाने वाले समस्त कार्यक्रमों, नीतियों, योजनाओं आदि के निर्माण और क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इसके साथ ही साथ प्रशासन विभिन्न समस्याओं को सुलझाने हेतु अपनी क्षमता एवं कुशलता को भी बढ़ाता है। संक्षेप में जिस प्रकार विकास के क्षेत्र को किसी निर्धारित सीमा में नहीं बांधा जा सकता, उसी प्रकार विकास प्रशासन के क्षेत्र को भी किसी निर्धारित सीमा के अन्तर्गत अथवा शीर्षक के अन्तर्गत लिपिबद्ध करना सम्भव नहीं है। फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए विकास प्रशासन के क्षेत्र को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत अध्ययन किया जा सकता है-

1. **पोस्डकार्ब(POSDCORB) सिद्धान्त-** चूँकि विकास प्रशासन, लोक प्रशासन का ही विस्तृत अंग है, इसलिए लूथर गुलिक द्वारा व्यक्त किया गया पोस्डकार्ब सिद्धान्त विकास प्रशासन के क्षेत्र के लिए

प्रासंगिक है। यह शब्द निम्नलिखित शब्दों से मिलकर बना है- नियोजन, संगठन, कर्मचारी, निर्देशन, समन्वय, प्रतिवेदन तथा बजट। ये समस्त सिद्धान्त लोक प्रशासन के लिए आवश्यक हैं। विकास प्रशासन के क्षेत्र में योजनाओं का निर्माण करना, अधिकारियों एवं अन्य सेवा -वर्गों का संगठन बनाना, कर्मचारियों की श्रंखलाबद्ध व्यवस्था करने का कार्य सम्मिलित है, ताकि प्रत्येक कर्मचारी द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में उन्हें सत्ता प्रदान की जा सके तथा उन्हें कार्य के सम्बन्ध में आवश्यक निर्देश दिये जा सकें। इसमें समन्वय का भी महत्वपूर्ण अधिकार सम्मिलित है। विभिन्न अधिकारियों और कर्मचारियों को सौंपे गये कार्यों के मध्य समन्वय स्थापित करना मुख्य कार्य है, ताकि कार्यों के दोहराव को रोका जा सके। विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की सूचनाओं और आँकड़ों के आधार पर प्रतिवेदन प्रस्तुत करना पड़ता है। प्रशासन चाहे लोक प्रशासन हो या विकास प्रशासन, बजट की व्यवस्था और निर्माण दोनों के लिए आवश्यक है।

2. **प्रशासनिक सुधार एवं प्रबन्धकीय विकास-** इन दोनों का विकास प्रशासन में अत्यन्त महत्व होता है, इसलिए प्रशासनिक सुधार एवं प्रबन्धकीय विकास पर अधिक ध्यान दिया जाता है। प्रशासकीय और विकासात्मक संगठनों में संगठनात्मक और प्रतिक्रियात्मक सुधारों की हमेशा आवश्यकता पड़ती है। प्रशासकीय सुधार का मुख्य उद्देश्य है जटिल कार्यों और प्रक्रियाओं को सरल बनाना तथा उन नियमों का निर्माण करना जिनसे कम से कम श्रम एवं धन व्यय करके अधिकतम उत्पादक परिणाम प्राप्त किये जा सके। इसके लिए समय-समय पर विभिन्न आयोग एवं समितियाँ गठित की जाती हैं तथा प्रशासनिक सुझाव के सम्बन्ध में इनके प्रतिवेदन माँगे जाते हैं। प्रतिवेदनों में सुझाऐ गये मुद्दों पर विचार करके उन्हें लागू करवाना विकासात्मक प्रशासन का प्रमुख कार्य हो गया है। इस प्रकार नवीन तकनीकी और प्रक्रियात्मक विकास पर अत्यधिक बल देना विकासात्मक प्रशासन का कर्तव्य बन जाता है।
3. **लोक-सेवकों की समस्याओं का अध्ययन-** विकास प्रशासन को नवीन योजनाओं, परियोजनाओं, विशेषीकरण तथा जटिल प्रशासनिक कार्यक्रमों को लागू करना पड़ता है। ऐसे कार्यों को सम्पन्न करने के लिए विकास प्रशासन को अनूकूल लोक सेवकों की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए लोक-सेवकों को प्रशिक्षण हेतु विभिन्न प्रकार के विशेषीकृत प्रशिक्षण संस्थानों में भेजा जाता है, जहाँ उन्हें प्रशासकीय समस्याओं और संगठनात्मक प्रबन्ध आदि के सम्बन्ध में जानकारी दी जाती है। इस प्रकार समय के साथ बदली हुयी आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल लोक-सेवकों की भर्ती, प्रशिक्षण, चयन सेवा सम्बन्धि शर्तों आदि समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
4. **नवीनतम प्रबन्धकीय तकनीक का प्रयोग-** विकास प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य उन नवीन प्रबन्धकीय तकनीक की खोज करना है, जिनसे विकास कार्यक्रमों में कार्यकुशलता बढ़ायी जा सके। इस सम्बन्ध में विकसित देशों में अपनाये जाने वाले नवीन प्रबन्धकीय तरीकों को लागू करना चाहिए। विकासात्मक प्रशासन में प्रबन्ध के क्षेत्र में नवीन चुनौतियां सामने आती रहती हैं। उन चुनौतियों से कैसे तथा किस तरीके से निपटा जाए, यह विकासात्मक प्रशासन के लिए एक महत्वपूर्ण प्रश्न है, क्योंकि बिना उचित और आधुनिक प्रक्रिया के नवीन और आधुनिक चुनौतियों का सामना सम्भव नहीं है।
5. **कम्प्यूटर प्रणाली का प्रयोग-** कम्प्यूटर विकासशील देशों के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका और सहयोग प्रदान कर सकता है। प्रशासकीय प्रबन्ध तथा प्रशासकीय विकास के लिए प्रक्रिया के क्षेत्र में यह वरदान साबित हो रहा है। आज विकासशील देश में प्रशासन को कम्प्यूटर प्रणाली का उपयोग करना पड़

रहा है। डाटा प्रोसेसिंग के मामले में तो इसकी उपयोगिता अत्यन्त प्रभावकारी सिद्ध हो रही है। कम्प्यूटर प्रणाली को विकास प्रशासन के क्षेत्र में अब सम्मिलित कर लिया गया है।

6. **मानवीय तत्व का अध्ययन-** विकास प्रशासन के विकास में मानवीय तत्व का अध्ययन अपरिहार्य है। मानव ही समस्त प्रशासकीय व्यवस्था का संचालक, स्रोत, आधार और मार्गदृष्टा है। प्रशासन पर परम्पराओं, सभ्यता, संस्कृति, राजनीति, आर्थिक, सामाजिक और बाह्य वातावरण का प्रभाव पड़ता है। इन सबका सम्बन्ध मानव से होता है। अतः विकास प्रशासन में विविध समस्याओं को हमें मानवीय व्यवहार के परिवेश में देखना चाहिए। इस प्रकार हम इसके अन्तर्गत सामाजिक मानक मूल्यों, व्यवहार, विचारों आदि का अध्ययन करते हैं।
7. **बहुआयामी विषय-** विकास प्रशासन में विकास को सर्वोच्चता प्रदान की जाती है और इसमें समस्त क्षेत्रों जैसे- सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में परिवर्तन, प्रगति एवं विकास किया जाता है। आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक ढाँचे का विकास करना विकास प्रशासन के क्षेत्र का चुनौती भरा कार्य होता है। वस्तुतः ये कार्य विकास प्रशासन की रीढ़ होते हैं। परम्परागत संरचनाओं की कमियों और प्रक्रियाओं का सुधार कर उनकी जगह नवीन प्रकार के आर्थिक व सामाजिक ढाँचे का निर्माण करना, विकास प्रशासन के समक्ष एक चुनौती भरा कार्य बन जाता है। गतिशील और परिवर्तनशील संरचनाओं को अगर ऐसे ही छोड़ दिया तो समय और परिस्थिति के बहाव की प्रक्रिया में पीछे रह जाती हैं। ये संरचनाऐं आधुनिक चुनौतियों का समाना करने के अनुकूल नहीं रह पाती हैं, अतः इन संरचनाओं का विकास व सुधार आवश्यक हो जाता है। भारत के आर्थिक विकास के लिए पंचवर्षीय योजनाऐं स्वीकार की गयी हैं। समाजवादी लोकल्याणकारी अवधारणा के अनुसार गरीब और अमीर के बीच पायी जाने वाली असमानता को पाटने के लिए नौकरियों में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण के लिए पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत किया गया है और उन्हें सत्ता प्रदान की गयी है। इस प्रकार विकास प्रशासन के क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे का विकास करना महवपूर्ण कार्य है।

   विकास प्रशासन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य ग्रामीण एवं शहरी विकास के कार्यक्रमों को लागू करना है। ग्रामीण क्षेत्र में सिंचाई के पानी की व्यवस्था, सड़कों का निर्माण, पेयजल सुविधाऐं, सामुदायिक विकास योजनाएँ, रोजगार के कार्यक्रम, लघु-कुटीर उद्योग, आधुनिक तकनीकी का उपयोग तथा लोक कल्याणकारी कार्यों को जनता तक पहुँचाना विकास प्रशासन का अंग बन गया है। इसी प्रकार शहरों में विकास के अनेक कार्यक्रम लागू किये जाते हैं, जैसे- आवासीय समस्या को हल करने के लिए आवासीय योजनाएँ, पीने के पानी की व्यवस्था, टेलीफोन, तार, संचार तथा आवागमन की सुविधाएँ, प्रदूषण नियन्त्रण की समस्याएँ आदि।
8. **जन सहभागिता-** विकास प्रशासन में जन-सम्पर्क तथा जन-सहभागिता का विशेष महत्व है। विकास कार्यों में सफलता प्राप्त करना सम्भव नहीं है। वस्तुतः जन-सम्पर्क से यह जानने का प्रयास किया जाता है कि जन कल्याण के लिए विकास के जो कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं उसका कितना लाभ आम जनता तक पहुँचता है तथा जनता की उस कार्यक्रम के सम्बन्ध में क्या प्रतिक्रिया है। इस प्रकार जन-सम्पर्क और जन-सहयोग विकास प्रशासन की एक आवश्यक शर्त है।

उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त विकास प्रशासन के क्षेत्र में क्षेत्रीय परिषदें, सामुदायिक सेवाऐं, प्रबन्ध कार्यक्रम, अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग आदि का भी अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार जैसे-जैसे विकास सम्बन्धी कार्यक्रम बढ़ते जाते हैं, विकास प्रशासन का क्षेत्र भी व्यापक होता जाता है।

6.3 भारत में विकास प्रशासन

स्वतंत्रता के पश्चात् भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन में निहित आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु नेहरू की अगुवाई में प्रशासनिक एवं नियोजन तंत्र को स्थापित किया गया। योजना आयोग एवं राष्ट्रीय विकास परिषद जैसे निकाय अस्तित्व में आये। इनके उद्देश्यों को हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. **आर्थिक उद्देश्य-** नियोजन के आर्थिक उद्देश्य हैं, आर्थिक समानता, अवसर की समानता, अधिकतम उत्पादन, पूर्ण रोजगार तथा अविकसित क्षेत्रों का विकास। नियोजन में राष्ट्रीय आय तथा अवसरों का समान वितरण सम्मिलित है। आय की समानता धनी वर्ग से अधिक कर द्वारा प्राप्त आय से निर्धन वर्ग को सस्ती सेवाऐं- चिकित्सा, शिक्षा, समाजिक बीमा, सस्ते मकान आदि सुविधाऐं उपलब्ध कराने पर व्यय की जा सकती है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों को जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करके असमानता को दूर किया जा सकता है। राष्ट्र के समस्त नागरिकों को जीविकोपार्जन के समान अवसर प्रदान करके असमानता को दूर किया जा सकता है।
2. **सामाजिक उद्देश्य-** नियोजन के सामाजिक उद्देश्यों में वर्ग-रहित समाज की स्थापना करने का लक्ष्य सम्मिलित है। श्रमिक व उद्योगपति दोनों को राष्ट्रीय आय का उचित अंश प्राप्त होना चाहिए। पिछड़ी जातियों को शिक्षा में सुविधा देना, सरकारी सेवाओं में प्राथमिकता प्रदान करना तथा महिलाओं को विकास की धारा में न्यायसंगत स्थान दिलाना। देश के दूर-दराज क्षेत्रों में रहने वाले जनजातीय समूहों को राष्ट्र की मुख्यधारा से जोड़ना एवं उनके अधिकारों की रक्षा करना।

भारत में कई कारणों से नियोजन की आवश्यकता महसूस की गयी- 1. देश की निर्धनता, 2. बेरोजगारी की समस्या, 3. औद्योगीकरण की आवश्यकता, 4. सामाजिक तथा आर्थिक विषमताऐं, 5. देश का पिछड़ापन, 6. अधिक जनसंख्या और 7. कुपोषण।

सरकार ने योजनाओं के उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विभिन्न स्तरों पर समाज के हर क्षेत्र से लोगों को प्रशासन से जोड़ने के लिए राजनीतिक विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया को बढ़ावा दिया है। सहभागिता को सुनिश्चित करने हेतु गाँव के स्तर पर पंचायतों को वित्तीय अधिकार उपलब्ध कराये हैं। जनप्रतिनिधियों को विकास में प्रत्यक्ष रूप से जोड़ने के लिए उन्हें धनराशि दी है। विशेष योजनाएँ, जैसे- की जे0 आर0 वाई0 व मनरेगा आदि को शुरू किया है, जिससे कि गाँवों में लोगों को रोजगार उपलब्ध हो सके। ग्रामीण विकास के अंतर्गत कृषि-क्षेत्र के तमाम प्रयोजनों को सरकार की तरफ से कम दाम पर खाद, बीज, बिजली, उपकरण इत्यादि उपलब्ध कराया जा रहा है। ग्रामीण परिवेश में रहने वाले लागों को मुफ़्त में शिक्षा के अवसर, पीने के पानी एवं स्वाथ्य सेवाएँ उपलब्ध हैं। इन सभी से विकास के नए प्रतिमान स्थापित हो रहे हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकास प्रशासन लोगों की सहभागिता को महत्व नहीं देता है। सत्य/असत्य
2. परिवर्तन, विकास प्रशासन की महत्वपूर्ण कड़ी है। सत्य/असत्य
3. लक्ष्य को ध्यान में रखकर विकास प्रशासन आगे बढ़ता है। सत्य/असत्य
4. परिणाम, विकास प्रशासन के लिए महत्वपूर्ण होता है। सत्य/असत्य
5. विकास प्रशासन का क्षेत्र व्यापक है। सत्य/असत्य

6. विकास प्रशासन की प्राथमिकता लोग हैं, वस्तुवें नहीं। सत्य/असत्य

6.4 सारांश

विकास प्रशासन का अर्थ कुछ विद्वानों द्वारा प्रशासन के आधुनिकीकरण से लगाया जाता है। कुछ विद्वानों का मत है कि इसे आर्थिक विकास के लिए एक कुशल साधन के रूप में अधिक महत्व देते हैं। विकास प्रशासन सामान्य अर्थ में आर्थिक विकास की योजनाओं को बनाने तथा राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के लिए साधनों को प्रवृत्त करने तथा बाँटने का कार्य करता है। तथ्यों की दृष्टि से विकास प्रशासन योजना, नीति, कार्यक्रम तथा परियाजनाओं से सम्बन्ध रखता है। विकास प्रशासन सरकार का कार्यात्मक पहलू है, जिसका तात्पर्य सरकार द्वारा जनकल्याण तथा जन-जीवन को व्यवस्थित करने के लिए किये गये प्रयासों से है। इसका जन्म विकासशील देशों की नयी-नयी प्रशासनिक योजनाओं तथा कार्यक्रमों को लागू करने के सन्दर्भ में हुआ है। सामान्य तौर से सम्बन्धित कार्य विकास प्रशासन के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। वैसे यह भी कहा जाता है कि विकासशील देश में सब प्रशासन विकास प्रशासन ही है। विकास प्रशासन के क्षेत्र में वे समस्त गतिविधियाँ सम्मिलित हो जाती हैं जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, औद्योगिक तथा प्रशासनिक विकास से सम्बन्धित हों एवं सरकार द्वारा संचालित की जाती हों।

6.5 शब्दावली

कुठाराघात- लाक्षणिक रूप से ऐसा आघात, जिससे किसी वस्तु या व्यक्ति की जड़ कट जाए।
सभ्यता- किसी जाति या देश की बाह्य तथा भौतिक उन्नतियों का सामूहिक रूप।
पंचवर्षीय योजना- हर पाँच वर्ष के लिए योजना बनाना।

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** व्यापक, **6.** लोग

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. भट्टाचार्य, मोहित (1979): ब्यूरोक्रेसी एण्ड डेवलेपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, उप्पल पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. बासु, रूम्की (1990): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: कान्सेप्ट एण्ड थ्योरी, स्टर्लिंग पब्लिशर्स, दिल्ली।

6.8 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. अवस्थी, ए0 एवं माहेश्वरी एस0 (1990): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
2. भालेराव, सी0 एन0(संपादक) (1984): एडमिनिस्ट्रेशन, पालिटिक्स एण्ड डेवलेपमेंट इन इण्डिया, लालवानी पब्लिशर्स, बाम्बे।

6.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकास प्रशासन से आप क्या समझते हैं? टिप्पणी कीजिए।
2. विकास प्रशासन से सम्बन्धित एफ0 डब्लू0 रिग्स के विचारों पर प्रकाश डालिए।
3. विकास प्रशासन की विशेषताओं पर संक्षिप्त लेख लिखिये।
4. विकास प्रशासन की अवधारणा अमेरिका में हुई, परन्तु इसकी मुख्य भूमिका विकासशील देशों में है, टिप्पणी कीजिए।

इकाई- 7 विकसित एवं विकासशील देशों में विकास प्रशासन

इकाई की संरचना

7.0 प्रस्तावना
7.1 उद्देश्य
7.2 विकसित और विकासशील देश- अर्थ एवं परिभाषा
7.3 विकसित और विकासशील देशों की विशेषताऐं
    7.3.1 विकासशील और विकसित देशों की राजनीतिक विशेषताऐं
    7.3.2 विकासशील और विकसित देशों की सामाजिक विशेषताऐं
    7.3.3 विकासशील और विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं
    7.3.4 विकासशील देशों का आर्थिक आधार
7.4 सारांश
7.5 शब्दावली
7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
7.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.9 निबंधात्मक प्रश्न

7.0 प्रस्तावना

विकसित एवं विकासशील देशों में विकास प्रशासन की चुनौतियाँ काफी भिन्न हैं। जहाँ एक ओर विकसित राष्ट्रों में साक्षरता, गरीबी, कुपोषण एवं बेरोजगारी मुख्य समस्या नहीं है, फिर भी लोगों के जीवन स्तर को सुधारने एवं आगे बढ़ाने की चुनौती प्रशासन के समक्ष निरन्तर बनी रहती है। बेहतर साक्षरता के कारण प्रशासन को लोगों को समस्याओं के निराकरण के लिए अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ता है, वहीं पर विकासशील देशों में निरक्षरता गरीबी एवं कुपोषण के कारण प्रशासन को लोगों के जीवन स्तर को सुधारने में अथक प्रयास करने होते हैं। आर्थिक असमानताओं के कारण स्थानीय आपसी विवाद प्रशासन के उद्देश्यों को आगे ले जाने में बांधा उत्पन्न करते हैं। इसलिए विकसित एवं विकासशील देशों की समस्याएँ एवं चुनौतियाँ एक-दूसरे से काफी भिन्न हैं।

7.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- विकसित एवं विकासशील देश क्या हैं, इसे जान पायेंगे।
- विकसित एवं विकासशील देशों में विकास प्रशासन की भूमिका के सम्बन्ध में जान पायेंगे।
- विकसित एवं विकाशसील देशों के सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं प्रशासनिक प्रतिमानों के सम्बन्ध में जान पायेंगे।

7.2 विकसित एवं विकासशील देश- अर्थ एवं परिभाषा

विकसित और विकासशील देशों की संक्षिप्त रूप से कोई परिभाषा देना कठिन है। साधारणतया विकासशील शब्द को 'पिछड़ा', 'अविकसित' अथवा 'निर्धन' का पर्यायवाची समझा जाता रहा है। ये शब्द कुछ समय पहले तक एक-दूसरे के स्थान पर इसी अर्थ में प्रयुक्त होते रहे हैं लेकिन इस विषय पर वर्तमान साहित्य में 'अविकसित' शब्द इस अर्थ में दूसरे विकासशील, निर्धन अथवा पिछड़ा शब्दों की तुलना में अधिक ठीक समझा गया है। विभिन्न विद्वानों ने विकाशील, विकसित तथा अविकसित देशों की विभिन्न प्रकार से परिभाषा देने का प्रयत्न किया है।

संयुक्त राष्ट्र विशेषज्ञों के अनुसार, ''एक विकासशील देश वह है जिसमें आम तौर पर उत्पादन का कार्य तुलनात्मक दृष्टि से कम प्रति व्यक्ति वास्तविक पूँजी की लागत से किया जाता है। इसके साथ ही अन्य देशों की तुलना में कम विकसित तकनीक का प्रयोग किया जाता है। इस परिभाषा से प्रति व्यक्ति कम आय तथा उत्पादन की पिछड़ी तकनीक पर जोर दिया गया है। इसका अभिप्राय ऐसे देशों से है जो संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा, आस्ट्रिया, पश्चिमी यूरोप के देशों की वास्तवकि प्रति व्यक्ति आय की दूर से कम प्रति व्यक्ति आय की दर वाले हैं। इस अर्थ में इन देशों के लिए निर्धन शब्द उचित होगा। यह परिभाषा ठीक अर्थों में 'विकासशील' देशों की धारणा को स्पष्ट नहीं करती।

इस प्रकार प्रो0 नर्क्से ने 'विकासशील' देशों की परिभाषा दी है। उसके अनुसार 'विकासशील' देश वे हैं जो विकसित देश की तुलना में अपनी जनसंख्या और संसाधनों की तुलना में पूँजी की दृष्टि से कम साधन सम्पन्न हैं। यह परिभाषा सन्तोषजनक प्रतीत नहीं होती। इसके केवल पूँजी को आधार बनाया है और विकास को प्रभावित करने वाले अन्य कारकों को छोड़ दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूँजी एक आवश्यक तत्व है परन्तु प्रगति का केवल मात्र एक आधार नहीं।

भारतीय विद्वानों ने भी विकासशील देशों की परिभाषा करने का प्रयास किया है। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अनुसार, ''एक विकासशील देश वह है जिसका सह-अस्तित्व कम अथवा अधिक मात्रा में एक ओर अप्रयुक्त अथवा कम प्रयुक्त की गयी जन-शक्ति तथा दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के अप्रयोग पर आधारित है।'' इस स्थिति का कारण तकनीक के प्रयोग में स्थान अथवा कुछ विघ्नोत्पादक सामाजिक-आर्थिक कारण हो सकते हैं जो अर्थव्यवस्था में अधिक गतिशील शक्तियों को क्रियात्मक होने से रोकते हैं। भारतीय योजना आयोग द्वारा दी गयी यह परिभाषा अधिक व्यापक प्रतीत होती है, परन्तु समग्र दृष्टि से यह भी अपूर्ण है। इस परिभाषा में अप्रयुक्त संसाधनों पर बल दिया गया है। ये अप्रयुक्त संसाधन विकसित देशों में भी हो सकते हैं। इसी प्रकार कुछ विद्वानों के अनुसार विकासशील देश वे हैं जिनमें पूँजीगत वस्तुओं के स्टाक तथा वित्तीय आपूर्ति की तुलना में अकुशल श्रमिकों की अधिकता हो, अप्रयुक्त कार्यक्षम संसाधन, प्रति व्यक्ति दर से कम उत्पादकता, धीमी उत्पादन-कुशलता, जिनमें कृषि तथा आरम्भिक उद्योगों पर अधिक बल दिया जाता है। ऐसे देशों में गुप्त बेरोजगारी बहुत होती है और स्थायी काम-काज की कमी होती है। जेकब वाइनर ने हमें अधिक स्वीकार योग्य, अधिक विस्तृत और सार्थक परिभाषा दी है। उसके अनुसार, ''एक विकासशील देश वह है जिसमें अधिक पूँजी, अधिक श्रम अथवा अधिक उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों के भावी प्रयोग की सम्भावना रहती है, ताकि ये देश की वर्तमान जनसंख्या का जीवन-स्तर ऊँचा बना सकें अथवा वर्तमान प्रति व्यक्ति उच्च आय दर को बढ़ी हुई जनसंख्या के लिए भी कायम रख सकें।'' विकासशील देशों की दी गयी यह परिभाषा अधिक सटीक है। इसमें आर्थिक विकास को निश्चित करने वाले दो महत्वपूर्ण कारकों पर बल दिया गया है। वे हैं- प्रति व्यक्ति की दर से आय तथा विकासशीलता की सामर्थ्य। इसमें विकासशील देशों की प्रकृति के सम्बन्ध में भी संक्षिप्त व्याख्या उपलब्ध है।

विकासशील देशों की प्रकृति के सम्बन्ध में दी गयी परिभाषा संक्षिप्त व्याख्या करती है। क्योंकि 'विकास' एक ऐसी धारणा है जो बहुमुखी है अतः विकसित तथा विकासशील देशों के सम्बन्ध में हमारा अध्ययन उस समय तक अपूर्ण रहेगा जब तक हम देश की केवल आर्थिक विशिष्टताओं पर बल देते हैं। अतः हमें देश के राजनैतिक, प्रशासनिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक पक्षों का भी अध्ययन करना होगा। परन्तु प्रमुख कठिनाई यह है कि एक विकासशील देश की रूपरेखा कैसे निश्चित की जाये। इससे भी अधिक कठिन काम विश्व में ऐसे देश को ढूँढ़ना है जिसमें विकासशील देशों की सभी विशेषताऐं उपलब्ध हों। कुछ विद्वानों ने सभी विकासशील देशों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है- उच्च आय वाले, मध्यम आय वाले तथा कम आय वाले देश।

इस वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि इन देशों में आर्थिक विकास की दृष्टि से बहुत अधिक विषमता है। साथ ही ये देश एक-दूसरे से अन्य दिशाओं में भी काफी भिन्न हैं। विकासशील देशों में विषमता के प्रमुख आधार ये हैं-

1. विकसित देशों की आय प्रति व्यक्ति काफी अधिक होती है, जबकि विकासशील देशों की काफी कम।
2. विकसित देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर अल्प है, वहीं विकासशील देशों में यह अधिक है।
3. विकसित देशों में औद्योगिक एवं सेवा-क्षेत्र का अनुपात कृषि के तुलना में काफी अधिक होता है। विकासशील देशों में कृषि क्षेत्र का अनुपात काफी अधिक होता है।
4. औद्योगिक क्षेत्र में विकसित राष्ट्र उन्नत प्रौद्योगिकी का प्रयोग करते हैं, जबकि विकासशील देशों में परम्परागत तकनीकों का प्रयोग किया जाता है।
5. प्राथमिक उपचार की सुविधाऐं, स्कूल, शैक्षिक स्तर विकसित राष्ट्रों में काफी अधिक होता है तथा विकासशील देशों में तुलनात्मक रूप से काफी कम होता है।
6. विकसित राष्ट्रों में गरीबी एवं बेरोजगारी की समस्या कम है तथा विकासशील देशों में बेरोजगारी की दर काफी अधिक है।
7. विकासशील देशों में उत्खनन(खनन), पशुपालन एवं प्राथमिक क्षेत्रों से जुड़ी सेवाओं का बाहुल्य है, दूसरी ओर विकसित राष्ट्रों में उच्च मूल्य सवंर्धित सेवाओं तथा उत्पादों की बहुतायत है।
8. प्रशासनिक इकाईयाँ विकासशील देशों में काफी संकुचित हैं, जबकि विकसित राष्ट्रों में ये काफी दक्ष हैं।
9. आधारभूत सेवाऐं जैसे- पानी, बिजली, सड़क विकसित राष्ट्रों में उच्च कोटी की हैं, जबकि विकासशील देशों में ये निम्न स्तर की हैं।

7.3 विकसित और विकासशील देशों की विशेषताऐं

विकसित और विकासशील देशों की विशेषताओं को निम्न शीर्षकों से समझने का प्रयास करते हैं।

7.3.1 विकासशील और विकसित देशों की राजनीतिक विशेषताऐं

1. **राजनीतिक स्थायित्व-** कई विकासशील देशों में प्रारम्भिक अथवा वास्तविक राजनीतिक अस्थिरता विद्यमान है। यह अस्थिरता हो सकता है कि, उन पद्धतियों का अवशिष्ट हो जो औपनिवेशिक शक्तियों के विरूद्ध चलाये गये देशगत आन्दोलनों के परिणामस्वरूप विकसित हुई हों। ऐसे देशों में अपूर्ण लक्ष्यों के कारण बहुत अधिक निराशा फैल जाती है। ऐसे देशों में चाहे कैसी भी राजनीतिक संस्थाऐं विद्यमान हों, उनमें सभी जन-समुदायों को उचित प्रतिनिधित्व नहीं मिलता। ऐसे देशों में विभिन्न जातीय, भाषायी अथवा धार्मिक वर्गों में भेदभाव की भावना जड़ें जमा चुकी हैं। ऐसी स्थितियों में विकासशील देश राजनैतिक दृष्टि से स्थायी नहीं रह सकते।

   विकसित देशों के लिए राजनीतिक स्थिरता एक प्रमुख आवश्यकता है। किसी भी मूल्य पर ये देश की राजनीतिक स्थिरता को बनाये रखना चाहते हैं। इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर ऐसे देशों ने कुछ ऐसी

राजनैतिक संस्थाओं का विकास किया है जो न केवल विभिन्न जातियों को प्रतिनिधित्व देती है, बल्कि उन्होंने कुछ सशक्त प्रथाओं का भी विकास किया है। ऐसे देशों में भेदभाव की बहुत ही कम सम्भावना है।

2. **राजनीतिक प्रमुखों की विकास के लिए प्रतिबद्धता-** राजनीतिक प्रमुखों में वचनबद्धता का अभाव होता है। उनका ध्यान लोगों की इच्छाओं की पूर्ति की अपेक्षा स्वार्थ की पूर्ति की ओर अधिक रहता है। उनके जीवन का प्रमुख लक्ष्य हर स्थिति में शक्ति को हथियाना है। हरियाणा राज्य में हाल ही में घटित घटनाऐं तथा अन्य कई राज्यों की घटनाऐं इस बात का संकेत करती हैं कि बन्दूक की नोक पर लोग शक्ति हथियाना चाहते हैं। यदि विकासशील देशों में इस प्रकार की परिस्थिति रहती है, तब राजनीतिक नेताओं में विकास के लिए प्रतिबद्ध होना बहुत कम सम्भव है। ऐसे देशों की एक रोचक विशेषता यह है कि ऐसे असामाजिक तत्व जिन्हें समाज ने त्याग दिया है, अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए राजनैतिक क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न कर रहे हैं। स्मगलर, कातिल तथा उग्रवादी ऐसे लोग देश की बागडोर हथियाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उदाहरण के लिए लीबिया, सूडान इत्यादि। विकसित देशों में स्थिति सर्वथा विपरीत है। राजनीतिक नेताओं में 'विकास' के सम्बन्ध में पर्याप्त मात्रा में सम्मिलित प्रतिबद्धता है। विकसित देशों में यह प्रतिबद्धता कुछ आदर्शों पर चलती है। साँझे लक्ष्य हैं- कृषि अथवा औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि, जीवन-स्तर, जन-स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यक्तिगत पेंशन, स्त्रियों तथा निम्न जातियों की परम्परागत भूमिका में परिवर्तन, एक जाति के प्रति वफादारी का नव-निर्मित राष्ट्र के प्रति वफादारी के रूप में परिवर्तन के सम्बनध में नये संशोधित कार्यक्रमों को अपनाना।
3. **आधुनिकीकरण करने वाले तथा परम्परागत नेता-** विकासशील देशों में आधुनिकीकरण के पक्षपाती तथा परम्परागत नेताओं के मध्य बड़ा भारी भेद रहता है। आधुनिकीकरण के पक्षधरों का झुकाव नगरीकरण की ओर होता है। वे पश्चिमीकरण में अधिक विश्वास करते हैं। वे सुशिक्षित युवा होते हैं। वे राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। दूसरी ओर परम्परागत नेताओं का झुकाव ग्रामों की ओर अधिक होता है। वे स्थानीय रस्मों-रिवाजों तथा अपने ही धर्म में विश्वास रखने वाले होते हैं। साथ ही इस प्रकार के नेता परिवर्तन के विरूद्ध होते हैं। ऐसे परिवर्तन को वे मूल्यों पर कुठाराघात समझते हैं। नये नेता तकनीकी कौशल को प्राप्त करना चाहेंगे जो राष्ट्र के विकास के लिए बड़ा महत्वपूर्ण है। परन्तु पुराने विचारों वाले नेता ग्रामीण क्षेत्रों तथा गन्दी बस्तियों के प्रति गहरी वफादारी को बनाये रखने में अधिक विश्वास रखते हैं।
4. **राजनीतिक शक्ति की न्याय संगति-** विकासशील अथवा अपूर्ण विकसित देशों में राजनीतिक शक्ति विधि अनुसार नहीं होती। इन देशों में अवैध तरीकों से शक्ति प्राप्त की जाती है। विकासशील देशों में राजनीतिक व्यवस्था को छः भागों में बाँटा जाता है- परम्परागत निरंकुश शासन व्यवस्था; निरंकुश नेतृत्व व्यवस्था; बहुतन्त्रीय स्पर्द्धात्मक व्यवस्था; प्रभावी दल अर्द्ध-स्पर्द्धात्मक व्यवस्था और कम्युनिस्ट व्यवस्था। परम्परागत निरंकुश व्यवस्थाओं में राजनैतिक नेता चिर-स्थापित सामाजिक व्यवस्था से शक्ति प्राप्त करते हैं, जिनमें अधिकतर बल वंशानुगत राज्य-पद्धति अथवा कुलीनतन्त्रीय शासन-व्यवस्था पर दिया जाता है। इस व्यवस्था के कुछ उदाहरण यमन, सऊदी अरब, अफगानिस्तान, इथोपिया, लीबिया मोरक्को और ईरान हैं। ईरान जैसे कुछ देशों में बड़े परिवर्तन हो चुके हैं। लेकिन कुलीनतन्त्र शासन व्यवस्था में सैनिक अधिकारी और कभी-कभी उनके असैनिक मित्र भी शासक होते हैं। दक्षिणी कोरिया, थाईलैण्ड, बर्मा, इण्डोनेशिया और इराक इसके उदाहरण हैं।

बहुतन्त्रीय स्पर्द्धात्मक व्यवस्था में फिलिपाइन, इजराइल, अर्जेण्टीना, ब्राजील तुर्की तथा नाइजीरिया जैसे राज्यों में पश्चिमी दल अर्द्ध-स्पर्द्धात्मक व्यवस्था में वास्तव में एक दल बहुत प्रभावी होता है। देश की राजनैतिक शक्ति पर उसका लगभग एकाधिकार होता है। ऐसे देशों में दूसरी पार्टियाँ वैध तो होती हैं, परन्तु उनके पास अधिकार नाम मात्र का होता है। इसके उदाहरण भारत और मोरक्को हैं।

5. **राजनीति कार्यक्रम की सीमा-** विकासशील देशों में राजनीतिक कार्यक्रमों की मात्रा और कार्य-क्षेत्र सीमित होता है, क्योंकि लोगों के अन्दर राजनैतिक जागरूकता का अभाव होता है। इस सम्बन्ध में जो भी संस्थाएँ होती हैं, वे क्रियाशील नहीं होती, क्योंकि इन देशों की शक्ति वैध नहीं होती।
   दूसरी ओर विकसित देशों में इस प्रकार की परिस्थिति नहीं होती। वास्तव में ऐसे समाज कल्याणकारी राज्य होते हैं। कल्याणकारी राज्यों का जन्म ऐसी समस्याओं का समाधान करना है जो औद्योगीकरण, नगरीकरण तथा बढ़ रही जनसंख्या के कारण उत्पन्न हुई हैं, जो विकास-क्रम का एक भाग हैं।
6. **राजनीति व्यवस्था में लोगों की रूचि और ग्रस्तता-** विकासशील देशों में राजनीतिक व्यवस्था में लोगों की रूचि तथा भागीदारी उत्साहजनक नहीं है। अनपढ़ता के कारण अधिकतर लोग राजनीतिक कार्यों के महत्व को नहीं समझते। लेकिन भारत जैसे देश में इस प्रकार की स्थिति नहीं है। लोग अपने देशों की राजनैतिक प्रक्रिया में रूचि नहीं रखते और न ही उसमें भाग लेते हैं। लेकिन यह अवस्था नगण्य है। वास्तव में विकसित देशों में लोग राजनीतिक कार्यों में अधिक रूचि लेने के साथ राजनीतिक कार्यों में सक्रिय रूप से भाग भी लेते हैं।
7. **राजनीतिक निर्णय-** राजनीतिक नेताओं के सम्बन्ध में पहले की गयी चर्चा में हमने संकेत दिया है कि अविकासशील समाज में परम्परागत नेतृत्व अधिक सशक्त होता जाता है। लेकिन विकसित देशों में परम्परागत नेतृत्व प्रतिदिन दुर्बल होता जाता है। इन परिस्थितियों में जहाँ परम्परागत नेतृत्व निरन्तर शक्ति और प्रभाव को प्राप्त करता जाता है, तर्कसंगत तथा धर्म-निरपेक्षता के आधार पर निर्णय लेने सम्भव नहीं होते। न्याय और तर्कसंगति की सभी सीमाओं को लाँघ कर किसी एक अथवा दूसरे समुदाय को लाभ पहुँचाने की दृष्टि से राजनीतिक निर्णय लिये जाते हैं।
8. **राजनीतिक दल-** विकसित तथा विकासशील देशों की राजनीतिक व्यवस्था में राजनीतिक दलों ने बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि विकासशील देशों में राजनैतिक दलों ने अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं किया, ताकि देश को राजनैतिक स्थिरता प्राप्त हो जाये। उदाहरणस्वरूप, भारत जैसे देश में हम सशक्त दल पद्धति का विकास नहीं कर सके, ताकि लोगों को बहुदलीय प्रणाली में स्पष्ट रूप से विकल्प मिल सके। भारत में भाषा, धर्म तथा जाति के आधार पर बहुत से दल विद्यमान हैं। यही नहीं, भारत में राजनीतिक दलों में अनुशासन का पूर्ण अभाव है।

7.3.2 विकासशील और विकसित देशों की सामाजिक विशेषताऐं

1. **भूमिकाओं का निर्धारण-** विकासशील देशों में भूमिकाओं का निर्धारण उपलब्धियों के आधार पर नहीं, आरोपण/कर (Tax) के आधार पर होता है। परन्तु विकसित देशों में यह स्थिति सर्वथा विपरीत है। दोनों विकासशील तथा विकसित अथवा अविकसित देशों में विभिन्न स्तर होते हैं। परन्तु स्पष्ट शब्दों में हम कह सकते हैं कि विकासशील अथवा अविकसित देशों में यह स्तर-भेद जन्म अथवा आरोपण के आधार पर होता है। जबकि विकसित देशों में यह आधार आरोपण की अपेक्षा उपलब्धियों के आधार पर निश्चित होता है। इसे अधिक स्पष्ट करने के लिए हम कह सकते हैं कि भारत जैसे देश में सामाजिक स्तरों में पारस्परिक गत्यात्मकता बहुत कम हैं। इसके विपरीत यूरोप में सामाजिक गत्यात्मकता बहुत है।

2. **जातीय संरचना-** विकासशील देश में जातीय संरचना बड़ी कठोर होती है। हमारे देश में उच्च जातीय हिन्दू, निम्न जातीय हिन्दू की लड़की से विवाह नहीं करते, अन्तर्जातीय विवाह की तो बात ही दूर रही। यह जानना बड़ा रोचक है कि हमारे देश में प्रशासनिक व्यवस्था भी जातीय स्तर-पद्धति के बहुत अनुकूल पड़ती है। हमारे प्रशासकीय ढ़ाँचे में चार स्तरों के कर्मचारी हैं। यह सोचा ही नहीं जा सकता तथा यह असम्भव भी है कि श्रेणी चार के कर्मचारी को उन्नति प्रदान करके प्रथम श्रेणी का कर्मचारी बना दिया जाये। इस प्रकार प्रशासिनक श्रेणियाँ भी जातीय श्रेणियों के अनुरूप हैं। संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देशों में इस प्रकार का स्तरीकरण नहीं है और वहाँ गुणों के आधार पर एक श्रेणी से दूसरी श्रेणी में उन्नति सम्भावित है। इस प्रकार वहाँ उपलब्धियों पर अधिक बल दिया जाता है।
3. **सामाजिक संघर्ष-** विकसित देशों में सामाजिक संघर्ष की मात्रा अविकसित देशों की अपेक्षा बहुत कम होती है। अविकसित देशों में ये संघर्ष अर्न्तजातीय अथवा प्रादेशिकता के आधार पर झगड़ों का रूप धारण कर लेते हैं। उदाहरणस्वरूप, भारत जैसे देश में हम लगभग हर रोज जातीय दंगों के कारण भारत के किसी न किसी भाग में एक-दो हत्याओं के बारे में सुन लेते हैं और इनकी प्रतिक्रिया देश के दूसरे भागों में बहुत अधिक हो जाती है। इसका यह अर्थ नहीं कि विकसित देशों में ऐसी स्थिति होती ही नहीं। ऐसे देशों में भी मिथकों का प्रचार, जैसे- जातीय आधार पर उत्तमता, रंग-भेद, इत्यादि के कारण जातीय दंगे भड़के हैं, हडतालें हुई हैं, शान्ति, कानून और व्यवस्था को आघात पहुँचा है। झाड़-फूँक, हत्या और विनाश हुआ है। परन्तु इन देशों में इस प्रकार की स्थिति चिन्ताजनक नहीं होती। ऐसी घटनाऐं कभी-कभी घटती हैं। विकासशील देशों में यह स्थिति नियन्त्रण से बाहर जा रही है। उदाहरणस्वरूप भारत जैसे देश में नई दिल्ली में तथा देश के अन्य भागों में (श्रीमती इन्दिरा गाँधी की हत्या के पश्चात) सिक्खों की हत्या। अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के सदस्यों को जिन्दा ही जला देना, भारतीय इतिहास की कुछ भयंकर दुर्घटनाऐं हैं। इसी प्रकार की स्थिति पाकिस्तान, बांग्लादेश तथा अफ्रीका के कुछ देशों में भी विद्यमान है। इन्हीं सामाजिक झगड़ों के परिणामस्वरूप विकसित देश, विकासशील देशों को अपने नियन्त्रण में रख रहे हैं और उन्हें अपनी राजनैतिक पकड़ में बनाये रखना चाहते हैं। विकसित देशों के लिए यह लाभदायक है, परन्तु विकासशील देशें के लिए आत्महत्या के समान है।

7.3.3 विकासशील और विकसित देशों की प्रशासनिक विशेषताऐं

1. **कार्य-विशेषज्ञता की मात्रा-** विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था में कार्य-विशेषज्ञता की कम मात्रा एक महत्वपूर्ण विशेषता है। लेकिन दूसरी ओर संसार के सभी विकसित देशों ने अपने प्रशासकीय ढाँचे को नौकरशाही का अध्ययन करते समय मैक्स वेबर द्वारा दिये गये विचार के अनुसार कार्य-विशेषज्ञता के सिद्धान्त पर व्यवस्थित किया है। इसी प्रकार पर फ्रैड रिग्ज ने विकसित देशों में प्रशासनिक व्यवस्था के अन्दर विभेदीकरण अथवा अधिक मात्रा में श्रम-विभाजन पर बल दिया है। उसके अनुसार विकसित समाज उस बहुरंगीय प्रकाश की तरह है, जो प्रिज्म में से विश्लेषित होकर आ रहा है। सफेद प्रकाश अथवा मिश्रित प्रकाश की प्राचीन समाज से तुलना की जा सकती है। इसके मध्य में प्रिज्मीय समाज है। वह विकासशील अथवा प्रिज्मीय समाज की तुलना उस स्थिति से करता है, जिसमें प्रकाश प्रिज्म के अन्दर बहुरंगीय प्रकाश में बदलता है। इस मॉडल के अनुसार विकसित समाज में कार्य के विभेदीकरण पर बल दिया जाता है। उदाहरणस्वरूप औरंगजेब जैसा राजा अपनी सरकार में कार्यपालक, विधायक तथा न्यायपालक भी था, क्योंकि वह कानून का निर्माता भी था, उन्हें लागू भी करता था और यह निश्चित करता था कि क्या इसे ठीक तरह से लागू भी किया गया है अथवा नहीं। लेकिन आधुनिक

सरकार में उक्त कार्यों को करने वाले अलग-अलग अंग हैं। यह उदाहरण उस व्यवस्था को प्रकट करता है जिसे रिग्स ने विश्लेषण द्वारा प्रकट किया है। यहाँ यह बताना रोचक है कि प्रारम्भिक ब्रिटिश प्रशासन काल में भारतीय प्रशासनिक सेवाएँ- वैधानिक, कार्यपालिका सम्बन्धी कार्य तथा औचित्य का निपटारा करने का काम करती थीं। वास्तव में भारतीय प्रशासनिक सेवाओं के सदस्यों को भारतीय कौंसिल एक्ट के अधीन कौंसिलों द्वारा नामांकित किया जाता था। इस प्रकार वे वैधानिक कार्यों में भाग लेते थे। इसी के साथ-साथ प्रशासकीय अधिकारी थे और कार्यपालिका के सदस्य होते थे। वे ही न्यापालिका का कार्य भी करते थे। अब, वास्तव में भारत में विधि-निर्माता, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका शक्तियाँ एक-दूसरे से अलग-अलग हैं। लेकिन कुछ राज्यों में जिला स्तर पर कार्यपालिका तथा जुर्म सम्बन्धी न्याय देने का काम एक ही अधिकारी द्वारा किया जाता है। इस प्रक्रिया के अनुसार हम राजनैतिक व्यवस्था में विभेदीकरण की स्थिति को देखते हैं। उदाहरणस्वरूप विकासशील देशों में जिला मजिस्ट्रेट के स्तर पर विभेदीकरण का अभाव हमें अंग्रेजों से विरासत में मिला है। जिला मजिस्ट्रेट का कानून और व्यवस्था को बनाये रखने के लिए, राजस्व इकट्ठा करने के लिए योजना बनाने और विकास के लिए विभागों में तालमेल बनाये रखने तथा उन्हें नियन्त्रण में रखने के लिए उत्तरदायी है। इस प्रकार जिला मजिस्ट्रेट का कार्यालय अविभेदित संरचना का उदाहरण है।

2. **प्रशासकीय कार्यों का विकास और विस्तार-** विकासशील देशों में प्रशासकीय कार्यों का भार कम होता है, क्योंकि ऐसे देशों में औद्योगीकरण तीव्र गति से नहीं होता। अधिकांश जनसंख्या ग्रामों में रहती है। बेशक विकासशील देशों में नगरीकरण हो रहा है, लेकिन यह नगण्य है। इसकी तुलना में विकसित देशों और प्रशासकीय क्षेत्र में बहुत अधिक विकास और विस्तार हो गया है। इसका कारण पर्याप्त सीमा तक औद्योगीकरण, नगरीकरण, लगभग प्रत्येक उन्नति के क्षेत्र में वैधानिक खोज तथा प्रत्येक क्षेत्र में नये उपकरणों की सहायता से कार्य सम्पादन करना इसके साधन हैं। इन देशों में प्रजा पर प्रशासन करने के बहुत आसान तरीके विकसित किये गये हैं। हर सम्भव प्रयत्न किया जा रहा है कि जटिलताओं और प्रशासकीय प्रक्रिया में इसको कम किया जाये, परन्तु विकाशील देशों में ऐसी अवस्था का विकास नहीं हुआ।
3. **लोक प्रशासन का प्रतिमान-** विकासशील देशों में लोक प्रशासन का प्रतिमान अधिकतर पश्चिम की नकल है। अक्सर ये देश अपने पूर्व प्रशासकों की प्रशासन-पद्धति को अपनाते हैं। इन देशों में प्रशासन पद्धति देशी उपज नहीं होती, बल्कि यह अधिकतर विकसित देशों से ली जाती है। विकसित देशों में कुछ समय पश्चात अपने लिये ऐसे प्रशासकीय ढाँचे बना लिये हैं जो केवल उन्हीं देशों के अनुकूल हैं। परन्तु दुर्भाग्य से विकासशील देशों ने इन ढाँचों को बिना किसी प्रकार के सोच-विचार के अपनी प्रशासन-पद्धति के रूप में अपना लिया है। पश्चिम से अथवा अपने पूर्व प्रशासकों से लिये गये प्रशासकीय ढाँचों के बड़े हानिकर परिणाम निकले हैं।
4. **नौकरशाही का स्तर-** विकासशील देशों की नौकरशाही में कुशल जन-शक्ति की कमी होती है। यदि विकासशील देश अपने विकास कार्यक्रमों में तेजी लाना चाहते हैं, तो उन्हें कुशल जन-शक्ति की आवश्यकता पड़ेगी। वास्तव में समस्या नियुक्ति और योग्य जन-शक्ति की नहीं है, क्योंकि अधिक बेरोजगारी अथवा कम रोजगारी की स्थिति रहती है। निम्न स्तर के लोगों की उदाहरणस्वरूप सहायकों, टाइपिस्टों, चपरासियों की भर्ती विश्व स्तर पर ही आवश्यकता से अधिक है, कमी तो प्रशिक्षित प्रशासकों की है। भारत में भी शिक्षित नवयुवकों में भी अत्यधिक बेरोजगारी होने के बावजूद प्रशिक्षित प्रबन्धों की

कमी है। आजकल प्रबन्धकीय कौशल का विकास किया गया है और हमें वित्तीय प्रबन्ध, कर्मचारी प्रबन्ध सामान-सूची प्रबन्ध इत्यादि के लिए विशेषज्ञों की आवश्यकता है। लेकिन विकसित देशों में इस प्रकार की अवस्था नहीं होती। इन देशों में प्रशासनिक व्यवस्था से नीति-निर्माण की प्रक्रिया, इसके सदस्यों तथा अन्य भागीदारों द्वारा व्यावसायिक कार्य समझा जाता है। इन देशों में नौकरशाही लोगों में व्यवसायीकरण को विशेषीकरण का ही चिन्ह माना जाता है।

7.3.4 विकासशील देशों का आर्थिक आधार

निर्धनता, संसार में विकासशील देशों की एक बड़ी प्रमुख विशेषता है। क्रान्ति से पूर्व की स्थिति की तुलना में, इनमें से अधिक देश अधिक निर्धन तथा कम विकसित हैं। वे तो औद्योगीकरण से पहले की स्थिति वाले पाश्चात्य देशों से भी अधिक निर्धन हैं। यह स्थिति अधिक जनसंख्या वाले देशों से दूसरे देशों की तुलना में अधिक दयनीय है।

1. **प्राथमिक उत्पाद-** विकासशील देशों की एक मूलभूत विशेषता यह भी है कि ये ऐसे देश हैं, जिनमें केवल प्राथमिक वस्तुओं का ही उत्पादन होता है। वास्तव में विकासशील देशों में उत्पादन का प्रारूप प्रमुखतया अनाज तथा कच्चे माल के उत्पादन के रूप में होता है। विकासशील देश प्रमुखतया कृषि प्रधान देश होता है। उदाहरणस्वरूप भारत में 70 प्रतिशत से अधिक लोग आजीविका के लिए प्रमुखतया कृषि पर निर्भर करते हैं।
2. **प्राकृतिक संसाधन-** विकासशील देशों में प्राकृतिक संसाधनों का अस्तित्व होता है, परन्तु तकनीकी ज्ञान के बिना उनका उपयोग पूर्णतया नहीं किया जाता। यह आम धारणा है कि विकासशील देश इस कारण निर्धन हैं कि उनके पास संसाधनों की कमी है।
3. **अर्थव्यवस्था की प्रकृति-** लगभग सभी विकासशील देशों में आर्थिक दोहरापन देखने को मिलता है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह दो भागों में विभाजित है। वे हैं- 1.बाजार, 2. आधारभूत। लेकिन विकसित देशों में यह स्थिति या तो नगण्य है, अथवा इसका अभाव है।
4. **तकनीक का स्तर-** विकासशील देशों में तकनीक का स्तर बहुत नीचा है। इन दोनों में कृषि-क्षेत्र तथा उद्योग-क्षेत्र में जिन तकनीकों का पालन किया जा रहा है, वे पिछड़ी हुई हैं और पुरानी हैं। वह तकनीक जो पाश्चात्य देशों में पुरानी हो जाती है, वह विकासशील देशों द्वारा अपना ली जाती है। इसी प्रकार तकनीकी दोहरापन भी विकासशील देशों की एक प्रमुख विशेषता है।
5. **रोजगार के अवसर-** विकासशील देशों में रोजगार के अवसरों की कमी के कारण अधिक संख्या में लोग कृषि-कार्य में लग जाते हैं। परन्तु विकसित देशों में यह स्थिति नहीं है, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं कि इन देशों में रोजगार सम्बन्धी कोई समस्याऐं ही नहीं हैं। वास्तविकता तो यह है कि उच्च तकनीकी क्रान्ति के कारण सरकारों के कार्यक्रमों की प्रक्रियाएँ अधिक सरल हो गयी हैं, परन्तु इसके साथ ही अनेक समस्याऐं जिनमें रोजगार की समस्या भी है, उत्पन्न हो गयी हैं, लेकिन इन देशों में स्थिति अधिक चिन्ताजनक नहीं है। किन्तु विकासशील देशों में यह बद-से-बदतर होती जा रही है।
6. **पूँजी की उपलब्धि-** बहुत से विकासशील देशों को प्रायः 'पूँजी की दृष्टि से निर्धन' अथवा 'अल्प बचत' अथवा 'अल्प निवेश' वाली अर्थ व्यवस्थाऐं कहा जाता है। इसकी तुलना में जापान जैसे देश में यह 45 प्रतिशत से ऊपर है और इसी प्रकार फिनलैण्ड में यह 35 प्रतिशत से ऊपर है। भारत में पूँजी-निर्माण 20 प्रतिशत तक पहुँच गया है। इतना होने पर भी इसका लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचा।

7. **सार्वजनिक क्षेत्र पर निर्भरता-** नेतृत्व के लिए सार्वजनिक क्षेत्र पर अधिक निर्भर रहना पड़ता है। अनेक विकासशील देशों ने ऐसे सामाजिक ढाँचे का विकास कर लिया है जो सामाजिक या मार्क्सवादी विचारधारा में विश्वास करता है। ऐसे देशों में सार्वजनिक क्षेत्र नेतृत्व प्रदान करता है। विकसित देशों में यह स्थिति नहीं है।

अभ्यास प्रश्न-

1. विकसित राष्ट्रों के विकास का आधार सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक आधुनिकीकरण है। सत्य/असत्य
2. विकासशील देशों में प्रशासन को लक्ष्योउन्मुखी होना चाहिये। सत्य/असत्य
3. विकासशील देशों में जन्म की दर काफी अधिक रहती है। सत्य/असत्य
4. विकासशील देशों में प्रशासनिक व्यवस्था में कोई दोष नहीं है। सत्य/असत्य
5. विकसित राष्ट्रों में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्व कम है। सत्य/असत्य
6. विकास प्रशासन विकासशील देशों में राजनीतिक स्थायित्व देता है। सत्य/असत्य
7. रिग्स का 'साला मॉडल' किन देशों से सम्बन्धित है?

7.4 सारांश

विकसित एवं विकासशील देशों की पारिस्थितिक भिन्नता प्रशासन के रूप, आचरण एवं उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं। इस बात का समर्थन रिग्स ने अपने मॉडल में विस्तृत रूप से हमें बताया है। साधारणतया विकाशसील, पिछड़ा, अविकसित अथवा निर्धन को इसका पर्यायवाची समझा जाता रहा है। कुछ विशेषज्ञों के अनुसार, एक विकाशसील देश वह है जिसमें आमतौर पर उत्पादन का कार्य तुलनात्मक दृष्टि से कम प्रति व्यक्ति वास्तविक पूँजी की लागत से किया जाता है। इसके साथ ही विकसित राष्ट्रों की अपेक्षा कम विकसित तकनीक का प्रयोग होता है। भारतीय विद्वानों के अनुसार एक विकाशसील देश वह है, जिसका सह-अस्तित्व कम अथवा अधिक मात्रा में एक ओर अप्रयुक्त अथवा कम प्रयुक्त की गयी जनशक्ति तथा दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर आधारित है। इस स्थिति का कारण तकनीक के प्रयोग में स्थान अथवा कुछ विघ्नोत्पादक सामाजिक-आर्थिक कारण हो सकते हैं। प्रायः कुछ राष्ट्रों का पिछड़ापन निम्न बिन्दुओं पर आधारित है- 1. निम्न तकनीक, 2. अधिक जनसंख्या, 3. जातीय एवं पुरातन भूमि व्यवस्था, 4. निम्न स्तर का मानवीय संसाधन, 5. राजनीतिक अस्थिरता, 6. सामाजिक पिछड़ापन। विकाशसील देशों की ये सभी प्रकार की विषमताएँ उन देशों की विकास की पद्धति तथा विकास दर में भेद उत्पन्न करते हैं।

7.5 शब्दावली

औपनिवेशिक- उपनिवेश का, उपनिवेश में होने वाले अथवा उससे सम्बन्ध रखने वाला, उपनिवेश का निवासी।
पुरातन- पुराना या प्राचीन।
नगण्य- बहुत ही तुच्छ या हीन, जो गिनने योग्य न हो।
उत्खनन- खोदकर बाहर निकालना।

7.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** असत्य, **5.** सत्य, **6.** सत्य, **7.** विकासशील देशों से

7.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिंह, सविन्दर (1996): भारत में विकास प्रशासन, न्यू अकैडमिक पब्लिशिंग कम्पनी, जालन्धर।

2. भ्रामरी, सी0 पी0 (1972): "एडमिनिस्ट्रेशन इन ए चेन्जिंग सोसायटी", नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
3. हिल, जे0 माइकल (1972): "दी सोशियोलॉजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन", वीडनफील्ड एवं निकोलसन, लंदन।
4. भालेराव, सी0एन0 (संपादक) (1990): "एडमिनिस्ट्रेशन, पालिटिक्स एण्ड डेवलेपमेंट इन इन्डिया", लालवानी पब्लिशर्स, बाम्बे।

7.8 सहायक/ उपयोगी सहायक पाठ्य सामग्री

1. बाबा, नूरजहाँ (1984): "पीपल्स पार्टीसिपेशन इन डेवलेपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन इन इण्डिया", उप्पल पब्लिशर्स, दिल्ली।
2. भट्टाचार्या, मोहित (1987): "पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन", वर्ल्ड प्रेस, दिल्ली।

7.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक प्रतिमानों के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
2. विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के सन्दर्भ में विकास प्रशासन की भूमिका पर लेख लिखिये।
3. "विकासशील देशों में विकास प्रशासन का प्रमुख लक्ष्य, विकास एवं आधुनिकीकरण है" टिप्पणी कीजिए।

इकाई- 8 तुलनात्मक लोक प्रशासन

इकाई की संरचना

8.0 प्रस्तावना
8.1 उद्देश्य
8.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन
    8.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन: अर्थ एवं परिभाषा
    8.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास
    8.2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य
    8.2.4 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व
8.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के उपागम/दृष्टिकोण
    8.3.1 संरचनात्मक कार्यात्मक उपागम
    8.3.2 पारिस्थितिकीय उपागम
    8.3.3 व्यवहारवादी उपागम
8.4 सारांश
8.5 शब्दावली
8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
8.9 निबंधात्मक प्रश्न

8.0 प्रस्तावना

तुलनात्मक लोक प्रशासन, लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षेत्र में एक नवीन अवधारणा है। लोक प्रशासन के अध्ययन और विकास के क्षेत्र में जो तुलनात्मक पद्धति प्रयोग में लायी जाती थी उसी से तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा उत्पन्न हुई है। द्वितीय विश्व युद्ध के समय तथा उसके बाद के वर्षों में विभिन्न सामाजिक विज्ञानों ने तुलनात्मक अध्ययन तथा तुलनात्मक विश्लेषण पर विशेष बल देना आरम्भ कर दिया था। इसी दौरान सामाजिक शास्त्रों को विज्ञान की श्रेणी में रखने के लिए अपनी वैज्ञानिकता को बढ़ा-चढ़ा कर सम्बन्धित विषयों के विद्वान प्रयत्न करने लगे थे। वे विज्ञान में प्रगतिवादी दृष्टिकोण एवं तर्क प्रणाली की पद्धति पर सरकारों, समाजों एवं राजनीतिक इकाइयों का तुलनात्मक विवेचन करने में जुट गये। इनका मानना था कि तुलनात्मक दृष्टिकोण से हम किसी भी सन्दर्भ के भिन्न-भिन्न लक्ष्यों में वांछित परिवर्तन ला सकेंगे।

8.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का अर्थ एवं उद्देश्यों को समझ पायेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास एवं महत्व को समझ सकेंगे।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन के विभिन्न उपागमों को जान सकेंगे।

8.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन अर्थ एवं परिभाषा

एडविन स्टीन, हर्बर्ट साइमन तथा ड्वाइट वाल्डो जैसे विद्वानों ने भी लोक प्रशासन को अधिक वैज्ञानिक बनाने के लिए वैज्ञानिक साहित्यों की व्याख्या पर बल देना प्रारम्भ किया था। लेकिन रॉबर्ट डॉहल ने कहा कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होता, तब तक विज्ञान होने का इसका दावा खोखला है।'' किसी भी अन्य वैज्ञानिक अनुशासन की तरह लोक प्रशासन में भी तुलनात्मक विश्लेषण की विधि का सुनिश्चित महत्व है। अतः इस बात को ध्यान में रखकर लोक प्रशासन के विद्वानों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-साहित्य तथा प्रशासकों के तुलनात्मक विश्लेषण पर बल देना प्रारम्भ किया। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास के प्रारम्भिक चरणों में ड्वाइट वाल्डो, फैरेल हैडी, स्टोक्स इत्यादि विद्वानों ने अहम भूमिका निभायी। बाद में तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा को अधिक समृद्ध बनाने में फ्रेड रिग्स, रिचर्ड गेबल, फ्रेडरिक क्लीवलैण्ड, एलफ्रेड डायमण्ड, फैरेल हैडी, फ्रेंक शेरवुड तथा जॉन मॉन्टगुमरी इत्यादि विद्वानों ने इसे अत्यधिक समृद्ध बनाया। ये उपर्युक्त विद्वान 'अमेरिकन सोसाइटी फॉर पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' द्वारा 1963 में गठित तुलनात्मक प्रशासनिक समूह से सक्रिय रूप से जुड़े हुए थे। 1970 के अन्त तक फ्रेड रिग्स इसके अध्यक्ष रहे। इसके बाद रिचर्ड गेबल को इसका अध्यक्ष बनाया गया। तुलनात्मक प्रशासनिक समूह की तुलना का केन्द्र विकासशील राष्ट्रों की समस्या थी। विकासशील राष्ट्रों की प्रशासनिक समस्याओं का तुलनात्मक अध्ययन उनके सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पर्यावरण में देखा जाता था। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास के लिए इस समूह ने अनेक अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठियाँ, सम्मेलन तथा सेमिनारों का आयोजन करवाया।

आर0 के0 अरोड़ा ने अपनी पुस्तक में लोक प्रशासन के क्षितिज को विस्तृत किया है। विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का उनके पर्यावरण की स्थिति में अध्ययन करके इसने लोक प्रशासन के विषय-क्षेत्र को अधिक व्यवस्थित बनाया है और अपने सदस्यों में विकास प्रशासन की समस्या में रूचि को प्रोत्साहित किया है।''

टी0 एन0 चतुर्वेदी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत विभिन्न संस्कृतियों में कार्यरत विभिन्न सार्वजनिक एवं प्रशासनिक संस्थाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।''

निमरोड राफाली के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन, तुलनात्मक आधार पर लोक प्रशासन का अध्ययन है।''

तुलनात्मक प्रशासन समूह ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को पारिभाषित करते हुए कहा है कि ''विभिन्न संस्कृतियों तथा राष्ट्रीय विन्यासों में प्रयुक्त हुए लोक प्रशासन के सिद्धान्त और वह तथ्यात्मक सामग्री जिसके द्वारा इनका विस्तार और परीक्षण किया जा सकता है, तुलनात्मक लोक प्रशासन के अंग हैं।''

ए0 आर0 त्यागी के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन एक ऐसा अनुशासन है, जो लोक प्रशासन के सम्पूर्ण सत्य को जानने के लिए समय, स्थान और संस्कृतिक विभिन्नता की परवाह किये बिना तुलनात्मक अध्ययन में व्यावहारिक यन्त्रों का प्रयोग करता है।''

रूमकी बासु के अनुसार, ''तुलनात्मक लोक प्रशासन के द्वारा हमें विभिन्न देशों में अपनाये जाने वाले उन प्रशासनिक व्यवहारों की जानकारी मिलती है जिन्हें अपने राष्ट्र की प्रणाली में अपनाया जा सकता है।''

''वस्तुतः तुलनात्मक लोक प्रशासन विभिन्न प्रशासनिक व्यवस्थाओं का एक ऐसा तुलनात्मक अध्ययन है, जिसके निष्कर्षों के आधार पर लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक बनाने का प्रयास किया जाता है।''

तुलनात्मक लोक प्रशासन की प्रेरणा के कारकों की चर्चा करते हुए डॉ0 एम0 पी0 शर्मा एवं बी0 एल0 सडाना ने कहा है कि द्वितीय विश्व युद्ध के समय पश्चिमी और विशेषकर अमेरिकी विद्वानों का बहुत से विकासशील राष्ट्रों के लोक प्रशासन के साथ सम्पर्क स्थापित हुआ, जिसमें उन्होंने कुछ नयी विशेषताएँ देखी और उनमें उनकी रूचि

पैदा हुयी। दूसरी तरफ वैज्ञानिक तथा तकनीकी क्षेत्रों में होने वाली नयी घटनाओं का प्रशासनों के ढाँचे के स्वरूप पर प्रभाव पड़ा जिससे तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन में रूचि को प्रोत्साहन मिला। एक अन्य कारण यह रहा है कि विश्व के रंगमंच पर भारी संख्या में नये देश उभर कर सामने आये तथा वे तीव्र आर्थिक विकास में लग गये। इन राष्ट्रों के विकास में लोक प्रशासन ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अतः वैज्ञानिक जाँच के लिए तथा तुलना के लिए नये अवसर प्राप्त हुए। परम्परागत लोक प्रशासन की अवधारणाऐं पुरातन हो चुकी थीं। अतः तुलनात्मक लोक प्रशासन के रूप में लोक प्रशासन का नया आयाम विकसित हुआ।

8.2.1 तुलनात्मक लोक प्रशासन का विकास

द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान और उसके बाद के काल को पुराने और नये लोक प्रशासन के मध्य एक विभाजक रेखा माना जाता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विश्व के विकासशील देशों को ज्यों-ज्यों नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ा त्यों-त्यों लगभग इसी रफ्तार में लोक प्रशासन का साहित्य समृद्ध और सबल होने लगा। इस काल में उठने वाली समस्याओं के समाधान में लोक प्रशासन अत्यधिक संघर्षशील बन गया। तत्पश्चात उसके स्वरूप और प्रकृति में अनेक बदलाव आये। इस दौरान अमेरिकी विद्वानों ने अनेक तुलनात्मक अध्ययन किये तथा धीरे-धीरे उनकी तुलना का केन्द्र सिर्फ यूरोपीय देश ही न होकर विश्व की प्रशासकीय व्यवस्थाऐं बनने लगी। जिन प्रमुख कारणों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के विकास में अपना योगदान दिया, वे निम्नलिखित हैं-

1. द्वितीय विश्व युद्व के दौरान अमेरिका, ब्रिटेन तथा यूरोप के अन्य विकसित देशों के प्रशासकों और विद्वानों का विकासशील देशों सहित अन्य देशों के लोक प्रशासन के सिद्धान्त तथा व्यावहार से परिचय हुआ। उन्हें विदेशी प्रशासनिक व्यवस्थाओं में अनेक नवीनताऐं और विशेषताऐं नजर आयी। इन विशेषताओं और मौलिकताओं को भली प्रकार जानने के उद्देश्य से उनमें तुलनात्मक दृष्टिकोण के प्रति जागृत होने लगी।
2. द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान लोक प्रशासन तथा इसके अध्ययन को जिन नयी-नयी जटिल चुनौतियों का सामना करना पड़ा उसके लिए परम्परागत लोक प्रशासन का दृष्टिकोण अपर्याप्त और कमजोर लगने लगा ड्वाइट वाल्डो ने भी कहा है कि ''परम्परागत लोक प्रशासन का विद्यार्थी केवल एक देश के प्रशासन की जानकारी प्राप्त कर सकता था, किन्तु दूसरे देश से उसकी समानता या अन्तर देखने में असमर्थ थी।'' परम्परागत लोक प्रशासन की इन कमियों से लोक प्रशासन के आधुनिक विद्वान समझौता करने तैयार नहीं थे। फलतः तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन अस्तित्व में आया।
3. द्वितीय विश्व युद्ध की महत्वपूर्ण उपलब्धि यह थी कि इस दौरान अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और समन्वय की भावना का प्रबल विकास हुआ। विभिन्न राष्ट्र अपने विकास के लिए दूसरे राष्ट्रों पर अपनी निर्भरता बढ़ाने लगे। यह निर्भरता सिर्फ आर्थिक, औद्योगिक और तकनीकी क्षेत्रों तक ही सीमित नहीं रही, बल्कि प्रशासकीय क्षेत्र में भी एक देश दूसरे देश के प्रशासकीय सिद्धान्तों और सफलताओं का प्रयोग अपने देश में करने को इच्छुक हो उठे। फलतः अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग और समन्वय के फलस्वरूप उत्पन्न हुई इस ''इच्छा'' ने तुलनात्मक लोक प्रशासन को विकसित किया। टी0 एन0 चतुर्वेदी ने भी इस बात को स्वीकार किया कि ''तुलनात्मक अध्ययन के विकास में विभिन्न राष्ट्रों एवं क्षेत्रों के बीच बढ़ रही पारस्परिक निर्भरता ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।''
4. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद विभिन्न सामाजिक शास्त्रों ने अपने विषय का अधिकाधिक वैज्ञानिक होने का दावा प्रस्तुत किया। लोक प्रशासन उन शास्त्रों से अधिक वैज्ञानिक होते हुए भी तुलनात्मक अध्ययन के अभाव में वैज्ञानिक होने का खोखला दावा नहीं पेश कर सका। 1947 में रॉबर्ड ए0 डॉहल ने भी अपने

एक निबन्ध में कहा है कि ''जब तक लोक प्रशासन का अध्ययन तुलनात्मक नहीं होगा तब तक वह विज्ञान नहीं माना जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन को वैज्ञानिकों की कसौटी पर खरा उतारने के लिए लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन को प्रर्याप्त महत्व दिया जाने लगा।

5. प्रारम्भिक काल में लोक प्रशासन में विषय-वस्तु तथा व्यवस्थित स्पष्टीकरण का अभाव था। किसी भी विषय के लिए उसकी विषय-वस्तु का व्यवस्थित ढंग से स्पष्ट न होना हानिकारक माना जाता है। एडवर्ड शिल्स की यह मान्यता है कि ''विभिन्न समाजों की व्यवस्थित तुलना करके उनकी समरूपता एवं विलक्षणताओं को इंगित और स्पष्ट किया जा सकता है।'' अतः लोक प्रशासन की विषय-विषय वस्तु के व्यवस्थित स्पष्टीकरण हेतु भी तुलनात्मक दृष्टिकोण का विकास उपयोगी था।
6. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अन्तर्राष्ट्रीय रंगमंच पर एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि सम्पूर्ण विश्व लगभग दो गुटों में विभक्त हो गया। दोनों गुटों द्वारा नवोदित विकासशील देशों को अपने-अपने पक्ष में करने की होड़ लग गयी। इस हेतु अमेरिका, सोवियत संघ तथा अन्य राष्ट्रों ने सहायता का सहारा लिया। नवोदित राष्ट्रों के ये देश आर्थिक, औद्योगिक, तकनीकी तथा संचार के क्षेत्रों में सहायता देने लगे। इस सहायता को तभी सार्थक बनाया जा सकता था, जब इन सहायताओं के कार्यान्वयन की विधि सहायता प्राप्त करने वाले देशों को ज्ञात हो। अतः वहाँ के प्रशासन के कार्मिकों को विकसित देशों में प्रशिक्षण दिया जाने लगा तथा विकसित देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं को उन देशों में लागू किया जाने लगा जहाँ पहले इसकी तकनीकी सहायता को लागू करने के लिए उपयुक्त वातारण नहीं था। अतः दो गुटों के शीतयुद्ध में जिस सहायता के राजनीति ने जन्म लिया था, उसे प्रभावशाली और सार्थक बनाने के लिए लोक प्रशासन के दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस की गयी।
7. प्रारम्भिक काल में ही लोक प्रशासन का तुलनात्मक दृष्टिकोण विद्वानों को इतना अधिक महत्वपूर्ण लगने लगा कि इसके भविष्य से वे काफी आशान्वित होने लगे। अतः उनकी यह आकांक्षा प्रबल होनी लगी कि तुलनात्मक लोक प्रशासन को एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में विकसित किया जाय।
8. प्रशासन और समाज के घनिष्ठ सम्बन्ध ने भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के विकास में अहम भूमिका निभायी, क्योंकि प्रत्येक देश की सामाजिक संरचना वहाँ के प्रशासनिक ढाँचे को प्रभावित करती है। इस सामाजिक संरचना और प्रशासकीय संरचना के सम्बन्धों को पहचानना लोक प्रशासन के विद्वानों के लिए आवश्यक बन गया। यदि किसी एक देश की प्रशासकीय संरचना और प्रक्रिया को दूसरे देश में लागू करना है तो दूसरे देश में उसे अपनाने से पूर्व वहाँ की सामाजिक और राजनीतिक संरचना को जानना आवश्यक हो जाता है। अतः इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन का दृष्टिकोण अनिवार्य बन गया।

8.2.2 तुलनात्मक लोक प्रशासन के उद्देश्य

तुलनात्मक लोक प्रशासन आनुभविक एवं वैज्ञानिक स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करके हमारे आनुभविक व सैद्धान्तिक ज्ञान को एकत्रित, व्यवस्थित व विस्तृत करता है। अतः यह जानना आवश्यक है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन के कौन-कौन से प्रमुख उद्देश्य हो सकते हैं। इसके प्रमुख उद्देश्य निम्न्लिखित हैं-

1. विशिष्ट प्रशासनिक समस्याओं, प्रणालियों आदि का अध्ययन करके सामान्य नियमों और सिद्धान्तों की स्थापना करना।
2. विभिन्न संस्कृतियों, राष्ट्रों एवं व्यवस्थाओं का पारगामी विश्लेषण और व्याख्या करना और इस तरह आधुनिक लोक प्रशासन के क्षेत्र में विस्तार करना।

3. विभिन्न प्रशानिक रूपों और प्रणालियों की तुलनात्मक परिस्थिति को पहचान कर उनकी सफलताओं एवं असफलताओं के कारणों का पता लगाना।
4. तुलनात्मक अध्ययनों के सन्दर्भ में त्रुटियों को प्रकाश में लाकर प्रशासनिक सुधार की आवश्यकता और अनिवार्यता बतलाना।
5. विकास और प्रशासन को अपने अनुभवों का लाभ देकर उनको गति प्रदान करना।

उपर्युक्त उद्देश्य के अतिरिक्त-

- तुलनात्मक लोक प्रशासन का उद्देश्य सरकारों को नीति-निर्धारण में योगदान देना भी है।
- तुलनात्मक लोक प्रशासन का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य विश्व की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के बारे में ज्ञानवर्द्धन करना भी रहा है।
- लोक प्रशासन के अध्ययन के क्षितिज को व्यापक, व्यावहारिक और वैज्ञानिक बनाना तुलनात्मक लोक प्रशासन का प्रथम उद्देश्य रहा है।
- विकासशील देशों में प्रबन्धकीय विज्ञान तथा प्रशासकीय विज्ञान के क्षेत्र में नयी-नयी प्रविधियों के प्रयोग को बढ़ावा देना भी तुलनात्मक लोक प्रशासन का एक लक्ष्य रहा है।

अतः यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को समृद्ध, व्यापक तथा वैज्ञानिक बनाने के उद्देश्य को तुलनात्मक लोक प्रशासन अपना कर्तव्य मानता है।

8.2.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के महत्व को आज विश्व के प्रायः सभी देशों में स्वीकार कर लिया गया है। लोक प्रशासन को अधिकाधिक वैज्ञानिक तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन प्रभावशाली रूप से प्रयत्नशील रहा है। सयुक्त राज्य अमेरिका, ब्रिटेन तथा जापान के विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को पाठ्यक्रम में शामिल कर लिया गया है। सर्वप्रथम 1948 में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन को स्वतन्त्र रूप से केलीफोर्निया विश्वविद्यालय में प्रारम्भ किया गया था। इसका श्रेय वहाँ के प्राध्यापक प्रो0 ड्वाइट वाल्कओ को था। विश्व के अन्य विकासशील देशों में भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के प्रशासन के महत्व को ध्यान में रखते हुए इसे पाठ्यक्रम में शामिल किया जा रहा है। भारत के अनेक विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर स्तर पर लोक प्रशासन विषय के एक अनिवार्य प्रश्न-पत्र के रूप में तुलनात्मक लोक प्रशासन की पढ़ाई की जाती है।

आज का आधुनिक राज्य प्रशासकीय राज्य बन गया है, जहाँ मानव-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासन का प्रवेश इस हद तक बढ़ चुका है कि प्रशासन के असफल होते ही हमारी सभ्यता असफल हो जायेगी। विश्व के अधिकांश राष्ट्र अपने को अधिकाधिक प्रजातांन्त्रिक होने का दावा प्रस्तुत करते हैं। अर्थात् राष्ट्रों में इस बात की होड़ लग गयी है कि कौन राष्ट्र किससे अधिक जन-इच्छाओं का ख्याल रखता है। ऐसी स्थिति में जनकल्याणकारी योजनाऐं तथा विकास की योजनाऐं प्रचुर मात्रा में लागू की जाती हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत विभिन्न देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं तथा उपलब्धियों की तुलना की जाती हैं, विश्लेषण किया जाता है तथा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किसी खास देश में किसी खास प्रकार की विकास योजना किस ढंग से लागू की गयी तथा लोग उससे कितना लाभान्वित हुए। तुलनात्मक लोक प्रशासन के तहत अब यह बात ज्यादा आसान हो गयी है कि किसी विकासशील अथवा विकसित देश की प्रशासनिक प्रणाली का अध्ययन करके उसकी विशेषताओं को जाना जाऐ। अगर वे प्रशासनिक विशेषताऐं अपने देश के विकास के लिए उपयोगी हैं तो उन्हें देश को शासन-

प्रणाली में लागू किया जा सकता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन की आवश्यकता कई कारणों से महसूस की गयी जैसे- प्रशासनिक चिंतकों की विविध विचारधारा थी तो उसी प्रकार विधिक, वैज्ञानिक, यांत्रिक प्रशासनिक, मानवीय सामाजिक एवं मानोवैज्ञानिक विचारधाराओं की शुरूआत हुई। अतः प्रशासनिक सिद्धान्तों को सम्पूर्ण में समझने के लिए इन विचारों एवं विचारधाराओं की तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता हुई।

ज्यादातर प्रशासनिक चिंतकों की पृष्ठभूमि पश्चात्य देशों की हैं तथा उनकी विचारधारा पूर्वी देशों में समान रूप से लागू नहीं होती है। इसलिए तुलनात्मक अध्ययन की आवश्यकता हुई, ताकि पूर्वी देशों का तुलनात्मक सिद्धान्त तैयार किया जा सके।

द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात विशेष रूप से परमाणु बम की विभीषका के कारण मानवीय दृष्टिकोण प्रबल हुआ, तदनुसार बहुत सारे देशों को औपनिवेशिक शासन से आजादी मिली और इन देशों में नवीन प्रशासन की आवश्यकता थी, जिसने तुलनात्मक आध्ययन को प्रेरित किया है।

लोक प्रशासन के क्षेत्र में तुलनात्मक अध्ययन एक नये युग का सूत्रपात है। विलियम जे0 सिफिन ने अपनी पुस्तक में कहा है कि ''यदि विज्ञान मूलतः प्रविधि की बात है तो तुलनात्मक लोक प्रशासन का प्रमुख मूल्य यह है कि इसने वैज्ञानिक दृष्टिकोण प्रदान किया है।'' वस्तुतः तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व इस बात से ज्यादा बढ़ गया है कि तुलना के द्वारा प्राप्त निष्कर्षों ने इसे अन्य सामाजशास्त्रों की अपेक्षा कहीं ज्यादा वैज्ञानिक बना दिया है। विज्ञान की भाँति अब इसके सिद्धान्त विकसित हो गये हैं। इसमें तुलना की जाती है, विश्लेषण किया जाता है तथा निष्कर्ष निकाले जाते हैं। टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध की अवधारणा ने इसे और अधिक मजबूत बनाया है।

विभिन्न देशों की सामाजिक भौगोलिक और आर्थिक स्थितियों में अन्तर होने से उनकी प्रशासकीय व्यवस्था अथवा पद्धति में भी अन्तर होता है। प्रशासकीय सच्चाई का पता लगाने के लिए किसी देश के अन्दरूनी कारकों का पता लगाना तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन समझना आवश्यक होता है। इन तुलनाओं के माध्यम से विभिन्न संस्कृतियों एवं भिन्न-भिन्न पर्यावरणों के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है तथा यह जानने का भी प्रयास किया जाता है कि किसी खास प्रकार के कारकों का किसी प्रशासनिक व्यवस्था के किस अंग पर कैसा प्रभाव पड़ता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन विकासात्मक प्रशासन के लिए भी महत्वपूर्ण है, क्योंकि द्वितीय विश्व युद्ध के बाद ही लगभग दोनों का उदय हुआ है। विकासात्मक प्रशासन को अनेक नयी-नयी विकास योजनाओं के सन्दर्भ में नयी-नयी चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इसके लिए प्रशासनिक विकास और सुधार आवश्यक हो जाते हैं। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वान विभिन्न राष्ट्रों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं का सैद्धान्तिक व व्यावहारिक विवेचन करके यह बताने का प्रयास करते हैं कि विकासात्मक प्रशासन के लिए किस प्रशासकीय तकनीक को लागू किया जाय तथा कार्यकुशलता को बढ़ाने के लिए प्रशासकीय संरचना में कौन सा परिवर्तन किया जाय? तुलना के द्वारा प्राप्त इन निष्कर्षों द्वारा विकास प्रशासन का मार्ग-दर्शन होता है।

लोक प्रशासन के विद्वानों का विशेष उत्तरदायित्व उनको आवश्यक बना देता है कि वे प्रशासनिक व्यवस्थाओं का वैज्ञानिक विश्लेषण कर प्रशासकीय व्यवहार के सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त प्रस्तुत करें, परन्तु ये विद्वान यह उत्तरदायित्व तभी निभा सकते हैं, जबकि वे प्रशासनिक संस्थाओं, व्यवस्थाओं व प्रक्रियाओं में जो विविधता व विभिन्नता है। इसका तुलनात्मक विश्लेषण करके न केवल स्वयं समझने का प्रयत्न करें वरन सम्बन्धित देश के प्रशासकों के समझने योग्य सुझावों को प्रस्तुत करें। इसलिए प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अध्ययन में अब तुलना मुख्य बिन्दु बन गया है। लोक प्रशासन की बढ़ती हुई तुलनात्मक प्रवृत्ति ने इस विषय को अत्यधिक व्यापक और उपयोगी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

टी0 एन0 चतुर्वेदी के तुलनातमक लोक प्रशासन की अध्ययन-प्रणाली की अग्रलिखित लाभ बताये हैं-

1. तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली के कारण सामाजिक अनुसन्धान का क्षेत्र व्यापक हुआ है। पहले यह संकीर्ण सांस्कृतिक बन्धनों से मर्यादित था।
2. तुलनातमक अध्ययन की क्रान्ति ने 'सिद्धान्त रचना' में अधिक वैज्ञानिकता ला दी है।
3. तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली, दृष्टि को व्यापक बना देती है जिसके कारण दुनिया को आत्म-केन्द्रित या आत्म-संस्कृति को केन्द्रित देखने की संकीर्णता नहीं रह पाती।
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन से सामाजिक विश्लेषण का क्षेत्र बढ़ाने की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिलता है।

लोक प्रशासन और प्रशाकीय व्यवस्थाओं के अध्ययन के लिए इसमें तुलनात्मक दृष्टिकोण का सहारा लिया जाता है। लेकिन अब प्रश्न यह उठता है कि तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन कैसे और किन-किन क्षेत्रों में किया जा सकता है? जब तक किसी भी अनुशासन का अध्ययन-क्षेत्र और विषय-वस्तु स्पष्ट न हो तो वह स्वतन्त्र अनुशासन का रूप नहीं ले पाता है। वैसे मोटे तौर पर तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का क्षेत्र विश्व के समस्त देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाऐं मानी गयी हैं। प्रशासन का यह दृष्टिकोण इस बात की ओर इंगित करता है कि किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन एवं तुलना किसी भी दूसरे देश की प्रशासकीय व्यवस्था के साथ की जा सकती है। लेकिन वस्तुतः इसे तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का वैज्ञानिक क्षेत्र नहीं माना जा सकता है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन-क्षेत्र के सूक्ष्म दृष्टिकोण के अनुसार इसका अध्ययन तीन स्तरों पर किया जा सकता है-

1. **वृहतस्तरीय अध्ययन-** वृहतस्तरीय अध्ययन का मुख्य जोर इस बात पर रहता है कि किसी देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था का तुलनात्मक अध्ययन दूसरे देश की सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था के साथ किया जाय। यह अध्ययन दोनों देशों के पर्यावरण के उचित सन्दर्भ में किया जाता है, जैसे- भारत की प्रशासनिक व्यवस्था का फ्रान्स अथवा जापान की प्रशासनिक व्यवस्था के साथ तुलनात्मक अध्ययन। वृहतस्तरीय अध्ययन में सम्बन्धित देश की प्रशासनिक व्यवस्था के सभी महत्वपूर्ण पहलुओं का विश्लेषण किया जाता है। इस अध्ययन में दोनों के आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पर्यावरण को भी शामिल किया जाता है। सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था की तुलना और विश्लेषण के पश्चात ही तुलनात्मक लोक प्रशासन के वृहतस्तरीय अध्ययन में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। अतः लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन का यह विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र है।
2. **मध्यवर्ती अध्ययन-** तुलनात्मक लोक प्रशासन के मध्यवर्ती अध्ययन क्षेत्र के तहत प्रशासनिक व्यवस्था के इस महत्वपूर्ण भाग या अंग की तुलना की जाती है जो आकार और क्षेत्र में अपेक्षाकृत बड़ा हो अर्थात् इसके अन्तर्गत दो देशों के प्रशासन के महत्वपूर्ण एवं बड़े अंगों की तुलना की जाती है, जैसे-भारत और सोवियत संघ को स्थानीय सरकारों की तुलना अथवा भारत एवं ब्रिटेन के कार्मिक प्रशासन की तुलना तथा फ्रांस और जर्मनी में नौकरशाही की तुलना इत्यादि मध्यवर्ती अध्ययन के उदाहरण हैं। यह अध्ययन न तो सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवस्था का अध्ययन होता है न ही किसी सूक्ष्म अथवा छोटे अंग की तुलना, बल्कि प्रशासन के एक बहुत बड़े भाग की तुलना दूसरे देश की उसी स्तर की प्रशासनिक व्यवस्था के साथ ही की जाती है।
3. **लघुस्तरीय अध्ययन-** लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में आजकल लघुस्तरीय अध्ययन अधिक प्रचलित है। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन में किसी खास विभाग अथवा विभाग की किसी खास प्रक्रिया का अध्ययन किसी दूसरी प्रशासनिक व्यवस्था के तहत सम्बन्धित विभाग की इस प्रक्रिया के

साथ की जाती है। यह अध्ययन का सूक्ष्म एवं छोटा स्तर है। प्रशासनिक अनुसंधान के लिए तुलनातमक लोक प्रशासन के क्षेत्र में इसका प्रयोग किया जा रहा है, जैसे- भारत के असैनिक अभियान की प्रशिक्षण व्यवस्था की ब्रिटेन के असैनिक अभियान की प्रशिक्षण व्यवस्था के साथ तुलना। भारत और फ्रान्स की उच्च सेवाओं में भर्ती प्रक्रिया के लिए योग्यता परीक्षण का तुलनात्मक अध्ययन। भारत, अमेरिका और फ्रान्स में भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए किये गये प्रशासनिक सुधारों का तुलनात्मक अध्ययन इत्यादि लघुस्तरीय अध्ययन के उदाहरण हो सकते हैं। इस प्रकार के अध्ययन ज्यादा उपयुक्त और सार्थक साबित होते हैं।

8.3 तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के दृष्टिकोण या उपागम

जब भी एक स्वतन्त्र अनुशासन के रूप में विषय का उदय होता है तो उसके समक्ष एक महत्वपूर्ण समस्या अध्ययन के उन दृष्टिकोणों, उपागमों और विधियों की हो जाती है जिनका सहारा लेकर विषय की गहराई तक पहुँचने का प्रयास किया जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के समक्ष भी इस प्रश्न का उठना कोई आश्चर्य की बात नहीं, बल्कि स्वाभाविक ही था। तुलनात्मक लोक प्रशासन के उदय के साथ ही इस बात की खोज की जाने लगी कि इसके अध्ययन के लिए कौन-कौन से उपागम ज्यादा उपयुक्त होंगे। प्रारम्भ में तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए उन परम्परागत विधियों और उपागमों को अपनाने का प्रयास किया गया जो अब तक लोक प्रशासन के अध्ययन में प्रयोग में लायी जाती थीं किन्तु बहुत जल्द ही इन उपागमों की अपर्याप्तता स्पष्ट हो गयी। अतः अधिक अनुभवपरक और अधिक व्यावहारिक उपागम की तलाश की जाने लगी। हरबर्ट साइमन, एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स, ला0 पालोम्बरा, रॉबर्ट ए0 डॉहल, डेविड ईस्टन, जॉन मॉन्टगुमरी, फ्रेंक शेरवुड तथा ड्वाइट वाल्डो जैसे विद्वानों ने तुलनात्मक लोक प्रशासन के उपागमों की तलाश को समृद्ध बनाया तथा इससे सम्बन्धित अनेक रचनाऐं, निबन्ध तथा पुस्तकें प्रसारित की। मुख्य रूप से तुलनात्मक लोक प्रशासन के अर्वाचीन दृष्टिकोणों में निम्नलिखित तीन उपागम ज्यादा उल्लेखनीय प्रतीत होते हैं-

8.3.1 संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण

सर्वप्रथम 1955 में संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण का उल्लेख लोक प्रशासन के क्षेत्र में ड्वाइड वाल्डो ने किया था तथा इसकी उपयोगिता पर वृहत रूप से प्रकाश डाला था। प्रो0 रिग्स को ड्वाइट वाल्डो का यह विचार ज्यादा अच्छा लगा था। अतः उन्होंने 1957 में इसी दृष्टिकोण के आधार पर अपना क्षेत्रिक औद्योगिकी मॉडल प्रस्तुत किया। तत्पश्चात प्रो0 रिग्स तुलनातमक लोक प्रशासन के क्षेत्र में संरचनात्मक कार्यात्मक दृष्टिकोण के वास्तविक प्रयोगकर्त्ता माने जाने लगे। हालाँकि सामाजिक विश्लेषण के क्षेत्र में इस दृष्टिकोण का प्रयोग काफी पहले से हो रहा था। इस दृष्टिकोण के समर्थकों में पूर्व से ही टैलकॉट पार्सन्स, रॉबर्ट मर्टन, गेब्रियल आमण्ड तथा डेविड एप्टर इत्यादि विद्वान थे। लेकिन इनका दृष्टिकोण तुलनात्मक लोक प्रशासन में इसके प्रयोग की तरफ नहीं था। तुलनात्मक लोक प्रशासन में संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था की संरचना होती है। इस संरचना के द्वारा तथा संरचना के विभिन्न अंगों के द्वारा अपनी क्षमतानुसार कार्य सम्पदित किये जाते हैं। निर्धारित कार्य को सम्पादित करने वाली विभिन्न संरचनाओं का तुलनात्मक विवेचन और विश्लेषण ही इस दृष्टिकोण का केन्द्र-बिन्दु है। इस दृष्टिकोण के समर्थकों की यह मान्यता है कि लोक प्रशासन एक सुनियोजित एवं गतिशील मशीन है। इसका अध्ययन उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार स्कूटर, मोटरकार या साइकिल के विभिन्न अंगों और उसके कार्यों का अध्ययन किया जाता है। ये सभी अंग आपसी समन्वय और अन्तनिर्भरता के साथ अपने कार्यों का सम्पन्न करते हैं, तो इन्हें संगठनात्मक-संरचनात्मक कार्य कहा जाता है। इनकी संरचना और कार्यों का तुलनात्मक विवेचन करना ही संरचनात्मक-कार्ययात्मक दृष्टिकोण हुआ। लोक

प्रशासन के विभिन्न अनुसंन्धानकर्त्ता इस पर शोध करते हैं कि दो विभिन्न संरचनाओं में कौन-कौन सी समानता अथवा असमानता है, जबकि उन्हें एक ही प्रकृति के कार्य सम्पादित करने होते हैं।

8.3.2 पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण

तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण को एक महत्वपूर्ण उपागम माना जाता है। इस दृष्टिकोण को समृद्ध बनाने का श्रेय एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स, रॉबर्ट ए0 डॉहल जे0एम0 गॉस और मार्टिन इत्यादि विद्वानों को प्रमुख रूप से जाता है। तुलनातमक लोक प्रशासन के पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की यह मान्यता है कि जिस तरह प्रत्येक प्रकार के पौधे सभी प्रकार के वातावरण में नहीं फल-फूल सकते अथवा नहीं विकसित हो सकते हैं उसी प्रकार प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था सभी देशों की परिस्थितियों और वातावरणों में उपयोगी और सफल नहीं हो सकती। लोक प्रशासन भी अपने देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों एवं पर्यावरण से प्रभावित होता है। अतः पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण की मान्यता है कि लोक प्रशासन का अध्ययन इन परिस्थितियों और पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए। इस दृष्टिकोण के समर्थकों की यह मान्यता है कि किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषण एवं अध्ययन करने से पूर्व उस सामाजिक और राजनीतिक संरचना को भी समझा जाना चाहिए जिसमें वह कार्य कर रहा है। प्रो0 एफ0 डब्ल्यू0 रिग्स का 'प्रिज्मेटिक साला मॉडल' पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण के अध्ययन पर ही आधारित है।

अपने शोध कार्य में उनको यह महसूस हुआ कि प्रशासन को सम्पूर्णता से समझने के लिए पहले समाज को समझना अनिवार्य होगा, क्योंकि समाज अत्यंत व्यापक विषय है, जिसकी एक फसल के रूप में प्रशासन है।

अतः उनका शोध सामाजिक अधिक हैं, प्रशासनिक कम। संरचनात्मक और प्रक्रियात्मक दृष्टिकोण के द्वारा पहले उन्होंने समाज को समझने की कोशिश की। उनके अनुसार, किसी भी समाज के पाँच महत्वपूर्ण कार्य होते हैं- 1. सामाजिक 2. आर्थिक, 3. राजनीतिक, 4. संचार, 5. सांकेतिक (आस्था एवं विकास)

किसी भी समाज में ये पाँचों कार्य किसी एक संस्था द्वारा संचालित हो सकते हैं और यही कार्य पूरे समाज के द्वारा ही संचालित होते हैं, जैसे- शरीर की एक कोशिका जीवन की सभी क्रियाओं को करने में समर्थ होते है, जैसे- श्वसन, पाचन इत्यादि। लेकिन कोशिकाओं से बना हुआ शरीर भी इन कार्यों को करने में समर्थ है।

रिग्स कहते हैं, प्राथमिक समाज में परिवार एक प्राथमिक संस्था है और यही सम्पूर्ण संस्था होती है, क्योंकि समाज के सभी कार्य इस संस्था द्वारा संचालित होते हैं। लेकिन आधुनिक समाज में यह कार्य परिवार संस्था से बाहर निकलते जाते हैं। इस प्रकार परिवार संस्था का आकार छोटा होता जाता है और राजनैतिक और आर्थिक कार्य इत्यादि पृथक संस्था का रूप लेने लगते हैं। जैसे परिवार का मुखिया जो परिवार में राजनीतिक प्राधिकार होता था, वह आधुनिक समाज में राज्य और सरकार का रूप ले लेता है। इसी प्रकार परिवार का आर्थिक कार्य, बैंक और बीमा संस्थाओं का रूप ले लेता है।

रिग्स ने इस प्रकार समाज के आधारभूत चरित्रों को विश्लेषित करके, 1956 में 'कृषिका औद्योगिका मॉडल' प्रस्तुत किया। उन्होंने कृषि और औद्योगिक समाज के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। उनके अनुसार-

1. कृषि समाज में व्यक्ति की सामाजिक मान्यता उसके जन्म से जुड़ी होती है, जबकि औद्योगिक समाज में यह मान्यता उसके कर्म और उप्लब्धियों से जुड़ी होती है।
2. पहले में समाज स्थिर होता है, जबकि दूसरे में समाज गतिशील होता है। अतः पहले में सामाजिक स्तरीकरण स्पष्ट होता है, जबकि दूसरे में यह स्पष्ट नहीं होता है।

3. पहले में ये मत स्पष्ट नहीं होता है, क्योंकि एक ही व्यक्ति कई व्यवसाय से जुड़ा होता है, जबकि दूसरे में पेशेगत स्तर बिल्कुल स्पष्ट होता है। अर्थात व्यवसाय स्पष्ट होता है और उससे अलग-अलग लोग जुड़ जाते हैं।
4. पहले में सामाजिक मूल्य परम्पराओं पर टिके होते हैं, जबकि दूसरे में सामाजिक मूल्य तर्कों पर आधारित होते हैं।

कृषक और औद्योगिक आदर्श समाज के चरित्र हैं, अर्थात यह वास्तव में नहीं होते हैं। व्यवहार में अर्थात वास्तविकता में ट्रांजिशिया होता है, जिसमें कृषिक और औद्योगिका के चरित्रों का सहअस्तित्व होता है और किसी समाज को कृषि समाज तब कहा जाता है, जब उसमें कृषि के चरित्र प्रभावी होते हैं। ऐसा ही औद्योगिक समाज में भी होता है।

रिग्स अपने सामाजिक शोध को आगे बढ़ाते हुए 1957 में समाज का 'प्रिज्मेटिक मॉडल' प्रतिपादित करता है, जिसमें उन्होंने प्रकाश के वर्ण-विक्षेपण के सिद्धान्त की सहायता ली। इस मॉडल में रिग्स कहते हैं, जब प्रिज्य के एक सिरे पर सूर्य के प्रकाश की सफेद पुंज पड़ती है तो उसमें सारे रंगों का विलय होता है और इसकी तुलना उन्होंने 'विसात समाज' (Chessboard society) से ही की है, जो प्राथमिक समाज है, जिसमें परिवार संस्था में समाज के सभी संस्थाओं का विलय रहता है, जिसके कारण परिवार को प्राथमिक संस्था भी कहा जाता है।

प्रिज्म के दूसरे सिरे से सात रंगों का वर्णविक्षेपण होता है और यह महत्तम विक्षेपण है, क्योंकि विक्षेपण से और रंग नहीं निकलते हैं।

रिग्स ने इसे सर्वाधिक विकसित समाज से जोड़ा है, जिससे उन्होंने विवर्तित समाज कहा है, जिसमें समाज की सभी संस्थाएँ विशिष्ट और स्पष्ट होती है।

8.3.3 व्यवहारवादी दृष्टिकोण

व्यवहारवादी दृष्टिकोण को तुलनातमक लोक प्रशासन के अध्ययन के लिए नवीनतम दृष्टिकोण माना जाता है। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अन्तर्गत व्यवहारवादी दृष्टिकोण को समृद्ध बनाने में हरबर्ट साइमन तथा कैटलिन इत्यादि विद्वान उल्लेखनीय है। हालाँकि सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण की शुरूआत काफी पहले ही हो चुकी थी और सामाजिक विज्ञान के प्रत्येक विषय में इसके उदय का कारण परम्परावादी दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता के फलस्वरूप हुई प्रतिक्रिया मानी जाती है। लोक प्रशासन में भी अध्ययन के परम्परावादी दृष्टिकोण अपूर्ण तथा अपर्याप्त साबित हुए। अतः उसे अधिक व्यावहारिक और उपयोगी बनाने के लिए तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में व्यवहारवादी दृष्टिकोण का प्रयोग किया गया।

हरबर्ट साइमन ने अपने एक निबन्ध 'प्रशासनिक व्यवहार' में लोक प्रशासन के अध्ययन की परम्परागत रीति का खण्डन किया और कहा कि यदि हम संगठन का सही और वैज्ञानिक विवेचन करना चाहते हैं तो वह अध्ययन व्यवहार पर आधारित होना चाहिए। साइमन ने प्रशासन के व्यवहारिक पहलू को महत्व देते हुए कहा कि प्रत्येक संगठन में कार्य करने वाले हर व्यक्ति की अपनी इच्छाऐं और आकांक्षाऐं होती हैं तथा उसका व्यवहार मनोवैज्ञानिक स्थिति और प्रेरणाओं से प्रभावित होता है। व्यक्ति की व्यक्तिगत और सामाजिक स्थितियाँ अनेक प्रकार से उसके आचरण को प्रभावित करती हैं। अतः लोक प्रशासन का अध्ययन तभी व्यवस्थित और वैज्ञानिक हो सकेगा जब मानवीय व्यवहार के इन प्रभावशील तत्वों का सही विवेचन किया जाय। व्यावहारिक दृष्टिकोण ही अध्ययनकर्त्ता को संगठन में काम कर रहे व्यक्तियों के व्यवहारों और आचरण को सही ढंग से अभिव्यक्त कर सकेगा। तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी दृष्टिकोण 1960 के आसपास अपने चरमोत्कर्ष पर था, उसके बाद के विकास को उत्तर-व्यवहारवादी क्रान्ति नाम से जाना जाने लगा।

उत्तर-व्यवहारवाद की यह मान्यता थी कि यद्यपि व्यवहारवाद ने प्रशासनिक जगत को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका प्रस्तुत की है, परन्तु पूर्ण बोध के लिए वह पर्याप्त नहीं है। व्यवहारवादी रूढिवादिता को चुनौती दी जाने लगी थी। डेविड ईस्टन ने इस स्थिति को उत्तर-व्यवहारवादी क्रान्ति की संज्ञा दी। डेविड ईस्टन के अनुसार उत्तर-व्यवहारवाद यह मानता है कि प्रविधि की अपेक्षा उन वास्तविकताओं को महत्व दिया जाना चाहिए जो वर्तमान में गम्भीर सामाजिक और प्रशासनिक समस्याओं की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

अभ्यास प्रश्न-

1. हरबर्ट साइमन की किताब का नाम क्या है?
2. व्यवहारवाद का उदय अमेरिका में हुआ। सत्य/असत्य
3. प्रिज्मेटिक मॉडल रिग्स से सम्बन्धित है। सत्य/असत्य
4. प्रिज्मेटिक मॉडल विकासशील देशों के सम्बन्ध में है। सत्य/असत्य
5. तुलनात्मक लोक प्रशासन के अध्ययन का व्यवहारवादी दृष्टिकोण 1969 के आस-पास अपने चरमोत्कर्ष पर था। सत्य/असत्य

8.4 सारांश

तुलनात्मक लोक प्रशासन का महत्व निरन्तर बढ़ता जा रहा है। द्वितीय विश्व युद्ध के पश्चात एशिया एवं अफ्रीका में नवोदित राष्ट्रों के उदय के साथ ही लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन में रूचि उत्पन्न हुई। तुलनात्मक लोक प्रशासन के विद्वानों एवं समर्थकों का मूल उद्देश्य लोक प्रशासन को परम्परागत अध्ययन क्षेत्र एवं पुरातन अध्ययन प्रणालियों की सीमा से बाहर लाकर उसके क्षेत्र को विस्तृत करना तथा नयी समस्याओं के समाधान के अनुरूप नयी मान्यताओं को स्थापित करना था। तुलनात्मक लोक प्रशासन आधुनिक एवं वैज्ञानिक स्तर पर प्रशासनिक व्यवस्थाओं का विश्लेषण करके हमारे अनुभविक व सैद्धान्तिक ज्ञान को एकत्रित, व्यवस्थित व विस्तृत करता है। यह कहा जा सकता है कि लोक प्रशासन को समृद्ध, व्यापक तथा वैज्ञानिक बनाने के उद्देश्य को तुलनात्मक लोक प्रशासन अपना कर्त्तव्य मानता है। ऐसी आशा की जाती है कि इस प्रकार का तुलनात्मक विश्लेषण प्रायोगिकता और सार्वभौमिकता को भिन्न-भिन्न मात्राओं के लिए सामान्यीकरण के विभिन्न स्तरों पर प्रशासनिक प्रतिरूपों से सम्बन्धित परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायक सिद्ध होगा। प्रशासन की उपज के साथ ही इस बात की खोज की जाने लगी कि इसके अध्ययन के लिए कौन-कौन से उपागम अधिक उपयुक्त होंगे, जो उपागम विकसित किये गये उनमें संरचनात्मक-कार्यात्मक दृष्टिकोण, पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण एवं व्यवहारवादी दृष्टिकोण मुख्य हैं।

8.5 शब्दावली

विश्लेषण- किसी विषय के सभी अंगों की छानबीन करना जिससे उसका वास्तविक रूप सामने आये।

वृहद- विस्तार से, बहुत बड़ा।

दृष्टिकोण- किसी बात या विषय को किसी विशिष्ट दिशा या पहलू से देखने या सोचने-समझने का ढंग।

प्राधिकार- वह विशिष्ट अधिकार या शक्ति जिसके अनुसार औरों को कुछ करने की आज्ञा या आदेश दिया जा सकता हो।

8.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. एडमिनिस्ट्रेटिव विहेवियर, **2.** सत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य, **5.** सत्य

8.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरोरा, आर0 के0 (1979): "कम्परेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, एसोसिएटेड पब्लिशिंग हाउस।
2. चतुर्वेदी, टी0 एन0 (1992): तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर।

3. चटर्जी (1990): डेवलेपमेंट एडमिनिस्ट्रेशन, सुरजीत पब्लिकेशन, दिल्ली।

8.8 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. हेडी, फेरल (1984): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: ए कम्पेरेटिव पर्सपेक्टिव, प्रिंटिस हाल, न्यू जर्सी।
2. त्यागी, ए0 आर0 (1990): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली।
3. अवस्थी, ए0 एवं माहेश्वरी एस0 (1990): लोक प्रशासन, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, आगरा।

8.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. तुलनात्मक लोक प्रशासन की अवधारणा एवं महत्व पर प्रकाश डालिए।
2. तुलनात्मक लोक प्रशासन की परिभाषा दीजिए तथा इसके अध्ययन के विभिन्न उपागमों की व्याख्या कीजिए।

इकाई- 9 लोक प्रशासन एवं लोक नीति

इकाई की संरचना

9.0 प्रस्तावना
9.1 उद्देश्य
9.2 लोक नीति
    9.2.1 लोक नीति- अर्थ एवं परिभाषा
    9.2.2 लोक नीति एवं प्रशासन
    9.2.3 लोक नीति एवं निजी नीति
    9.2.4 लोक नीति की निर्माण प्रक्रिया
    9.2.5 नीति-निर्माण के मॉडल
9.3 सारांश
9.4 शब्दावली
9.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
9.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
9.8 निबंधात्मक प्रश्न

9.0 प्रस्तावना

लोक नीति प्रायः सभी शासन व्यवस्थाओं में सरकार के आवश्यक कार्यों में एक मार्गदर्शक का कार्य करती है। शासन के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एवं शासन को अधिकाधिक लोक कल्याणकारी बनाने हेतु लोक नीतियों का निर्माण किया जाता है। यह सभी मानते हैं कि लोक नीतियों का निर्माण एवं प्रक्रिया एक जटिल विषय है, फिर भी नीति-निर्माण किसी भी देश के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण क्रिया है। किसी भी लोक नीति की एक आवश्यक शर्त है कि वह लोगों की अपेक्षाओं पर खरी उतरे एवं समय-समय पर सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक प्रतिमानों के बदलने से नीतियों में भी वांछित संशोधन लाया जाये। किसी भी प्रशासन की यह इच्छा होती है कि नीति-निर्माण में जनमानस, क्षेत्र, नस्ल, भाषाई या अन्य बिन्दुओं पर सभी की न्यायोचित सहभागिता सुनिश्चित की जा सके।

9.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- लोक नीति की अवधारणा एवं अर्थ का अध्ययन करेंगे।
- लोक नीति एवं प्रशासन के मध्य सम्बन्ध समझ सकेंगे।
- लोक नीति की निर्माण प्रक्रिया का अध्ययन कर सकेंगे।
- लोक नीति से सम्बन्धित मॉडलों एवं क्रियान्वयन का अध्ययन कर सकेंगे।

9.2 लोक नीति- अर्थ एवं परिभाषा

टैरी के अनुसार, ''लोक नीति उस कार्यवाही की शाब्दिक, लिखित या विदित बुनियादी मार्गदर्शक है, जिसे प्रबन्धक अपनाता है तथा जिसका अनुगमन करता है।'' इसी प्रकार डिमाक कहते हैं, ''नीतियाँ सजगता से निर्धारित आचरण के वे नियम हैं जो प्रशासकीय निर्णयों को मार्ग दिखाते हैं।'' नीति एक ओर तो लक्ष्य या उद्देश्य से और दूसरी ओर परिचालन के लिए उठाए गए कदमों से भिन्न होनी चाहिए। उदाहरण के लिए देश में प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षित बनाना एक लक्ष्य है, अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षा एक नीति है जो इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बनाई गई है और स्कूल खोलना तथा अध्यापकों को प्रशिक्षित करना इत्यादि वे कदम हैं जो इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है।

लोक नीति वह होती है जो सरकारें वास्तव में करती हैं, बजाय इसके की सरकारें क्या करना चाहती हैं? इसके निर्माण में वे लोग होते हैं जिन्हें लोक नीति सूत्रबद्ध करने का वैधानिक अधिकार मिला रहता है। इसके अन्तर्गत विधायकों, कार्यपालकों और प्रशासकों को शामिल किया जाता है। औपचारिक रूप से विधायिका लोक नीति का निर्माण करती है। लोक नीति का उद्-भव राजनीतिक दलों और दबाव समूहों द्वारा होता है। रचना लोकसेवकों द्वारा होती है और संसद में इसे प्रस्तुत करने का कार्य सरकार करती है। संसदीय पद्धति वाले देशों में सभी नीतियों को मन्त्रिमण्डल का अनुमोदन प्राप्त करना आवश्यक होता है।

किसी नीति के अनुसार तीन भाग होते हैं- 1. निश्चित समस्या, 2. एक निश्चित लक्ष्य, 3. समस्या से लक्ष्य तक पहुँचने का एक निश्चित मार्ग।

किसी समस्या के चयन करने से पूर्व निम्नलिखित शर्तों का अनुपालन करना होता है- संसाधनों की उपलब्धता, समस्या की सार्वजनिक महत्व, समस्या का राष्ट्रीय महत्व, समस्या से जुड़ी मागें और मांग से जुड़ा समर्थन।

इस प्रकार लक्ष्य निर्धारण करने के लिए संवैधानिक निर्देशों का अनुपालन किया जाता है। अतः लक्ष्य निर्धारण में, विशेष दुविधा नहीं होती है।

समस्या से लक्ष्य तक पहुँचने के लिए कई वैकल्पिक मार्ग होते हैं, जिसमें समय और पूँजी के दृष्टिकोण से सांमजस्य स्थापित किया जाता है तथा सर्वाधिक प्रासंगिक मार्ग का चयन किया जाता है।

9.2.1 लोक नीति एवं प्रशासन

सर्वप्रथम लोक नीति एवं प्रशासन के सम्बन्धों पर पहली बार वुडरो विल्सन ने अपने विचार व्यक्त किए। उनका कहना था की नीति-निर्माण एक राजनीतिक कार्य है, जबकि प्रशासन केवल नीतियों को लागू करने मात्र से सम्बन्ध रखता है। उनके शब्दों में, प्रशासन का क्षेत्र व्यापार का क्षेत्र है। यह राजनीति की हड़बड़ी तथा कलह से अलग होता है। प्रशासन तो राजनीति के उचित क्षेत्र से बाहर ही रहता है। प्रशासकीय प्रश्न राजनीतिक नहीं होते। विल्सन का अनुशरण गुडनाउ ने भी किया। इसी प्रकार एल0 डी0 व्हाइट ने अपनी पुस्तक 'Introduction to the study of public Administration' के प्रथम संस्करण में राजनीति तथा प्रशासन के बीच स्पष्ट विभाजन-रेखा खींची।

उक्त अन्तर के बावजूद लूथर गुलिक, एपल्बी एवं पीटर ओडेगार्ड इसको अमान्य एवं अप्रमाणिक करार देते हैं। इन विद्वानों का मत है की प्रशासन को नीति से पूर्णतया अलग नहीं किया जा सकता। एपल्बी कहते हैं, प्रशासन राजनीति है, क्योंकि लोकहित के प्रति उत्तरदायी होना उसके लिए आवश्यक है। उनके ही शब्दों में, प्रशासकगण निरन्तर भविष्य के लिए नियम निर्धारित करते रहते हैं और प्रशासक ही निरन्तर यह निश्चित करते हैं की कानून क्या है? कार्यवाही के अर्थ में इसका तात्पर्य क्या है? प्रशासन और नीति के अपने अलग-अलग अधिकार क्या होंगे? प्रशासक एक अन्य प्रकार से भी भावी नीति-निर्माण में भाग लेते हैं, वे विधानमण्डल के लिए प्रस्तावों एवं सुझावों

का स्वरूप निश्चित करते हैं। यह नीति-निर्माण का ही एक भाग होता है। इस प्रकार सार्वजनिक अधिकारी आज नीति-निर्धारण तथा नीति-निष्पादन दोनों ही कार्यों में संलग्न होते हैं और सरकार उपर से नीचे तक प्रशासन तथा राजनीति का एक सम्मिश्रण बन गयी है। यह कहा जा सकता है की नीति तथा प्रशासन राजनीति के जुड़वा बच्चे हैं, जो एक-दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते।

9.2.2 लोक नीति एवं निजी नीति

जहाँ तक लोक नीति की विशेषताओं अथवा भूमिकाओं का प्रश्न है, यह निजी नीति से भिन्न है, क्योंकि-

1. लोक नीति कल्याणकारी होती है, जबकि निजी नीति लाभकारी होती है।
2. अतः पहला घाटे के बजट पर आधारित होता है, जबकि दूसरा अतिरिक्त बजट पर आधारित होता है।
3. लोक नीति के लिए बाहर से वित्तीय सहायता की आवश्यकता होती है, जबकि निजी नीति का निर्माण स्वयं पूँजी सृजन करने के उद्देश्य से किया जाता है।
4. पहले में बाहर से वित्तीय नियंत्रण होता है, जबकि दूसरे में आंतरिक वित्तीय नियंत्रण होता है।
5. लोक नीति में बाहरी वित्तीय दायित्व होता है, जबकि निजी नीति में, आंतरिक वित्तीय दायित्व होता है।
6. पहले में पारदर्शिता होती है, जबकि दूसरे में इसका अभाव होता है।
7. चूंकि लोक नीति पारदर्शिता पर आधारित होती है, इसलिए यह विधि के शासन पर आधारित होती है, जबकि निजी नीति में पारदर्शिता का अभाव होता है, इसीलिए यह व्यक्ति के शासन पर आधारित होती है।
8. अतः इन्हीं कारणों से पहला आपैचारिक तथा दूसरा अनौपचारिक होता है।
9. लोक नीति में सार्वजनिक मान्यता होती है, जबकि निजी नीति में व्यक्तिगत मान्यता होती है।
10. पहला संरचना उन्मुख होता है, जबकि दूसरा उत्पादनोन्मुख होता है।
11. पहला रोजगार उन्मुख होता है, जबकि दूसरा पूँजी उन्मुख होता है।
12. पहला नागरिक उन्मुख होता है। जबकि दूसरा उपभोक्ता उन्मुख होता है।
13. पहला राज्य से जुड़ा होता है, जबकि दूसरा बाजार से जुड़ा होता है।
14. पहला राष्ट्रीय आन्दोलन को बढ़ावा देता है, जबकि दूसरा बाजार आन्दोलन को बढ़ावा देता है, क्योंकि पहले का सार्वजनिक हित है, तो दूसरे का व्यक्तिगत हित है।

9.2.3 लोक नीति की निर्माण प्रक्रिया

जहाँ तक ''लोक नीति-निर्माण प्रक्रिया'' का प्रश्न है, इसमें दो प्रकार के भागीदार होते हैं- गैर-सरकारी भागीदार और सरकारी भागीदार। सरकारी भागीदार निम्नलिखित हैं- विधायिका, कार्यपालिका, नौकरशाही और न्यायपालिका (विशेष परिस्थितियों में)।

जहाँ तक विधायिका के भूमिका का प्रश्न है, यह संसदीय अथवा अध्यक्षात्मक व्यवस्था पर निर्भर करता है, क्योंकि संसदात्मक प्रणाली ''विलय के सिद्धान्त'' पर आधारित है, जिसमें विधायिका से ही कार्यपालिका का गठन होता है और कार्यपालिका विधायिका के ही प्रति उत्तरदायी होती है। अतः इस उत्तरदायित्व के कारण विधायिका नीति-निर्माण की शक्तियां, कार्यपालिका को प्रत्यायोजित कर देती है। इस प्रकार कार्यपालिका नीति-निर्माण से सीधी जुड़ी होती है, लेकिन आसाधारण बहुमत वाली सरकारें नीति-निर्माण में महत्वपूर्ण नहीं, निर्णायक हो जाती है, क्योंकि ऐसी सरकारें विधायिका के प्रति उत्तरादायी न होकर उसे नियंत्रित करने का प्रयास करती हैं।

अध्यक्षात्मक शासन प्रणाली में ''पृथक्करण का सिद्धान्त'' कार्य करता है, अर्थात् विधायिका से कार्यपालिका का गठन नहीं होता है। इसलिए कार्यपालिका, विधायिका के प्रति उत्तरदायी नहीं होती है। वस्तुतः वे राष्ट्राध्यक्ष के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

जब कार्यपालिका और विधायिका में ऐसा पृथककरण होता है, तो नीति-निर्माण में उनकी भूमिका सामान्य रूप से महत्वपूर्ण होती है। सामान्यतः बाहरी मामलों में कार्यपालिका निर्णायक है और आतंरिक मामलों में विधायिका निर्णायक हो जाती है।

जहाँ तक कार्यपालिका की भूमिका का प्रश्न है, यह विधायिका की भूमिका से जुड़ी हुई है, क्योंकि संसदीय व्यवस्था में कार्यपालिका तभी निर्णायक है, जब वह असाधारण बहुमत में है, अन्यथा विधायिका की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। किन्तु अध्यक्षात्मक प्रणाली में कार्यक्षेत्र का भी पृथकरण हो जाता है, जिसके कारण अपने-अपने कार्य-क्षेत्र में कार्यपालिका और विधायिका समान रूप में महत्वपूर्ण है।

जहाँ तक नौकरशाही की भूमिका का प्रश्न है, अध्यक्षात्मक प्रणाली में, सरकार के लिए समर्थन की कोई चिन्ता नहीं है। अतः सरकार स्थिर होती है। नीतियाँ दीर्घकालीन एवं व्यवहारिक होती हैं तथा नौकरशाही नीति-निर्माण से नहीं के बराबर जुड़ी होती है। वस्तुतः कोई भी सरकार नौकरशाही को पूरी तरह नजरअंदाज नहीं कर सकती है, क्योंकि नौकरशाही-

- ''शैक्षाणिक योग्यता'' के आधार पर बनती है।
- उनकी प्रतिस्पर्धात्मक ''चयन'' प्रक्रिया है।
- उनका ''सेवा उन्मुख प्रशिक्षण'' होता है।
- उनके पास लम्बा अनुभव होता है।
- सेवा के साथ, सुरक्षा के कारण उनका दृष्टिकोण सकारात्मक होता है।

इसके विपरीत संसदात्मक प्रणाली में, सरकार समर्थन पर आधारित होती है। अतः लोकप्रिय एवं आकर्षक नीतियां सरकार की बाध्यता है और ऐसी नीतियां आमतौर पर अव्यवहारिक होती है।

अतः नीति-निर्माण प्रक्रिया में, नौकरशाही भी संलग्न हो जाती है। इसका दूसरा कारण सरकार की अस्थिरता भी है।

जहाँ तक ''न्यायपालिका'' का प्रश्न है, यह नीति-निर्माण में सामान्य भागीदार नहीं है। यह विशेष परिस्थितियों में भाग लेती है, जब-

1. सरकारें अस्थिर होती हैं और वह निर्णय लेने में असमर्थ हो जाती हैं।
2. सरकारें विकास कार्यों से विमुख हो जाती हैं और अपने अस्तित्व की चिंता में जुटी रहती हैं।
3. निर्वाचन की बारम्बारता के कारण राजनीतिक भ्रष्टाचार बढ़ जाता है।
4. शासन एवं प्रशासन में जनता का विश्वास टूटने लगता है।
5. देश की अंतर्राष्ट्रीय छवि दाँव पर लग जाती है।

इस प्रकार न्यायपालिका की भागीदारिता ''न्यायिक सक्रियता'' कही जाती है, जो एक सामान्य स्थिति नहीं है।

जहाँ तक ''गैर-सरकारी भागीदारों'' का प्रश्न है, यह निम्नलिखित है- राजनीतिक दल प्रणाली, दबाव समूह, सामान्य नागरिक और प्रेस इत्यादि।

नीति-निर्माण प्रक्रिया में एक दलीय प्रणाली में, नीतिगत निर्णय शीघ्र होता हैं, क्योंकि कोई अन्तर्विरोध नहीं होता है, लेकिन निरंकुशता की आशंका बनी रहती है।

बहुदलीय प्रणाली में सभी दल अपने-अपने ढंग से नीतियों का निर्माण करती हैं, जबकि संस्थाऐं समान होती हैं। परिणामस्वरूप नीतियाँ परस्परव्यापी हो जाती हैं और इस प्रकार कई नीतिगत दुविधाऐं उत्पन्न होती हैं जो निर्माण और कार्यान्वयन दोनों को ही प्रभावित करते हैं।

द्विदलीय प्रणाली में, नीति-निर्माण सर्वाधिक, प्रासंगिक होता है, क्योंकि सत्तारूढ़ दल की आलोचना होती है, क्योंकि विपक्ष यह जानता है कि सत्ता परिवर्तन के पश्चात उन्हें ही इन आलोचनाओं का जवाब देना होगा।

भारत में बहुदलीय-प्रणाली कार्यरत हैं, लेकिन विगत कुछ वर्षों में भारतीय दलीय व्यवस्था को एक नयी दिशा मिल रही है, जिसमें विधायिका के अन्दर, सत्तारूढ़ दल एवं विपक्ष कार्य कर रहा है, यह अलग तथ्य है कि सत्तारूढ़ कई दल हैं। लेकिन विधायिका के बाहर बहुदलीय प्रणाली ही कार्य करती है। इस नयी दिशा में नीति-निर्माण में भी बदलाव आयेगा।

जहाँ तक ''दबाव समूह की भूमिका'' का प्रश्न है, कोई समूह, दबाव समूह के रूप में नीति-निर्माण में तभी भागीदार होता है। जब-

- प्रभावशाली संगठनात्मक शक्ति हो।
- प्रभावशाही नेतृत्व हो।
- संसाधन पर्याप्त हो।
- अन्तरसमूह समर्थन हो।

उपरोक्त कारणों के आधार पर उनकी सरकार तक पहुँच होती है।

जहाँ नागरिक और मीडिया की भूमिका का प्रश्न है, इनकी भूमिका तभी प्रभावशाली होती है, जब नागरिक आर्थिक स्वतंत्रता का भी उपयोग करता है। अर्थात साक्षरता, रोजगार, क्रयशक्ति यह सब कुछ चेतना विकास में सहायक होता है और चेतना विकास के साधन के रूप में अल्य दृश्य और प्रेस मीडिया की भूमिका होती है। अतः आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में नागरिक नीति-निर्माण प्रक्रिया में प्रभावशाली भागीदार नहीं हो सकता है, क्योंकि आर्थिक स्वतंत्रता के बिना राजनीतिक स्वतंत्रता का कोई अर्थ नहीं निकलता है।

9.2.4 नीति-निर्माण के मॉडल

इसमें निम्नलिखित बिन्दु शामिल हैं- तार्किक मॉडल, बुद्धिवाद, संस्थावाद, क्रीड़ा सिद्धान्त, समूह सिद्धान्त, प्रतिष्ठित समूह सिद्धान्त, प्रणाली सिद्धान्त।

''तार्किक मॉडल'' नीति-निर्माण प्रक्रिया से जुड़ा है। जिसमें तीन चरण होते हैं। प्रथम चरण- परिकल्पना है, जिसमें समस्याओं का चयन होता है, दूसरा चरण- डिजाइन है, जिसमें समस्या से समाधान तक पहुँचने के कई मार्ग बनाये जाते हैं। तीसरा चरण- चयन का है। इस मॉडल में नवीनता होती है। यह नवीन नीति का निर्माण करता है। जिसके कारण महत्वाकांक्षा, नवीन सोच, कल्पनाशीलता को बढ़ावा मिलता है। लेकिन इसमें भारी समय और पूँजी की खपत है और इन सब के ऊपर भी नवीन नीति से जोखिम जुड़ा होता है और कोई व्यवसाय जोखिम को घटाना चाहती हैं, बढ़ाना नहीं।

अतः तार्किक मॉडल के सुधार रूप में **''बुद्धिवाद''** का उदय हुआ, जिसमें पुरानी नीतियों का नवीकरण होता है। जिसमें जोखिम कारक कम हो जाता है, समय और पूँजी की खपत सीमित हो जाती है। आखिरकार यह नहीं भूला जा सकता है, क्योंकि इतिहास अपने आपको दोहराता है। अतः एक सीमा तक पुरानी नीतियों को स्वीकार किया जा सकता है और यही होता भी है, क्योंकि नीति पूर्णतया नयी नहीं होती है और इस प्रकार नीति-निर्माण में, वृद्धिवाद को सर्वाधिक मान्यता मिली है।

''संस्थावाद'' नीति-निर्माण का अगला मॉडल है, जिसका अर्थ है- कई संस्थाएं नीति-निर्माण से जुड़ी होती है, लेकिन यह संस्थाएं इस प्रक्रिया में तभी सफल होती है, जब उनके कार्यक्षेत्र बिल्कुल परिभाषित हो। जैसा एक सीमा तक अध्यक्षात्मक प्रणाली में होता है, क्योंकि वह सत्ता के पृथक्करण के सिद्धान्त पर टिका है, लेकिन संसदात्मक प्रणाली में संस्थाओं के कार्य-क्षेत्र पूर्णतया परिभाषित नहीं है। विशेषरूप से न्यायपालिका एवं विधायिका जो एक-दूसरे से उन्मुक्त भी हैं और निर्भर भी हैं। इसी प्रकार कार्यपालिका और विधायिका विलय के सिद्धान्त पर कार्य करती हैं और कार्यपालिका का उत्तरदायित्व संवैधानिक प्रावधानों से अधिक परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

अतः परस्परव्यापी संस्थाएं, नीति-निर्माण प्रक्रिया में उलझ कर रह जाती है, और नीतियां आमतौर पर छंदात्मक होती हैं।

''क्रीड़ा सिद्धान्त'' अगला मॉडल है। इस मॉडल में नीति-निर्माण प्रक्रिया की शुरूआत बहुपक्षीय होती है। सभी भागीदारों के सामान्य महत्व होते हैं। जैसे संयुक्त राष्ट्र महासभा में होता है और नीति-निर्माण होने तक व्यवस्था बहुपक्षीय बनी रहती है। अर्थात् सम्बन्धित नीति में सभी भागीदारों का सामान्य महत्व बना रहता है। यह सम्भव है कि कोई भागीदार नकारात्मक मत का हो, लेकिन सफल नीति-निर्माण में सभी का समान दायित्व बन जाता है।

इसके विपरीत **''समूह सिद्धान्त''** में शुरूआत बहुपक्षीय होती है। लेकिन कालांतर में, नीति-निर्माण प्रक्रिया में एक उप-समूह दूसरे उप-समूह पर हावी हो जाता है। जिसमें वह उप-समूह हावी होता है, जिसकी संगठनात्मक शक्ति प्रभावशाली है। नेतृत्व प्रभावशाली है, समुचित संसाधन हैं, अन्तर समूह समर्थन है तथा नीति निर्माताओं तक उनकी पहुँच है।

''प्रतिष्ठित समूह'' सिद्धान्त वस्तुतः आदिम राजनीतिक संस्कृति से जुड़ा है। जहाँ नीति-निर्माण एक प्रतिष्ठित समूह के रूप में होते हैं। शुरूआत और अंत दोनों ही एकांगी होता है। जिसमें नीति-निर्माण को कोई चुनौती देने का दुस्साहस नहीं करता है और इस प्रकार नीतियां समाज पर आरोपित की जाती हैं। अतः यह मॉडल व्यक्तिगत और साझेदार राजनीतिक संस्कृति में लागू नहीं होता है।

जहाँ तक **''प्रणाली सिद्धान्त''** का प्रश्न है। इस मॉडल के तीन भाग होते हैं। पहला भाग ''इनपुट'' है, जिसमें समस्याओं के साथ-साथ निम्नलिखित तथ्य आते हैं- उपलब्ध संसाधन, समस्या का सार्वजनिक महत्व, राष्ट्रीय महत्व, मांग एवं समर्थन। दूसरा भाग ''संक्रियन'' है, जिसमें इनमें सभी तथ्यों के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाता है। सामंजस्य की प्रक्रिया में पूरी प्रणाली, वातावरण से कट जाती है, जिस अवस्था को 'ब्लैक बॉक्स' कहते हैं। यदि ब्लैक बॉक्स विचलित नहीं होता है, तो सामंजस्य की अविध घट जाती है। तीसरा भाग ''आउटपुट'' है, जो सामंजस्य प्रक्रिया पर निर्भर करती है। तदनुसार नीति-निर्माण आउटपुट के रूप में होता है।

जैसे नीति-निर्माण प्रक्रिया में, योजना आयोग ''ब्लैक बॉक्स'' के रूप में कार्य करती है। यदि मध्यवर्ती सत्ता परिवर्तन से विचलन नहीं होता है, तो नीति-निर्माण प्रक्रिया तेज हो जाती है और आउटपुट शीघ्र होता है।

जहाँ तक **''नीति क्रार्यान्वयन''** का प्रश्न है, यह निम्न कारकों से प्रभावित होता है। जैसे- सूचना की प्रासंगिकता, सूचना का विनिमय, सेवाकाल पद्धति, केन्द्रवाद, विभागवाद, संगठनात्मक कठिनाइयाँ और कार्यात्मक कठिनाइयाँ।

नीति-निर्माण और क्रिर्यान्वयन सूचना की वैधता पर टिका हुआ है। वस्तुतः सूचना ही सूचना को जन्म देती है और जब पहली ही सूचना अप्रांसगिक होती है तो सूचनाओं की पूरी कड़ी आप्रसंगिक हो जाती है। वस्तुतः सूचना प्रेषित करने के लिए कई संस्थाऐं बनायी गयी हैं। लेकिन उनके कार्यक्षेत्र पूर्णतः परिभाषित नहीं है, जिससे

संगठनात्मक उत्तरदायित्व का अभाव रहता है। परिणामस्वरूप यह संगठन प्रमाणिक सूचना भेजने के स्थान पर सूचनाओं की पुर्नरावृत्ति करती रहती है, जो अप्रासंगिकता का मूल कारण है।

अतः संगठनात्मक उत्तरदायित्व परिभाषित किये जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी क्षेत्र विशेष से सूचना प्राप्त करने के लिए सरकारी संगठनों के समानंतर गैर-सरकारी संगठन संलग्न किये जाने चाहिए। सूचनाओं की प्रमाणिकता की जाँच की जा सकती हो और यदि सरकारी संगठनों की सूचना अप्रसांगिक पायी जाये तो उसे तत्काल बन्द किया जाना चाहिए।

सफल नीति-निर्माण और कार्यान्वयन के लिए यह आवश्यक होता है कि सिद्धान्त और व्यवहार के बीच विनिमय होता रहे। जबकि प्रशासक और चिंतक के बीच सूचना-विनिमय का लगभग अभाव रहता है, क्योंकि प्रशासक और चिंतक एक-दूसरे के महत्व को समझने में असमर्थ हैं। वस्तुतः प्रशासन और नागरिक के बीच विचारों का विनिमय होते रहना चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि नीति अपने उद्देश्यों को प्राप्त कर रहा है अथवा नहीं। जिसके लिए लोक प्रतिक्रियाओं को आमंत्रित किया जाना चाहिए। जबकि प्रेस मीडिया को छोड़कर ऐसी कोई संस्था, कार्य नहीं करती है।

नीति-निर्माण और कार्यान्वयन को सफल बनाने के लिए अधिकारियों के लिए सेवाकाल पद्धति का विकास किया गया, ताकि वह एक स्थान पर तीन वर्ष के लिए स्थिर हो। लेकिन सरकार की अस्थिरता के कारण प्रशासनिक फेरबदल भी बढ़ गया है। परिणामस्वरूप अधिकारी शरणस्थल की तलाश करते हैं, जो उन्हें सचिवालय के रूप में प्राप्त होता है। लेकिन ऐसे अधिकारियों का मैदानी सम्पर्क टूट जाता है, जबकि वे नीतिनिर्मात्री संस्था से जुड़ जाते हैं। इस प्रकार नीति-निर्माण और क्रिर्यान्वयन में समसामयिकी दृष्टिकोण का अभाव हो जाता है। जिसके लिए स्थानान्तरण नीति, तत्काल परिभाषित किया जाना चाहिए।

नीति-निर्माण और क्रियान्वयन **''केन्द्रवाद''** से बहुत प्रभावित हुआ है। क्योंकि भारत में, केन्द्रीय योजना आयोग मूल ड्राफ्ट तैयार करती है और इसी मूल ड्राफ्ट के अधीन राज्यों को प्रतिक्रिया करनी होती है, जिसके कारण केन्द्र, राज्यों पर नियोजन आरोपित कर देता है। जबकि नियोजन प्रक्रिया नीचे से ऊपर होनी चाहिए। इसी प्रकार राज्यों की नीति निमात्री संस्थाओं में अधिकारियों का बाहुल्य है, जबकि ज्यादातर अधिकारी बाहरी होते हैं। अधिकारियों को प्रान्तीय जानकारी बेहतर होती है। अतः उन्हें नीति-निर्माण और क्रार्यान्यन में समुचित भागीदारी मिलनी चाहिए। सौभाग्य से वर्ष 1996 से आधी रिक्तियां राज्यों को आवंटित कर दी जाती हैं ताकि अधिकारियों के पद्धोन्नति कि अवसर बढ़ाए जा सकें।

''विभागवाद'' अगली समस्या है। वस्तुतः लोक प्रशासन हमेशा रोजगार उन्मुख रहा है। जिससे कालांतर में विभागों की संख्या अवश्य बढ़ गयी और जब उदारीकरण का दौर आया तो अनावश्यक विभागों को बंद करने की कोशिश की गयी। परिणामस्वरूप विभागों को अपना अस्तित्व बचाने के लिए विभागीय पहचान स्थापित करना आवश्यक हो गया और इस प्रकार नीति क्रियान्वयन गौण हो गया, साथ ही विभागीय प्रतिस्पर्धा बढ़ गयी। विभागीय प्रतिस्पर्धा के कारण विभागीय पहचान प्रथम प्राथमिकता का विषय बना गया।

''संगठनात्मक समस्याऐं'' भी कम नहीं है। वस्तुतः यह संगठन के विभाग की आंतरिक समस्या है, क्योंकि विगत वर्षों में रोजगार उन्मुखता के कारण कर्मचारियों की अधिकता हो गयी है, जिससे उत्तरदायित्व का अभाव हो गया है। जिसका एक कारण सरकारी सेवाओं के साथ सुरक्षा है।

अतः पक्षों के कार्य-क्षेत्र पुनः परिभाषित किये जाने चाहिए, ताकि अनावश्यक पदों की पहचान की जा सके और तभी अतिरिक्त कर्मचारियों की छंटनी की जा सकती है, ताकि सेवारत कर्मचारी नीति क्रियान्वयन के लिए प्रतिबद्ध हो।

''कार्यात्मक'' कठिनाइयां चुनौतीपूर्ण समस्या है। क्योंकि जब कभी लोक नीति का क्रियान्वयन होता है, तो बाह्य और आतंरिक विरोध प्रकट होते है। बाह्य विरोध विशेष चिंता का विषय नहीं है, क्योंकि बाह्य विरोध आपेक्षित होता है। लेकिन विशेषरूप से मिली-जुली सरकारों के अस्तित्व के कारण (या संस्कृति के कारण) आज आंतरिक विरोध बढ़ गया है, जो सरकार के लिए विशेष चिंता का विषय है और यही कारण है कि सरकारें नीति-निर्माण में अधिक अभिरूचि लेती हैं। वह नीतियों के क्रार्यान्वयन से भागती रहती हैं।

अतः नीतियों के सफल क्रिर्यान्वयन के लिए आंतरिक विरोध का समाधान आवश्यक है। जिसके लिए मिली-जुली सरकारों को पहले आंतरिक विश्वास बनाना चाहिए और आंतरिक विश्वास बनाने के लिए मंत्रिपरिषद की बैठक से पहले समन्वय समिति की बैठक आयोजित की जानी चाहिए। यही समय की मांग है।

जहाँ तक **''नीतिगत मूल्यांकन''** का प्रश्न है, इसकी कई पूर्व शर्तें है। जैसे- नीतियों को सरल एवं पारदर्शी होनी चाहिए, ताकि सामान्य जनता को जोड़ा जा सके। जबकि यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बजटीय नीति, जो देश की सौ प्रतिशत जनसंख्या को प्रभावित करता है, आधी-अधूरी रह जाती है।

लोक नीतियों के साथ आवश्यक संसाधन उपलब्ध होने चाहिए। अतः नीतियों के लागू करने से पहले, दीर्घकालिक संसाधन सुनिश्चित किये जाने चाहिए।

लोक नीति यों के लिए संगठनात्मक दायित्व, सुनिश्चित किया जाना चाहिए, ताकि आम नागरिक यह जान सके कि किस नीति के लिए कौन सा संगठन उत्तरदायी है?

नीतियों की क्रियान्वयन प्रक्रिया सरल, परिभाषित एवं व्यवहारिक होनी चाहिए, ताकि लालफीताशाही को रोका जा सके, जो समस्याओं की जड़ है।

इन आधारों पर नीतियों का मध्यावधि मूल्यांकन किया जाना चाहिए, ताकि समय-समय पर आवश्यक सुधार किये जा सके। अन्यथा नीतियों को बंद करना पड़ता है, जो नीतिगत विश्व सनीयता घटा देती है। क्योंकि लोक नीति की विश्व सनीयता लोक नीति का प्रभाव तय करती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. लोक नीति एवं प्रशासन एक-दूसरे से प्रथक हैं। सत्य/असत्य
2. प्रशासन की लोक नीति में भागीदारी आवश्यक है। सत्य/असत्य
3. लोक नीति निर्माण में दलों की कोई भूमिका नहीं है। सत्य/असत्य
4. लोक नीति निर्माण में न्यायपालिका की कोई भूमिका नहीं है। सत्य/असत्य

9.3 सारांश

नीति-निर्माण लोक प्रशासन का सार है। नीतियाँ ऐसा प्रमाणिक मार्गदर्शक हैं जो प्रबन्धकों को योजना बनाने, कानूनी आवश्यकताओं के अनुरूप कार्य करने तथा वांछित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है। जनता की विविध मांगों एवं कठिनाइयों का सामना कर सकने के लिए सरकार को बहुत सी नीतियाँ बनानी पड़ती हैं, जिन्हें लोक नीति याँ कहते हैं।

किसी भी लोक नीति के निर्माण में सामान्यतः कुछ मूल बातें हमें दिखाई देती हैं- लोकहित पर आधारित सरकारी संस्थाओं द्वारा बनाया जाना, लोक नीति जटिल प्रक्रिया का परिणाम और भविष्योन्मुख।

लोक नीति -निर्माण सरकार की सबसे महत्वपूर्ण गतिविधि है, क्योंकि यह नागरिकों तथा समूचे राष्ट्र की जीवन के हर एक पक्ष को छूता है। नीति-निर्माण की संरचना के अंतर्गत समूची राजनीतिक व्यवस्था शामिल रहती है। नीतियों का क्रिर्यान्वयन उतना ही महत्वपूर्ण है, जितना कि उनका निर्माण। नीति निष्पादन वह प्रक्रिया है, जिसके

द्वारा एक नीति के लक्ष्य एवं प्रतिज्ञाऐं पूरी की जाती हैं। नीति-निर्माण के लिए विधायिका आधिकारिक एजेंसी है, तो नीतियों के निष्पादन के लिए कार्यपालिका आधिकारिक अंग है।

9.4 शब्दावली

वैधानिक- विधि सम्मत या कानून के अनूरूप, विनिमय- एक वस्तु लेकर उसके बदले में दूसरी वस्तु देना।

9.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. असत्य, **2.** असत्य, **3.** सत्य, **4.** सत्य

9.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. हेडी, फेरल (1984): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन: ए कम्परेटिव परस्पेक्टिव, प्रिंटिस हाल, न्यू जर्सी।
2. भट्टाचार्य, मोहित (1987): पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वर्ल्ड प्रेस, कलकत्ता।
3. एण्डरसन, ई0 जेम्स (1975): पब्लिक पालिसी में किंग, थामस नेल्सन एण्ड सन्स, लन्दन।
4. अवस्थी, ए0 एवं माहेश्वरी एस0(1990): लोक प्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।

9.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वाल्डो, डवाइट (1956): पर्सपेक्टिव इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलाबामा प्रेस, अलाबामा (यू0एस0ए0)
2. ऐपलबी, पी0 एच0 (1956): पालिसी आफ एडमिनिस्ट्रेशन, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली।

9.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. लोक नीति से आप क्या समझते हैं? लोक नीति निर्माण का क्या महत्व है?
2. लोक नीति निर्माण के विभिन्न माडलों पर निबन्ध लिखिये।
3. लोक नीति निर्माण में विभिन्न स्रोतों की विवेचना कीजिए।
4. सार्वजनिक नीति एवं लोक नीति में क्या भिन्नतायें हैं?

इकाई- 10 संगठन

इकाई की सरंचना

10.0 प्रस्तावना
10.1 उद्देश्य
10.2 संगठन का अर्थ एवं अवधारणा
    10.2.1 समूह अवधारणा
    10.2.2 कार्यात्मक अवधारणा
    10.2.3 उद्देश्य अवधारणा
    10.2.4 प्रक्रिया अवधारणा
10.3 संगठन के उद्देश्य
10.4 संगठन के सिद्धान्त
10.5 संगठन का महत्व
10.6 संगठन के प्रकार
    10.6.1 औपचारिक संगठन
    10.6.2 अनौपचारिक संगठन
10.7 सारांश
10.8 शब्दावली
10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
10.12 निबंधात्मक प्रश्न

10.0 प्रस्तावना

लोक प्रशासन विषय के अन्तर्गत संगठन को सर्वाधिक महत्वपूर्ण व गम्भीर अवधारणा के रूप मान्यता दी जाती है, क्योंकि संगठन की अवधारणा को स्पष्ट रूप से विश्लेषित करने के पश्चात ही लोक प्रशासन के अन्य सिद्धान्तों था अवधारणाओं को आत्मसात किया जा सकता है।

वर्तमान प्रशासनिक पर्यावरण में किसी भी प्रकार के प्रशासन का आधार एक सुव्यवस्थित संगठन होता है। एक मानव परिवार रूपी संगठन में जन्म लेता है और परिवार रूपी संगठन में ही अपना अस्तित्व समाप्त कर देता है। इसके आभाव में मानव समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वास्तव में संगठन सहकारी प्रक्रियाओं के लिये एक आधारभूत अवधारणा है।

प्रस्तुत इकाई, संगठन के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्धानों की परिभाषाओं, तत्वों, सिद्धान्तों और उद्देश्यों पर प्रकाश डालेगी। संगठन के दो प्रमुख स्वरूप औपचारिक तथा अनौपचारिक को भी स्पष्ट करने का प्रयास करेगी तथा संगठन क्यों महत्वपूर्ण है? इस प्रश्न का उत्तर भी विवेचनोपरान्त आप समझ पायेंगे।

10.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संगठन की अवधारणा एवं अर्थ से परिचित हो सकेंगे।
- संगठन के महत्व को रेखांकित कर सकेंगे।
- औपचारिक संगठन को विश्लेषित कर सकेंगे।
- अनौपचारिक संगठन की अवधारणा को आत्मसात कर सकेंगे।

10.2 संगठन का अर्थ एवं अवधारणा

इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि आदिकाल का मानव भी अपनी आवश्यकताओं की संन्तुष्टि के लिए कुछ न कुछ कार्य अवश्य करता था। संगठन की उत्पत्ति के विषय में यह कहा जा सकता है कि इसकी आवश्यकता उस समय हुई होगी, जब मनुष्यों ने साथ मिलकर कार्य करना शुरू किया होगा। कालान्तर में ज्ञान एवं विज्ञान की प्रगति के साथ-साथ मनुष्य की आवश्यकताऐं भी बढ़ी हैं। इन बढ़ती हुई आवश्यकताओं ने उत्पादन में वृद्धि तथा विशिष्टीकरण को जन्म दिया है।

अंग्रेजी भाषा के 'ऑर्गेनिज्म' शब्द से निकले 'ऑर्गेनाइजेशन' यानि संगठन का अर्थ, अंगों के ऐसे सम्बन्ध से है, जिसमें सब साथ मिलकर एक इकाई के रूप में कार्यों का सम्पादन करते हैं, जिसे संगठित प्रयोग अर्थात संगठन की संज्ञा दी जाती है। यह अपेक्षित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये विभिन्न व्यक्तियों की क्रियाओं को समन्वित करने की प्रक्रिया है। प्रशासन के विभिन्न कारकों, जैसे- श्रम, आवश्यकताएँ, प्रबन्ध के मध्य प्रभावपूर्ण सहकारिता स्थापित करने की कला को ही संगठन कहते हैं। अत: प्रशासन के विभिन्न प्रमुख कारकों का वैज्ञानिक सामंजस्य ही ''संगठन'' के रूप में जाना जाता है।

आधुनिक युग में संगठन प्रशासन का एक आवश्यक कार्य बन गया है, क्योंकि इसके बिना निर्धारित लक्ष्यों को पाना असम्भव है। प्रशासन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संगठन में काम करने वाले व्यक्ति मिल-जुलकर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करें।

संगठन के अन्तर्गत हम प्रशासन के सम्पूर्ण साधनों का सुव्यवस्थीकरण करते हैं। प्रत्येक प्रशासन का मुख्य दृष्टिकोण यह होता है कि वह अपने प्रशासन को इस प्रकार नियोजित करे कि उससे कार्यक्षमता, प्रभाविता और निष्पादन में अधिक से अधिक वृद्धि हो। दूसरे शब्दों में, किसी कार्य को योजनाबद्ध रूप से सम्पादित करना ही संगठन है।

ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार, ''संगठन शब्द का तात्पर्य किसी वस्तु की व्यवस्थित सरंचना बनाना है या किसी वस्तु के आकार को सुनिश्चित करके उसे कार्य करने की स्थिति में लाना है। इससे स्पष्ट होता है कि संगठन में तीन तत्व मिले हुए हैं- प्रथम, यह कार्य किसी निश्चित उद्देश्य की पूर्ति के लिए किया जाता है। द्वितीय, इसमें सहयोग की भावना होती है। तृतीय, इसमें व्यक्तियों के सहयोग द्वारा कार्य किया जाता है। इस प्रकार कार्यालय संगठन की परिभाषा उस प्रक्रिया के रूप में दी जा सकती है जिसके द्वारा कार्यालयों में विभिन्न पदों का संरचनात्मक ढाँचा इस प्रकार का बनाया जाता है कि वांछित लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके।

इसी क्रम में प्रशासकीय दृष्टि से संगठन शब्द का प्रयोग दो रूपों में होता है, पहले रूप में संगठन का तात्पर्य संगठन की सरंचना से है, जिसके द्वारा संगठन मूल रूप से ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जो औपचारिक सम्बन्धों द्वारा संस्था के उद्देश्यों की प्रप्ति के लिए साथ मिलकर कोशिश करते हैं तथा दूसरे रूप में संगठन का तात्पर्य किसी योजना के विभिन्न कार्यों को परिभाषित करने तथा उन्हें एक साथ विकसित करने के साथ-साथ उनके मध्य सम्बन्ध स्थापित करने वाली ऐसी प्रक्रिया से है। जिसके द्वारा यह निर्धारत किया जाता है कि लक्ष्य को पाने के लिए कौन-कौन से कार्य किए जाऐंगे। तथा इन कार्यों में लगे अधिकारियों एवं कर्मचारियों को कार्यों के सम्पादन के लिए जरूरी अधिकार और उत्तरदायित्व निर्धारत किये जाते हैं।

वस्तुतः संगठन एक ऐसी प्रक्रिया है, जो उत्पादन सम्बन्धी विभिन्न कड़ियों को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करती है। संगठन के द्वारा ही न्यूनतम साधनों से अधिकतम कार्य निष्पादन प्राप्त किया जा सकता है। उपरोक्त विवेचन के आधार पर हम संगठन के विकास के इतिहास को निम्न अवस्थाओं में विभाजित कर सकते हैं-

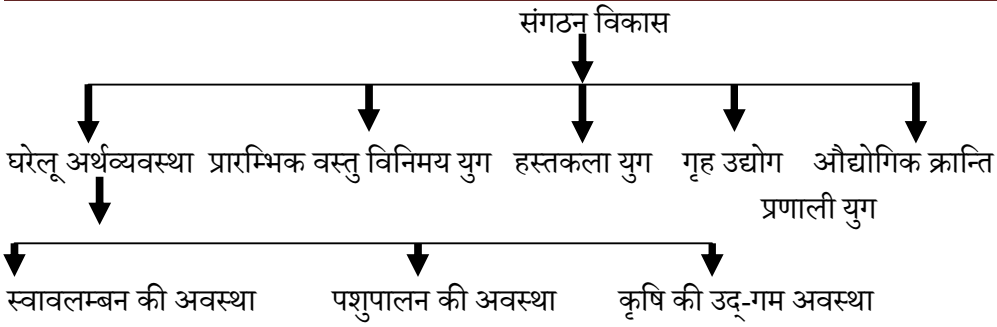

जैसा कि हम जान चुके हैं कि संगठन शब्द एक अत्यन्त विस्तृत शब्द है, अतः इसकी कोई सर्वमान्य परिभाषा देना कठिन है। विभिन्न विद्वानों ने संगठन शब्द की विभिन्न परिभाषाऐं दी हैं। इन्हें अध्ययन में सुविधा हेतु विभिन्न अवधारणाओं के अन्तर्गत वर्गीकृत किया गया है। आइऐ इन्हें विवेचित करने का प्रयास करें-

10.2.1 समूह अवधारणा

इस अवधारणा के अनुसार, संगठन मूल रूप से व्यक्तियों का समूह है, जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए मिलजुल कर कार्य करते हैं। अतः कोई भी संगठन उस समय अस्तित्व में आ जाता है, जब कुछ लोग एक साथ कार्य करने के लिए सहमत होते हैं। इस अवधारणा से जुड़े विद्वान-

1. इटजियोनि के अनुसार, संगठन विशिष्ट उद्देश्यों की प्रप्ति के लिए स्वेच्छा से निर्मित मानवीय समूह हैं।
2. मूने व रैले के अनुसार, संगठन सामान्य हितों की पूर्ति के लिए बनाया गया मनुष्यों का एक समुदाय है जो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के लिये कार्य करता है।

10.2.2 कार्यात्मक अवधारणा

कार्यात्मक अवधारणा के अनुसार, संगठन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है जो उत्पादन के विभिन्न साधनों का निर्धारित लक्ष्यों व सम्बन्धों की सरंचना हैं, जिसमें कर्मचारी कर्तव्यों और दायित्वों का निष्पादन करते है। संगठन सम्बन्धों की सरंचना करके क्रियाओं के क्षेत्र की रचना करता है। इस अवधारणा से जुड़े विद्वान-

1. ओलिवर शेल्डन के अनुसार, संगठन वह कार्यविधि है, जिसके द्वारा आवश्यक विभागों में व्यक्तियों या समूहों द्वारा किए जाने वाले कार्य को इस प्रकार संयोजित किया जाता है कि उसके द्वारा उपलब्ध प्रयत्नों को श्रृंखलाबद्ध करके कुशल, व्यवस्थित एवं समान्वित बनाया जा सके। इस प्रकार संगठन प्रबन्ध का वह यन्त्र है जो प्रशासन द्वारा नियत लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होता है।
2. प्रो0 हैने के अनुसार, किसी विशेष उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किसी वस्तु के भाग अथवा कार्य के विभिन्न साधनों को एकताबद्ध करके उनमें सहकारिता पैदा करना ही संगठन कहलाता है।

10.2.3 उद्देश्य अवधारणा

इस अवधारणा के अनुसार, प्रत्येक संस्था में संगठन की स्थापना निर्धारित उद्देश्यों और लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है। संगठन सदैव उद्देश्यों से सम्बन्धित होता है। इस अवधारणा से जुड़े विद्वान-

1. जी0 ई0 मिलबर्ड के अनुसार, कर्मचारियों और उनके कार्यों में एकीकरण व सामंजस्य स्थापित करने की क्रिया को संगठन कहते हैं।
2. विलियम आर0 स्प्रीगल के अनुसार, संगठन वास्तव में विभिन्न क्रियाओं तथा कारकों के बीच का सम्बन्ध हैं।

10.2.4 प्रक्रिया अवधारणा

प्रक्रिया अवधारणा के अनुसार, संगठन किसी उपक्रम के सदस्यों के बीच सम्बन्धों को स्थापित करने की प्रक्रिया है। सम्बन्धों की स्थापना सत्ता तथा दायित्व के रूप में स्थापित की जाती है। इस अवधारणा से जुड़े विद्वान-

1. कूण्ट्ज एवं ओ0 डोनैल के अनुसार, संगठन एक विधिसंगत एवं संभावित भूमिकाओं एवं अवस्थितियों की सरंचना है।
2. निओल तथा ब्राण्टन के अनुसार, संगठन अंशतः सरंचनात्मक सम्बन्धों का प्रश्न है तथा अंशतः मानवीय सम्बन्धों से सम्बन्धित है।

10.3 संगठन के उद्देश्य

उपर्यक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि संगठन एक ऐसी क्रिया है, जिसके द्वारा व्यवसाय से सम्बन्धित समस्त क्रियाओं में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। प्रशासनिक संगठन के सामान्यतः निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं। इन्हें क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें-

1. संगठन प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य है, जिसका उद्देश्य संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग करना हैं, इसीलिए यह कहा भी जाता है कि संगठन प्रशासन के उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक उपकरण है।
2. संगठन का प्रमुख उद्देश्य कर्मचारी एवं प्रशासन के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित करना है। एक अच्छे संगठन में सदैव यह प्रयास किया जाता है कि कर्मचारियों की समस्याओं का समाधान शीघ्रातिशीघ्र किया जाये। जिससे कि कर्मचारी एवं प्रशासनिक अधिकारियों के मध्य मधुर सम्बन्ध स्थापित हो।
3. संगठन का एक प्रमुख उद्देश्य योग्य एवं अनुभवी कर्मचारियों का चयन एवं प्रशिक्षण भी है। इसके साथ-साथ उन्हें संस्था में बनाये रखना भी एक प्रमुख उद्देश्य हैं।
4. संगठन का एक प्रमुख उद्देश्य बदलती हुई तकनीकी वातावरण को ध्यान में रखते हुये अपनी संगठन सरंचना में इस प्रकार सुधार करना है, जिससे उसकी प्रभावशीलता एवं कुशलता में अधिकतम वृद्धि की जा सके।
5. न्यूनतम प्रयास पर अधिकतम कार्य-निष्पादन प्राप्त करना ही संगठन का प्राथामिक उद्देश्य है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये प्रभावशाली संगठन-प्रणाली की सरंचना की जाती है।
6. एक अच्छे संगठन का प्रमुख उद्देश्य कर्मचारियों में मनोबल का विकास करना होता है, क्योंकि कर्मचारियों के मनोबल का सीधा सम्बन्ध कार्य-निस्पादन से होता है। कर्मचारियों के मनोबल ऊँचा होने से कार्य निस्पादन की मात्रा एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है।
7. आधुनिक युग में प्रत्येक संगठन का उद्देश्य अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का निर्वाह करना होता है। यह कार्य संगठन द्वारा अपने कर्मचारियों में सेवा-भावना की जागृति द्वारा ही सम्भव बनाया जा सकता है।
8. संगठन सदैव यह प्रयास करता है कि अधिकारियों व अधीनस्थों के मध्य अधिकार और दायित्व सम्बन्धों की अनुकूल स्थापना की जाये, जिससे सम्प्रेषण व्यवस्था को प्रभावी बनाया जा सके तथा आदेश-निर्देशों में एकता स्थापित कर कर्मचारी प्रशासक तथा जनता के मध्य सहयोग और सद्-भाव की स्थापना की जा सके।

यह अत्यन्त ही गम्भीर प्रश्न है कि प्रशासन द्वारा कितने अधीनस्थों को प्रबन्धित किया जा सकता है। इस हेतु प्रबन्धकीय, संगठनात्मक और कार्य सम्बन्धित अनेक कारकों को ध्यान में रखना पड़ता है। इनका वर्गीकरण कर, यह समझने का प्रयास करें कि ये कैसे संगठन पर अपना प्रभाव डालते हैं?

- **लक्ष्य-** संगठन साधन है न कि साध्य, यह उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति का एक साधन है, संगठन लक्ष्य अभिमुखी प्रणाली है। अतः संगठन का निर्माण करते समय इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि जो संगठन हम तैयार कर रहे हैं, वह प्रशासन के लक्ष्यों को पूरा करने में किस सीमा तक सक्षम होगा।
- **तकनीकी-** तकनीकी, कार्य निष्पादन के तरीके को दर्शाती है। तकनीकी की प्रकृति के आधार पर संगठन की सरंचना करनी चाहिए। यदि तकनीकी सरल एवं सामान्य प्रकृति की है तो सरंचना का प्रारूप कम जटिल होगा। इस प्रकार तकनीकी, संगठन सरंचना को प्रभावित करती है।
- **कर्मचारियों की योग्यता-** संस्था में कार्यरत कर्मचारियों की योग्यता भी संगठन को प्रभावित करती है। अधिकारों के विकेन्द्रीकरण एवं कार्यों का बंटवारा करते समय अधीनस्थ कर्मचारियों की योग्यताओं को भी ध्यान में रखना आवश्यक होता है, जिससे लोग उस सरंचना में स्वयं को उपयुक्त महसूस करें और वे उसके साथ समायोजित हो सकें।
- **उपक्रम का आकार-** संगठन की सरंचना प्रशासन के क्षेत्र पर भी निर्भर करती है। प्रशासन का क्षेत्र बड़ा होने पर विशिष्टीकरण तथा विकेन्द्रीकरण पर ध्यान दिया जा सकता है। क्षेत्र के बड़ा होने पर अधिकारों के केन्द्रीकरण एवं 'आदेश की एकता' को ध्यान में रखा जाता है।
- **प्रशासकीय दृष्टिकोण-** संगठन का कार्य प्रशासक करते हैं, अतः उनका दृष्टिकोण भी संगठन को प्रभावित करता है।
- **वातावरण-** अनेक बड़े संगठन जटिल, गतिशील और अशांतमय वातावरण में काम करते हैं। सरंचनात्मक स्तरों पर प्रत्यक्ष रूप से वातावरणीय कारकों का अनुभव किया जाता है। संगठन की सरंचना राजनैतिक, आर्थिक व सामाजिक वातावरण को दृष्टिगत रखते हुए की जानी चाहिए, क्योंकि वातावरण भी संगठन को प्रभावित करता है। अतः संगठन की सरंचना करते समय बाहरी तथा आन्तरिक दोनों प्रकार के वातावरण का विशेष ध्यान रखना चाहिए।

संगठन की सफलता अथवा असफलता इसके द्वारा प्राप्त परिणामों से ही ज्ञात की जा सकती है। संगठन की सफलता के लिए आवश्यक है कि इसकी रचना कुछ सिद्धान्तों के आधार पर की जाये। जो संगठन के अभीष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति में पूर्णतः सक्षम हो संगठन को कुशल व सुदृढ़ बनाने हेतु विभिन्न विद्वानों ने संगठन के सिद्धान्त प्रतिपादित किये हैं।

10.4 संगठन के सिद्धान्त

उत्तरदायित्व, समन्वय, उद्देश्य, विशिष्टीकरण, पदसोपान, अनुरूपता, व्याख्या, विस्तार, नियंत्रण एक सुदृढ़ संगठन में उपरोक्त सभी महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का पालन किया जाना उपक्रम के अन्तिम उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक माना जाता है। इस प्रकार एक प्रभावी संगठन निम्नलिखित प्रकार से एक प्रशासन की सफलता में अपनी भूमिका का निर्वहन करता है-

1. संगठन ऐसा ढ़ाँचा प्रदान करता है, जिससे प्रशासन अपने प्राथमिक व द्वितीयक कार्य प्रभावपूर्ण ढंग से करने में समर्थ होता है। विभिन्न कार्यों को संघिटत करके एक कार्यप्रणाली का रूप दिया जाता है। यह कार्य अधिकारियों व उनके अधीनस्थ कर्मचारियों के बीच सुनिश्चित संबंधों के द्वारा, अधिकार प्रत्योजन के द्वारा प्रशासन के कार्मिकों की जिम्मेदारी निश्चित करके किया जाता है।
2. यह प्रशासन से सम्बन्धित कर्मचारियों को पहल करने और रचनात्मक कार्यों के लिये प्रेरित करता है।

3. यह मानवीय संसाधनों, नियमों और उत्तरदायित्वों का अनुकूलतम उपयोग एवं समन्वय सुनिश्चित करता है।
4. यह प्रशासन के कार्यों में प्रगति के अवसर को स्थायित्व प्रदान करता है।
5. उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संगठन को अति सुविधाजनक बनाया जाता है। इसके लिए उपक्रम के कार्यों का समूहीकरण इस प्रकार किया जाता है जिससे क्रिया, परामर्श तथा समन्वय तीनों सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्ध तरीके से सम्पन्न हो सके।
6. संगठन की योजना में कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों तथा सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिए।
7. एक प्रभावी संगठन में दिया जाने वाला नेतृत्व परम्परागत और प्रभावहीन न होकर गत्यात्मक और प्रभावशाली होना चाहिए।
8. एक आदर्श संगठन के विभिन्न विभागों के बीच प्रभावी संतुलन बनाये रखा जाना चाहिए।

अब तक आपने संगठन की अवधारणा को भली-भाँति समझ लिया होगा। अध्ययन को पूर्णता प्रदान करने के लिये संगठन और प्रशासन में क्या अन्तर है? इसे भी जानना आवश्यक है। इसे समझने का प्रयास करें, सामान्यतः संगठन और प्रशासन को बिल्कुल एक समझ लिया जाता है जो सही नहीं है।

- बिना संगठन के प्रशासन निराधार, निरंकुश हो जाता है तथा इसके अभाव में किसी प्रकार का कार्य सम्भव नहीं हो सकता है। संगठन और प्रशासन के मध्य अन्तर को स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि जहाँ निश्चित एवं निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु संगठित क्रियाओं का योग प्रशासन है, वहीं व्यक्ति समूह, क्रियाओं आदि की नियोजित व्यवस्था संगठन है।
- दूसरी ओर, प्रशासन को निश्चित एवं निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु माध्यम कहा जा सकता है। जबकि संगठन को प्रशासनिक माध्यम का आधार कहा जा सकता है। इस प्रकार संगठन और प्रशासन को सम्बद्ध तो माना जा सकता है, पर यह कहना उचित होगा कि दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

10.5 संगठन का महत्व

यद्यपि संगठन का अस्तित्व कई युगों पूर्व हो चुका था, किन्तु प्रारम्भिक अवस्था में इसका समाज में कोई महत्व नहीं था। हाँ, आधुनिक युग में इसका महत्व दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है और इसी कारण वर्तमान समाज को संगठनात्मक समाज की संज्ञा दी जा रही है। परिवार को समाज में सबसे पहला संगठन कहा जाता है, उसके बाद समय के साथ-साथ तरह-तरह के संगठन बनते रहे हैं। देश के प्रशासन को चलाने के लिये संगठन अनिवार्य होते हैं। सरकार जब भी कोई नया कार्य हाथ में लेती है तो सरकारी संगठनों की स्थापना की जाती है। संगठन वास्तव में एक ढाँचा है, जिसके जारिए लक्ष्यों की प्राप्त के लिए जनशाक्ति, सामग्री और धन का अनुकूलतम उपयोग एवं समन्वय किया जाता है।

संगठन का उद्देश्य मानवीय तथा भौतिक साधनों पर नियन्त्रण करना है। व्यक्तियों तथा वर्गों के मध्य कार्य-विभाजन तथा विशिष्टीकरण होने के कारण संगठन किसी भी वर्गीय क्रिया का अनिवार्य लक्षण है। जब किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये विभिन्न व्यक्ति एक साथ मिलते हैं तो उनके कार्य में किसी न किसी प्रकार का विशेषीकरण अनिवार्य हो जाता है।

श्रम-विभाजन के रूप में की जाने वाली वर्गीय क्रिया के समुचित रूप प्रदान करने के लिये संगठन की स्थापना की जाती है। संगठन किस ढंग से काम करेगा, यह इस बात पर निर्भर करता है कि नीतियाँ और योजनाऐं कैसे बनाई जाती हैं और उन्हें कैसे लागू किया जाता है? संगठन में सर्वोच्च प्रशासक वर्ग नीति निर्धारण करता है। मध्य

प्रशासकीय वर्ग योजनाऐं और कार्यक्रम बनाता है और नीचे के अधिकारी तथा कर्मचारी उन पर वास्तविक क्रियान्यवयन करते हैं।

जबकि हम जानते हैं कि हजारों वर्षों से ही समाज में संगठन मौजूद है, किन्तु समय के साथ-साथ संगठनों का रूप बदलता गया और आज तो अनेक प्रकार के संगठन मौजूद हैं। संगठन में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या के आधार पर उन्हें बड़ा या छोटा कहा जा सकता है। एक कर्मचारी वाला संगठन छोटा संगठन है और लाखों कर्मचारियों वाला दूरदर्शन एक बड़ा संगठन है।

संगठन स्वयं में कोई साध्य नहीं है, यह तो मात्र साध्य की प्राप्ति का साधन है। कुशल एवं सुदृढ़ संगठन पर ही प्रभावशाली प्रबन्ध निर्भर करता है। संगठन ही प्रशासन को सफलता की ओर अग्रसर करा सकता है। वास्तव में यदि संगठन को प्रबन्ध की आधारशिला कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। यदि संगठन से सम्बन्धित नियोजन में किसी प्रकार का दोष रह जाता है तो प्रबन्ध का कार्य कठिन एवं प्रभावहीन हो जाता है। इसके ठीक विपरीत, एक नियोजित एवं सुदृढ़ संगठन, स्वस्थ्य संगठन की नींव डालता है।

वास्तुतः संगठन में मूलतः उसका ढाँचा, उसमें कार्यरत व्यक्तियों के बीच की कार्यशील व्यवस्था और उनके परस्पर सम्बन्ध शामिल होते हैं। वर्तमान परिवेश में व्यक्ति के जीवन और संगठन के बीच अटूट सम्बन्ध हैं, भले ही संगठन सार्वजानिक हो या निजी। व्यक्तियों के बिना संगठन की और संगठन के बिना व्यक्तियों की कल्पना करना कठिन है। वास्तव में व्यक्ति संगठनों में काम करता है, उनसे लाभ उठाता है और प्रभावित भी होता है। इससे उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है तथा अनेक श्रम समस्याओं का समाधान होता है।

कुशल संगठन के अन्तर्गत कार्य को विभिन्न भागों एवं समूहों में बाँटकर कर्मचारियों की योग्यतानुसार उनमें बाँट दिया जाता है। योग्यता एवं रूचि के अनुसार कार्य मिलने पर कर्मचारी उसे अधिक मन लगाकर करता है तथा अधिक वैज्ञनिक ढंग से कार्य के लिये अपने विचार प्रस्तुत करता है, जिससे कार्य निष्पादन सम्भव हो पाता है।

पीटर एफ0 ड्रकर ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि आदर्श संगठन वह है जो सामान्य व्यक्तियों को असामान्य कार्य करने में सहायता करता है। संगठन को कई विभागों, शाखाओं, उप-विभागों आदि में बाँटा जाता है, जिससे उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु संगठन को अत्यन्त सुविधाजनक किया जाता है। इसी क्रम में एल0 डी0 व्हाइट जैसे विद्वान कहते हैं कि आज का व्यक्ति अपने व्यक्तित्व से कम और संगठन से ज्यादा पहचान जा रहा है, क्योंकि आज व्यक्ति ''संगठन मानव'' बन गया है। वास्तव में आज हम व्यक्ति को उसके संगठन के सदस्य के रूप में पहचानते हैं। आज व्यक्ति ही नहीं, बल्कि समाज में भी संगठन की व्यापक पहुँच हो गई है।

किसी भी संगठन की सफलता एवं असफलता इसके द्वारा प्रस्तुत कार्य निष्पादन एवं अन्तिम परिणामों से की जा सकती है। यदि निर्धारित लक्ष्य एवं उद्देश्य प्राप्त होते हैं तो संगठन मजबूत एवं सक्षम है और यदि वे प्राप्त नहीं होते हैं तो उसका तात्पर्य यह है कि संगठन में कहीं त्रुटि एवं कमी रह गयी है। संगठन के योजना में कर्तव्यों, उत्तरदायित्वों तथा सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या होनी चाहिये।

प्रत्येक अधिकारी को अपने कार्यक्षेत्र, उसकी सीमाओं, कार्य निर्देशन का क्षेत्र आदि के सम्बन्ध में स्पष्ट जानकारी होनी चाहिये। अतः संगठन में यह भी आवश्यक है कि उसमें विकास एवं विस्तार करना सम्भव हो सके। यही नहीं उनमें परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन की भी व्यवस्था होनी चाहिये। इस प्रकार सफल प्रशासन हेतु सुव्यवस्थित, समन्वयपूर्ण एवं प्रभावी संगठन एक आधारभूत आवश्यकता है। अब यह जानने का प्रयास करें कि प्रशासन क्यों आवश्यक है? इस सन्दर्भ में निम्नलिखित बिन्दुओं को क्रमबद्ध किया जा सकता है-

1. संगठन से प्रशासन में विशिष्टीकरण को बढ़ावा मिलता है। श्रेष्ठ संगठन के अन्तर्गत ही विशेषज्ञों की नियुक्ति की जा सकती है जो प्रशासन के विभिन्न कार्यों से सम्बद्ध किये जाते हैं।

2. आधुनिक युग में प्रत्येक प्रशासन को अपनी क्रियाओं का विकास व विस्तार करना पड़ता है। यह कार्य संगठन द्वारा ही सम्भव होता है।
3. संगठन प्रशासन की विभिन्न क्रियाओं को आनुपतिक एवं सन्तुलित महत्व प्रदान करता है।
4. संगठन सम्बन्धी रचना से विभिन्न विभागों, उपविभागों, स्थितियों, कार्यों तथा क्रियाओं के मध्य समन्वय स्थापित किया जाता है। स्वस्थ संगठन समन्वय को सुविधाजनक बनाता है, जिससे मानवीय प्रसाधनों का श्रेष्ठतम उपयोग सम्भव हो जाता है।
5. स्वस्थ संगठन भ्रष्टाचार को रोकता है, जिससे कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा उठता है।
6. संगठन द्वारा कार्यभार, अधिकार, दायित्व तथा विभागीय प्रयासों में सन्तुलन की स्थापना की जाती है। परिणामतः कर्मचारियों में सहयोग व सहभागिता की भावना पनपती है।
7. एक श्रेष्ठ संगठन में अधिकारों का प्रत्यायोजन अत्यन्त सुव्यवस्थित ढंग से किया जा सकता है।
8. संगठन किसी उपक्रम के विकास एवं विस्तार में पर्याप्त सहायता प्रदान करता है।
9. एक प्रभावी संगठन नवीन शोध एवं अनुसंधानों के कारण विकसित हुए तकनीकी सुधारों का नवीनतम उपयोग किया जाना सम्भव बनाते हैं।
10. श्रेष्ठ संगठन संरचना से पूर्व निश्चित सम्बन्धों के कारण सन्देशों का सुव्यवस्थित आदान-प्रदान कर संचार को प्रभावी बनाता है।

10.6 संगठन के प्रकार

संगठन की प्रकृति, उद्देश्य निर्माण पद्धति, कार्य एवं अन्य आधार तत्वों को ध्यान में रखते हुए, विद्वान प्रायः इसे दो भागों में विभाजित करते हैं- औपचारिक संगठन और अनौपचारिक संगठन।

10.6.1 औपचारिक संगठन

जब किसी संगठन में कार्य करने वाले को कार्य-क्षेत्र तथा उनकी स्थिति को निश्चित करके कर्तव्यों, अधिकारों, दायित्वों व पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या कर दी जाये तो सम्बन्धों के ऐसे स्वरूप को ''औपचारिक संगठन'' की संज्ञा जाती है। अतः औपचारिक संगठन में अमूर्त और बहुत कुछ स्थाई नियमों का समावेश होता है। जो प्रत्येक सहभागी के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। ऐसे संगठन में प्रत्येक व्यक्ति को एक निश्चित विधि से नियमों का पालन करते हुए कार्य करना पड़ता है।

दूसरे शब्दों में, व्यवस्थित व नियोजित ढंग से निर्मित संगठन जिसमें स्थिति, अधिकार एवं उत्तरदायित्वों की स्पष्टता होती है, औपचारिक कहा जाता है। यहाँ अधिकार उच्च से निम्न स्तर को प्रदान होता है और पूरे संगठन की सरंचना संस्था के उद्देश्यों को पाने का समन्वित प्रयास करती है। इस सबंध में विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित ढंग से अपने विचारों को प्रकट किया है। आइऐ इन्हें विश्लेषित करनें का प्रयास करें-

बर्नार्ड के अनुसार, ''जब दो या दो से अधिक व्यक्तियों की क्रियाएँ एक दिए हुए उद्देश्य की तरफ समन्वित की जाती है, तब औपचारिक संगठन का निर्माण होता है। दूसरे शब्दों में औपचारिक संगठन के अन्दर सम्मिलित कार्यविधि नीतियाँ तथा नियम यह दर्शाते हैं कि किसी के कार्य को प्रभावी एवं सुव्यवस्थित ढंग से पूरा करने के लिए एक व्यक्ति का दूसरे के साथ क्या सम्बन्ध होगा? यह मानवीय संगठन तथा तकनीकी पक्षों के बीच अपेक्षित सम्बन्धों को निर्धारित करता है।

साइमन, स्मिथबर्ग तथा थॉम्पसन के अनुसार, ''औपचारिक संगठन वह है, जिसमें व्यवहार तथा सम्बन्धों को जानबूझकर औचित्य के आधार पर संगठन के सदस्यों के लिए योजनाबद्ध कर दिया जाता है।''

न्यूमैन के अनुसार, ''जब किसी संगठन के दो या दो से अधिक व्यक्तियों की क्रियाओं को किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चेतनापूर्वक सम्बन्धित किया जाता है, तो ऐसा संगठन औपचारिक संगठन कहलाता है।''

रैले के अनुसार, ''औपचारिक संगठन से तात्पर्य मानवीय अन्तर-सम्बन्धों के ढंग से है, जिसकी व्याख्या प्रभावित नियमों तथा अर्थव्यवस्था के संबंधों द्वारा की जाती है।''

एलन के अनुसार, औपचारिक संगठन सीमाएँ, दिशा-निर्देश और नियम बनाते हैं, जिनका पालन करना आवश्यक होता है। वे ऐसा बुनियादी ढाँचा सुलभ कराते हैं, जिसके जारिए सरकार या कोई और उद्यम कार्य करता है।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के पश्चात यह कहा जा सकता है कि संगठन का विकास करते समय विद्वानों ने औपचारिक संगठन की भूमिका पर भी गहराई से अध्ययन किया है। वस्तुतः औपचारिक संगठन पूर्व नियोजित रणनीति के अनुसार सोच-समझ कर बनाये जाते हैं, जिन्हें उच्च अधिकरियों की सहमति प्राप्त होती है। इसे एक उदाहरण द्वारा आरेख के माध्यम से प्रदर्शित करें-

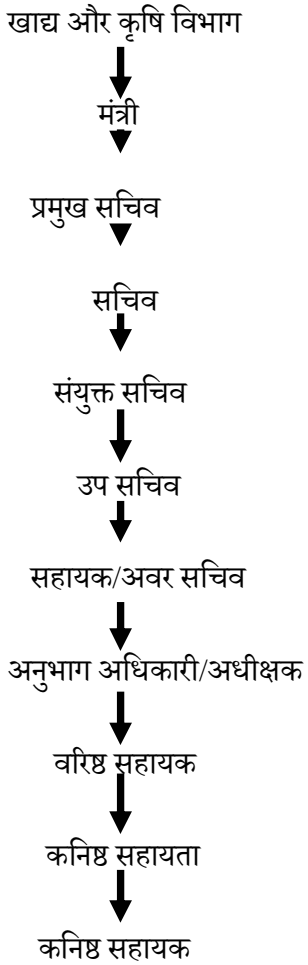

उपरोक्त आरेख उत्तराखण्ड सरकार के उच्च शिक्षा मंत्रालय के संगठनात्मक संरचना को पदसोपान के सिद्धान्तानुसार प्रदर्शित करता है। इसमें शीर्ष पर मंत्री जी तथा निम्न स्थिति पर कनिष्ठ सहायकगण होते हैं। यह एक आदर्श स्थिति है, जिसमें परिवर्तन सम्भव होता है। अब तक के विश्लेषणोरान्त हम औपचारिक संगठन की निम्नलिखित विशेषताओं को निरूपित कर सकते हैं। इन्हें क्रमवार समझने का प्रयास करें-

- औपचारिक संगठन की प्रकृति अवैयक्तिक होती है।

- इसका निर्माण पूर्व निर्धारित, पूर्व नियोजित होता है।
- औपचारिक संगठन की स्थापना स्वेच्छा से उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु किया जाता है।
- इसमें 'आदेश की एकता' का पालन होता है।
- इनमें सभी स्तरों पर स्थिति, अधिकार एवं उत्तरदायित्वों को परिभाषित करके उनकी व्याख्या की जाती है। दूसरे शब्दों में, इसमें प्रत्येक अधिकारी के अधिकार, कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों की स्पष्ट व्याख्या की जाती है और उनकी सीमाएं निर्धारित कर दी जाती हैं।
- अधिकार एवं दायित्वों की स्पष्ट व्याख्या में चार्ट एवं मैन्युअल का प्रयोग किया जाता है।
- यह पूर्णतः श्रम विभाजन के सिद्धान्त पर आधारित होता है।
- इसमें सभी व्यक्ति आपस में मिलकर कार्य करते हैं।
- यह प्रदत्त विधायन सिद्धान्त पर आधारित होता है।

जैसा कि हम जानते हैं कि जब प्रशासनिक संगठन में काम करने वाले व्यक्तियों के कार्य-क्षेत्र तथा उनकी स्थिति को निश्चित करके उनके अधिकारों, दायित्वों व पारस्परिक सम्बन्धों की स्पष्ट व्याख्या कर दी जाय तो संगठन औपचारिक प्रकृति का हो जाता है। विचार को रोकने औपचारिक संगठन को पुनः विभिन्न प्रकारों में विभाजित किया है। इसे आरेख के माध्यम से प्रदर्शित कर समझने का प्रयास करें-

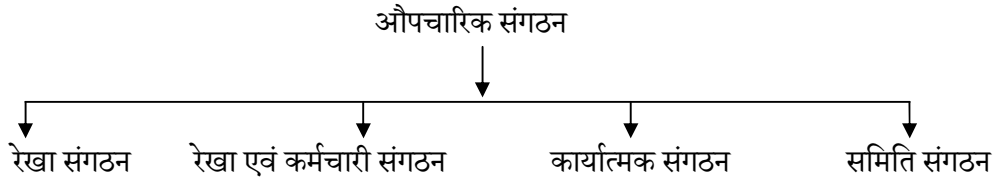

- रेखा संगठन और औपचारिक संगठन का प्रथम भेद जिसमें प्रत्यक्ष शीर्ष रेखा सम्बन्ध होता है, यह प्रत्येक स्तर की स्थिति एवं कार्यों से ऊपर तथा नीचे के स्तर से सम्बन्ध स्थापित करता है।
- रेखा संगठन और कर्मचारी संगठन के इस भेद के सन्दर्भ में लुईस ए0 एलन के अनुसार, रेखा से तात्पर्य संस्था के उन पदों तथा तत्वों से है, जो संगठन के उद्देश्यों को पूर्ण करने हेतु उत्तरदायी होते हैं। सहायक का आशय उन पदों तथा तत्वों से है जो लाइन अधिकारी को अपने उद्देश्यों को पूरा करने हेतु आवश्यक परामर्श व सहायता उपलब्ध करते हैं।
- कार्यात्मक संगठन में प्रशासन का नियंत्रण इस प्रकार होता है कि प्रत्येक व्यक्ति को कम कार्य करना पड़े। अतः उसका कार्य छोटे-छोटे उप-कार्यों में विभाजित कर दिया जाता है।
- सीमित संगठन, इस प्रकार के संगठन में संगठन के कार्यों को विभिन्न विभागों में विभक्त कर दिया जाता है, परन्तु किसी भी विभागाध्यक्ष को परामर्श के बिना निर्णय लेने का अधिकार नहीं होता है। सभी विभागाध्यक्षों की समिति का प्रधान महाप्रबन्धक कहलाता है।

इस प्रकार औपचारिक संगठन उपरोक्त के माध्यम से प्रशासकीय कार्यों को उनके अन्तिम स्वरूप तक पहुँचता है। अतः औपचारिक संगठन को लाभप्रद संगठन माना जाता है। हेन्स तथा मेसी ने इसके कई लाभों को क्रमबद्ध किया है। इनमें से कुछ को समझने का प्रयास करते हैं-

- इसके अन्दर किसी कार्य की पुनरावृत्ति सम्भव नहीं होती है।

- इसमें उत्तरदायित्व में अन्तर बहुत कम होता है।
- इसमें कार्यों के सम्पादन में टाल-मटोल की सम्भावना बहुत कम होती है।
- इसके अन्दर सुरक्षा की भावना प्रधान होती है।
- इसके द्वारा उद्देश्यों की प्राप्ति सुविधाजनक होती है।
- इसमें पक्षपात के अवसर पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं।

जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलू होते हैं, ठीक उसी प्रकार एक ओर तो औपचारिक संगठन के अनगिनत लाभ हैं, किन्तु इसके दोषों की भी गिनती कम नहीं है। इसके प्रमुख दोषों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है-

- इस संगठन में समन्वय की समस्या सदैव उपस्थित रहती है।
- इसके द्वारा पहल करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। कार्य एक-दूसरे को स्थानान्तरित करने का प्रयास किया जाता है।
- प्रायः अधिकारी अपने अधिकारों का प्रयोग अपने फायदे के लिए करते हैं, जिससे भ्रष्टाचार को बढ़ावा मिलता है।
- यन्त्रवत होने के कारण ऐसे संगठन में मनुष्य से ज्यादा नियम और नीति प्रधान होते हैं।

इस प्रकार औपचारिक संगठन लाभ और हानि के वातावरण में नीचे से ऊपर की ओर या ऊपर से नीचे की ओर एक व्यवस्थित क्रम में व्यवस्थित रहते हैं, जिसे पदसोपानिक व्यवस्थित क्रम कहा जाता है। इस तथ्य का भी स्मरण रखना चाहिए कि औपचारिक संगठन बहुत से छोटे-छोटे संगठनों से मिलकर निर्मित होता है। बिना छोटे संगठनों को आत्मसात किये बड़ा संगठन बनना असम्भव होता है।

वस्तुतः औपचारिक संगठन के अन्तर्गत वे सभी उप-संगठन आते हैं। जिनके सभी अवयव, लाइन एवं स्टाफ के आधार पर पदसोपनिक क्रम में व्यवस्थित होते हैं, तथा जिसमें काफी तादाद में कर्मचारियों को रोजगार प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त औपचारिक संगठन संवैधानिक कानून से जकड़े हुए होते हैं, जिनके उल्लंघन पर कठोर दंण्ड का प्रावधान होता है।

10.6.2 अनौपचारिक संगठन

संगठन के अनौपचारिक विचार के मुख्य प्रवर्तक एल्टन मेयो है, जिन्होंने 'वेस्टर्न इलेक्ट्रानिक कम्पनी' के हाथोर्न संयन्त्र के विषय में कुछ प्रयोगों के बाद पाया कि कुछ व्यक्तियों के अधिक समय तक एक साथ मिलकर कार्य करने के कारण उनमें औपचारिक सम्बन्ध से विपरीत सम्बन्ध विकसित हो गये हैं। जिसे उन्होंने अनौपचारिक संगठन कह कर सम्बोधित किया।

अनौपचारिक संगठन उस संगठन को कहते हैं, जिनका निर्माण व्यवस्थित एवं नियोजित रूप में नहीं होता है, बल्कि इसका निर्माण स्वयं में हो जाता है। इन्हें सामाजिक मनोवैज्ञानिक संगठन भी कहा जाता है।

दूसरे शब्दों में यदि कर्मचारियों के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिय किसी प्रकार की औपचारिकता नहीं बरती जाये, तो उसे अनौपचारिक संगठन कहा जायेगा। एक संगठन उस दशा में अनौपचारिक कहा जाता है, जबकि अन्तर व्यैक्तिक सम्बन्धों की स्थापना संयुक्त उद्देश्यों के लिए अनजाने में ही विकसित हो जाती है। अतः अनौपचारिक संगठन ऐसी प्रक्रिया है, जिसमें व्यक्ति निरन्तर एक-दूसरे से अन्तः सम्पर्क करते हैं।

अनौपचारिक संगठनों को अक्सर प्रतिरूप संगठन और औपचारिक संगठनों का 'छाया संगठन' माना जाता है। उनकी कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है और ऐसा करना बहुत कठिन भी है। उसके कोई निश्चित संगठनात्मक लक्ष्य भी नहीं होते। सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध भी निश्चित नहीं होते। स्वतः स्फूर्त, गैर-सरकारी और आकारहीन सम्बन्धों से अनुकूल भावनाऐं उत्पन्न होती हैं, जिनसें परस्पर सम्पर्क बढ़ता है और जान-पहचान के बंधन मजबूत होते हैं।
लक्ष्यों के अभाव और आकारहीन सम्बन्धों के कारण अनौपचारिक संगठनों में औपचारिक व्यवस्था के कानून-कायदों का आभाव पाया जाता है। विभिन्न विचारकों ने इस सम्बन्ध में अनेक मत प्रस्तुत किये हैं। जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण विचार निम्नलिखित हैं-

1. बर्नार्ड के मतानुसार, एक संगठन, उस समय अनौपचारिक माना जाता है, जब अर्न्तवैयक्तिक सम्बन्धों का समूह संयुक्त उद्देश्य के लिए अनजाने में स्थापित हो जाता है।
2. प्रो0 डेविस के मतानुसार, अनौपचारिक संगठन ऐसे व्यक्तिगत तथा सामाजिक सम्बन्धों का जाल है, जिसकी स्थापना औपचारिक संगठन द्वारा नहीं की जाती है।
3. साइमन के मतानुसार, अनौपचारिक संगठन का अर्थ संगठन में अर्न्तर्वेयक्तिक सम्बन्धों का होना है, जो उसके अन्दरूनी फैसलों को प्रभावित करते हैं।
4. एल0 डी0 व्हाइट के मतानुसार, अनौपचारिक संगठन ऐसे कार्यात्मक सम्बन्ध है, जो लम्बे समय तक एक साथ कार्य करने वाले लोगों की आपसी अन्तः क्रियाओं के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं।

उपरोक्त मतों के सुव्यवस्थित विश्लेषण के अनुसार हम अनौपचारिक संगठन की निम्नलिखित विशेषताओं का निरूपण कर क्रमबद्ध अध्ययन कर सकते हैं-

- अनौपचारिक संगठन का निर्माण स्वतः होता है। प्रायः इनका निर्माण निजी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु किया जाता है।
- अनौपचारिक संगठन, औपचारिक संगठन का पूरक होता है।
- इसका विकास आपसी सम्बन्धों, रीति-रिवाजों और सामूहिक समूहों के द्वारा होता है। इसके नियम एवं पद्धतियां अलिखित होती हैं।
- अनौपचारिक संगठन को चार्ट या मैन्युअल के द्वारा प्रदर्शित नहीं किया जाता है।
- ये सामाजिक संगठन होते हैं। इसमें मनुष्य की इच्छा, आकांक्षा, पसन्द और नापसन्द का पूर्व ध्यान रखा जाता है, क्योंकि यह मान्यता है कि संगठन निर्माण में मनुष्य की सशक्त भूमिका होती है, जिससे सामाजिक संतुष्टि मिलती है।
- यह सम्पूर्ण संगठन का एक आंतरिक भाग होता है।
- यह प्रबन्ध के सभी स्तरों पर पाया जाता है।
- यह पदों की क्रमता से पूर्ण रूप से मुक्त होता है।

अभी तक हम औपचारिक तथा अनौपचारिक दोनों प्रकार के संगठन का विस्तार से अध्ययन कर चुके हैं किन्तु यह अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक इनके मध्य अन्तरों को आत्मसात न कर लिया जाये।

अभ्यास प्रश्न-

1. 'संगठन' शब्द का वास्तविक अर्थ क्या है?
2. किस विद्वान के अनुसार 'संगठन, विशिष्ट उद्देश्यों की प्रप्ति के लिये स्वेच्छा से निर्मित मानवीय समूह हैं।'

3. किस विद्वान के अनुसार 'संगठन, कर्मचारियों और उनके कार्यों में एकीकरण व सामंजस्य स्थापित करने की क्रिया है।'
4. औपचारिक संगठन के कितने उप-भाग होते हैं?
5. किस विद्वान के अनुसार 'अनौपचारिक संगठन ऐसे व्यक्तिगत तथा सामाजिक सम्बन्धों का जाल है, जिसकी स्थापना औपचारिक संगठन द्वारा नहीं की जाती है।'

10.7 सारांश

लोक प्रशासन विषय के अन्तर्गत संगठन को सम्भवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण व गम्भीर अवधारणा के रूप में पहचाना जाता है, क्योंकि संगठन की अवधारणा को स्पष्ट रूप से समझने के पश्चात ही लोक प्रशासन के अन्य सिद्धान्तों तथा अवधारणाओं को आत्मसात किया जा सकता है।

आधुनिक युग में संगठन प्रशासन का एक आवश्यक कार्य बन गया है, क्योंकि इसके बिना निर्धारित लक्ष्यों को पाना असम्भव है। प्रशासन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संगठन में काम करने वाले व्यक्ति मिल-जुलकर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करें। संगठन को क्रमशः दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, यथा- औपचारिक तथा अनौपचारिक।

10.8 शब्दावली

अधिकार- आदेश देने की शक्ति तथा यह निश्चित कर लेना कि इन आदेशों का पालन किया जा रहा है।

केन्द्रीकरण- वह बिंदु अथवा स्तर जहाँ सभी निर्णय लेने वाले अधिकार केन्द्रित रहते हैं।

नियंत्रण- अधीनस्थों के कार्यों का मापन तथा सुधार जिससे यह आश्वस्त हो सके कि कार्य नियोजन के अनुसार किया गया है।

प्रशासन- नियमों तथा कानूनों के अन्तर्गत प्रकार्यों को सुनिश्चित करने वाली संस्था।

पदसोपान- संगठन में उच्चतम शिखर से निम्नतम तथा निम्नतम से उच्चतम शिखर तक पदों, कर्तव्यों तथा अधिकारों की व्यवस्था।

समन्वयात्मक- कार्य विशेष/संगठन से सम्बन्धित समस्त तत्वों के मध्य सामन्जस्य, जिससे पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।

10.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. व्यवस्थित संरचना, **2.** इटजियोनि, **3.** मिलबर्ड, **4.** चार, **5.** प्रो0 डेविस

10.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Arora, Ramesh k, 1972 Comparative Public Administration : An Ecological Approach: Adociate Publishing House: New Delhi.
2. Bhattacharya, Mohit, 1987 Publi Administration " The World Press Private Ltd: Calcutta.
3. Prasad, Ravindra D. Etc. al 9eds.) 1989 Administrative thinkers:Sterling Publishers : New Delhi.

10.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Riggs, Fres W., 1961. The Ecolgy of Public Administration : Asia Publishing House : New Delhi.
2. चतुर्वेदी, त्रिलोक नाथ, 1989 तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली।

3. Gulick L. and Urwick L. (rds.) 1937 Papers on Science of Administeation ; The Institute of Public Adminisration ; Columbia Unviersity : New York

10.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. भारत में संगठन विकास के विभिन्न कालक्रमों को विस्तार से समझाइये।
2. क्या संगठन को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिये सिद्धान्तों की आवश्यकता है? इसके विभिन्न सिद्धान्तों को अपने शब्दों में समझाइये।
3. संगठन का सर्वप्रथम उद्देश्य क्या होना चाहिए?
4. औपचारिक संगठन तथा अनौपचारिक संगठनों के मध्य अन्तर को समझाइये।
5. औपचारिक संगठन के विभिन्न उपसंगठनों को समझाते हुए उनके महत्व को रेखांकित करिये।

इकाई-11 संगठन की विचारधाराऐं

इकाई की संरचना

11.0 प्रस्तावना
11.1 उद्देश्य
11.2 शास्त्रीय विचारधारा
    11.2.1 हेनरी फेयोल का योगदान
    11.2.2 मेरी पार्कर फॉलेट का योगदान
    11.2.3 लूथर गुलिक का योगदान
    11.2.4 लिण्डाक उर्विक का योगदान
11.3 मानव सम्बन्धी विचारधारा
    11.3.1 एल्टन मेयो का योगदान
    11.3.2 डगलस मैग्रेगर का योगदान
11.4 व्यवस्था सम्बन्धी विचारधारा
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.0 प्रस्तावना

पिछली इकाई में आपने संगठन सम्बन्धी विभिन्न अवधारणाओं तथा परिभाषाओं को विस्तार से समझा। संगठन को समग्र रूप से समझने के लिये सिद्धान्तों की आवश्यकता होती है और सिद्धान्तों का वर्णन विचारधाराओं की अभिव्यक्ति से होता है। इन विभिन्न सिद्धान्तों और विचारधाओं का सम्बन्ध संगठन की संरचना तथा इसके विभिन्न कार्यों से होता है। जिसे विभिन्न प्रकार के कर्मचारी सम्पादित करते हैं।

वास्तव में विचारधाएं विद्वानों के अवधारणात्मक अनुभवों तथा प्रशासनिक परिथितियों के निरीक्षण से पैदा हुए विश्लेषणात्मक ज्ञान का परिणाम होता है। वैसे यह तुलनात्मक अध्ययनों से भी प्राप्त किये जा सकते हैं। प्रशासनिक विचारकों के अनुसार हमें सदैव उन विचारधाराओं को ही क्रियात्मक रूप में परिणित करनी चाहिए, जो तथ्यों पर आधारित हो। जिससे समयानुसार उसे परिणामों की कसौटी पर रखा जा सके। इनका सुव्यवस्थित, सुसंगत तथा तार्किंत होना भी सफलता का प्रतीक होता है। इस इकाई के अन्तर्गत हम संगठन की तीन प्रमुख विचारधाराओं को विश्लेषित करने का प्रयास करेंगे- 1.शास्त्रीय विचारधारा, 2.मानव सम्बन्धी विचाराधारा, 3.व्यवस्था सम्बन्धी विचाराधारा।

11.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संगठन सम्बन्धी शास्त्रीय विचारकों के बहुमूल्य विचारों का विश्लेषण कर सकेंगे।
- संगठन की मानव सम्बन्धी विभिन्न विचारधाराओं को समझ सकेंगे।
- संगठन से जुड़ी व्यवस्था सम्बन्धी विचारधारा को आत्मसात कर सकेंगे।

11.2 शास्त्रीय विचारधारा

लोक प्रशासन को समग्र रूप से समझने के लिए प्रशासनिक सिद्धान्त की आवश्यकता होती है। प्रशासनिक सिद्धान्त का सम्बन्ध प्रशासनिक संरचना तथा सरकार के कार्यों से होता है। इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए विलोबी ने लिखा है कि ''प्रशासनिक सिद्धान्त, प्रशासकों के अवधारणात्मक अनुभवों तथा प्रशासनिक परिस्थितियों के निरीक्षण से पैदा हुई विचारधाराओं पर आधारित होती है।''

संगठन सम्बन्धी सर्वाधिक प्राचीन विचारधाराओं को ही शास्त्रीय विचारधारा की संज्ञा दी जाती है। इसे यांत्रिक दृष्टिकोण भी कहा जाता है, यह संगठन का पुराना दृष्टिकोण है, इसलिए इसे परम्परागत दृष्टिकोण पर आधारित सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस विचारधारा के प्रबल समर्थकों में हेनरी फेयोल, उर्विक, फालेट तथा लूथर गुलिक आदि विचारकों को रखा जाता है।

शास्त्रीय विचारकों ने गम्भीरतापूर्वक उन आधारों की खोज का प्रयत्न किया है, जिनके अनुसार संगठन में कार्य विभाजन, कार्यों के समन्वयन, इनकी सुव्यवस्थित परिभाषा, कर्मचारियों पर नियंत्रण, आदि के सन्दर्भ में अपने विचारों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। इस विचारधारा के समर्थकों का मानना है कि संगठन के किसी कार्य को सम्पादित करने से पूर्व उसके कार्यों की रूपरेखा या ढाँचा तैयार कर लेना चाहिए।

सभी ने एक स्वर में कहा कि प्रशासन, प्रशासन होता है, चाहे उसके द्वारा किसी प्रकार के कार्य किसी परिप्रेक्ष्य में क्यों न सम्पादित किया जाए। प्रशासन बिना सुव्यवस्थित संगठनात्मक संरचना के नहीं किया जा सकता है।

वस्तुतः इस विचारधारा में मनुष्यों की अपेक्षा कार्यों पर अधिक ध्यान दिया जाता है। यह दृष्टिकोण अवैयक्तिक है, जिसमें दक्षता पर अत्यधिक बल दिया जाता है। इस अवधारणा का मुख्य लक्षण है- अवैयक्तिकता, कार्य-विभाजन, पदसोपान एवं दक्षता। इस विचारधारा से जुड़े प्रमुख विद्वानों की विचारधाराओं को विस्तार से समझने का प्रयास करें-

11.2.1 हेनरी फेयोल का योगदान

हेनरी फेयोल का जन्म फ्रांस में 1841 में हुआ था। फेयोल ने 19 वर्ष की आयु में खनिज अभियन्ता की विशेष योग्यता प्राप्त करने के बाद 1860 में फ्रांस की एक कोयला खान में इंजीनियर पद पर कार्य प्रारम्भ किया। हेनरी फयोल ने कई पुस्तकों की रचना की। इनकी अधिकांश पुस्तकें फ्रेंच भाषा में थी। इनकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण पुस्तक ''जनरल एण्ड इंडस्ट्रियल मैनजमेंट'' है, जिसमें इनके विचारों की अभिव्यक्ति मिलती है, जो मूल रूप से सन् 1919 में फ्रेंच भाषा और सन् 1929 में अंग्रेजी में प्रकाशित हुई। इन्हें प्रशासन एवं 'प्रबन्ध के सिद्वान्तों के जनक' के नाम से जाना जाता है।

फेयोल पहले ऐसे व्यक्ति थे, जिन्होंने कहा था कि प्रशासनिक कार्य अन्य कार्यों की अपेक्षा बिल्कुल अलग है। अतः प्रशासक वही हो सकता है, जिसमें कुछ विशेष प्रतिभा हो। फेयोल के विचारानुसार प्रत्येक क्रिया-समूह के साथ एक विशेष क्रिया रहती है। ऐसी योग्यता को तकनीकी योग्यता के नाम में सम्मिलित किया जा सकता है। फेयोल ने प्रबन्ध के स्थान पर प्रशासन शब्द का प्रयोग किया है और उन्होंने इसके पाँच तत्व बताये हैं जो क्रमशः भविष्यवाणी, नियोजन, संगठन, समन्वय, आदर्श एंव नियंत्रण हैं। संगठन के सफल संचालन के लिये आपने निम्नलिखित 14 सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन्हें क्रमशः इन्हें समझने का प्रयास करें-

1. **कार्य-विभाजन का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार उद्देश्य प्राप्ति हेतु कर्मचारियों में उनकी योग्यता और कुशलतानुसार कार्य का विभाजन सुनिश्चित किया जाना चाहिए। इससे उत्पादकता बढ़ती है और तकनीकी तथा प्रशासकीय कार्य निष्पादन का स्तर ऊँचा होता है।

2. **अधिकार एवं दायित्व-** यदि किसी व्यक्ति को कोई कार्य करने का दायित्व सौंपा जाए तो कार्य के सुव्यवस्थित निष्पादन हेतु आवश्यक अधिकार भी दिये जाने चाहिए। बिना अधिकार के कोई भी व्यक्ति कुशलतापूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वाह सुनिश्चित नहीं कर सकता।
3. **अनुशासन-** फेयोल के अनुसार अनुशासन से अभिप्राय संगठन के नियमों के प्रति आस्था, आज्ञाकारिता तथा श्रद्धा से है। कर्मनिष्ठा तथा आदेश का पालन करना ही अनुशासन है। अनुशासन प्रशासकों के व्यक्तिव पर निर्भर करता है। इसके अभाव में कोई भी संगठन समृद्ध नहीं हो सकता। अनुशासन बनाये रखने के लिए अच्छा पर्यवेक्षण, अनुशासन के नियमों की स्पष्टता, पुरस्कार तथा दण्ड की व्यवस्था का होना आवश्यक है।
4. **आदेश की एकता-** संगठन में एक व्यक्ति, एक अधिकारी के सिद्धान्त का पालन होना चाहिए। इससे यह लाभ होता है कि कर्मचारी एक ही अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है तथा निर्देशों में स्पष्टता रहती है।
5. **निर्देशन की एकता-** इस सिद्धान्त के अनुसार यदि संगठन का उद्देश्य एक है तो प्रबन्धक को सभी क्रियाओं के लिए एक ही निर्देर्शों का पालन करना चाहिए। यह सिद्धान्त कार्य में एकरूपता लाने, समन्वय तथा प्रयासों पर उचित ध्यान देने के लिए अत्यन्त आवश्यक है।
6. **उचित पारिश्रमिक-** हेनरी फेयोल के मतानुसार, कर्मचारियों की पारिश्रमिक दर तथा भुगतान की विधि उचित व सन्तोषप्रद होनी चाहिए। उन्होंने संगठन में कर्मचारियों को प्रोत्साहन देने के लिए गैर-वित्तीय प्रेरणाएं अपनाने पर भी बल दिया है।
7. **सामुदायिक हितों के लिए व्यक्तिगत हितों का समर्पण-** सदस्यों के व्यक्तिगत हितों तथा संकीर्ण विचारों को संगठन के सामूहिक हितों पर सदैव प्राथमिकता दी जानी चाहिए। यद्यपि कुशल प्रशासकों को सामान्य एवं व्यक्तिगत हितों में समन्वय रखना चाहिए, परन्तु यदि दोनों में संघर्ष हो जाये तो व्यक्तिगत हितों की अपेक्षा सामुदायिक हितों को प्राथमिकता देनी चाहिए।
8. **पदाधिकारी सम्पर्क श्रृंखला-** 'पदाधिकारी सम्पर्क श्रृंखला' का तात्पर्य सर्वोच्च पदाधिकारी से लेकर निम्नतम पदाधिकारी के बीच सम्पर्क की व्यवस्था के क्रम से है। वरिष्ठ एवं अधीनस्थ के मध्य सम्बन्धों की स्पष्ट श्रृंखला निर्धारित होनी चाहिए और श्रृंखला का उल्लंघन नहीं किया जाना चाहिए।
9. **केन्द्रीकरण-** संगठन के प्रशासन में केन्द्रीकरण को अपनाया जाए या विकेन्द्रीकरण को, इसका निर्णय संस्था के हितों, कर्मचारियों की मनोभावनाओं तथा कार्य-प्रकृति आदि सभी बातों का ध्यान रख कर किया जाना चाहिए।
10. **व्यवस्था-** प्रत्येक वस्तु, यन्त्र तथा कर्मचारियों के लिए एक नियत स्थान व्यवस्थित क्रम में होना चाहिए।
11. **समता-** कार्य करने में लगे सभी कर्मचारियों के साथ उचित व्यवहार करने को समता कहा जाता है। समता का आशय कर्मचारियों के प्रति न्यायोचित तथा उदारता का भाव रखने से है। अर्थात समता, न्याय तथा दया का मिश्रण है। कर्मचारियों के साथ समानता का व्यवहार करने से कर्मचारियों में कार्य के प्रति लगन तथा संस्था के प्रति सम्मान पैदा होती है।
12. **स्थायित्व-** जहाँ तक सम्भव हो सके कर्मचारियों के कार्यकाल में स्थायित्व होना चाहिए, जिससे वे निश्चित होकर समर्पण से कार्य कर सकें। कर्मचारियों द्वारा जल्दी-जल्दी संस्था को छोड़कर चले जाना भी प्रायः कुप्रबन्ध न का ही परिणाम होता है। किसी कर्मचारी को नए कार्य को सीखने तथा कुशलतापूर्वक

उसका निर्वहन करने में समय लगना स्वाभाविक है। अतः यदि उसे काम सीखने का समुचित समय न दिया जाय तो यह न्याय न होगा।

13. **पहल क्षमता-** पहल क्षमता से अभिप्राय किसी योजना को सोचने, प्रस्तावित करने और उसके क्रियान्यवयन की स्वतन्त्रता से है। प्रत्येक प्रबन्धक को अपने अधीन काम करने वाले व्यक्तियों में पहल की भावना को जाग्रत करना चाहिए। अधीनस्थ कर्मचारियों के अच्छे सुझाव एवं योजनाओं को क्रियान्वित करने की सराहना की जानी चाहिए। इससे कर्मचारी को बल मिलेगा, सीखने का अवसर प्राप्त होगा और उनमें उत्तरदायत्वि की भावना का विकास होगा।
14. **सहकारिता एवं संघ शक्ति की भावना-** संगठन की शक्ति उसकी एकता, सहयोग और एकसूत्र में बंधे रहने में ही है। यदि सभी एक सूत्र में बंधकर कार्य नहीं करेंगे तो संगठन शीघ्र ही बिखर जायेगा और सामान्य उद्देश्यों की उपलब्धि सम्भव नहीं होगी। इसके लिए आदेश में एकता, सहयोग तथा संघीय शक्ति की ताकत में अटूट विश्वास आवश्यक है।

फेयोल को प्रशासनिक प्रबन्ध के क्षेत्र का एक महान विद्वान माना जाता है। उसके विचारों से प्रशासनिक सिद्धान्त के विकास हेतु मार्ग निर्धारण हुआ, नियोजन कार्य को महत्व दिया, अधिकार अन्त:करण की महत्वपूर्ण समस्या पर जोर डाला और स्पष्ट किया कि संगठन के सिद्धान्त सर्वव्यापी हैं जो प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में लागू हो सकते हैं। इस प्रकार फेयोल के विचारों से पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि ''आधुनिक प्रशासनिक संगठन के वास्तविक पिता हेनरी फेयोल ही है।''

11.2.2 मेरी पार्कर फॉलेट का योगदान

एम0 पी0 फोलेट एक प्रसिद्ध सामाजिक और राजनैतिक दार्शनिक थी। फॉलेट का जन्म अमेरिका के बोस्टन नगर में सन् 1868 में हुआ था। फॉलेट के अनुसार व्यक्तियों का एक समूह केवल समूह मात्र ही नहीं होता, अपितु समूह में एक सामूहिक शक्ति भी होती है। समूह की सामूहिक शक्ति उसके सदस्यों द्वारा किये गये प्रयत्नों से प्रकट होती है। व्यक्तिगत समूहों के मानवीय प्रयत्नों द्वारा समाज को विभिन्न प्रकार की उपयोगी सेवाऐं प्रदान की जाती हैं। उन्होंने समन्वयन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया और इस प्रक्रिया से संबंधित कुछ सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया। इन सिद्धान्तों को क्रमवार समझने का प्रयास करें-

1. **मानवीय दृष्टिकोण-** फोलेट के अनुसार संगठन की समस्त समस्याओं के विवरण के लिये मानवीय दृष्टिकोण के सिद्धान्त को अपनाया जाना चाहिये। उन्होंने यह भी बताया कि नियोक्ता और कर्मचारियों के बीच क्रियात्मक सहयोग की स्थापना करके प्रबन्ध को अत्यधिक प्रभावी बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।
2. **प्रत्यक्ष सम्पर्क का सिद्धान्त-** किसी भी प्रकार का समन्वय करने में प्रबन्धकों व अन्य व्यक्तियों को एक-दूसरे के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क करना चाहिए। उन्होनें प्रशासकों द्वारा अपनाई जाने वाली पदानुक्रमिका को त्याग देने का सुझाव दिया था। जिससे देरी करने, अधिक समय लेने वाली संवहन की विधियों से छुटकारा मिल जाता तथा प्रशासन में भ्रष्टाचार की संभावना क्षीण हो जायेगी।
3. **समन्वय-** फोलेट ने बताया कि समन्वय न तो एक बार करने की प्रक्रिया है और न ही निर्धारित समय के पश्चात यह तो एक सतत् प्रक्रिया है। प्रशासकों को तो संगठन के कार्यों को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए सदैव ही सर्तक रहना पड़ता है। कर्मचारी, उच्च अधिकारी एवं जनता आदि सभी पक्षों के हित में समन्वय होना अति आवश्यक है।

4. **नियन्त्रण-** फोलेट के अनुसार एक प्रशासक को संगठन में नियन्त्रण तथ्यों का किया जाना चाहिये, न कि मनुष्यों का। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि प्रशासक अपनी योग्यता, कुशलता एवं दूरदर्शिता के आधार पर परिस्थितियों को सही ढंग से समझने में सक्षम होना चाहिए।
5. **नेतृत्व-** फोलेट आक्रात्मक नेतृत्व के विरूद्ध थी। उनके अनुसार नेतृत्व सद्-भावना और सहयोग पर आधारित होना चाहिये। आपके अनुसार एक अच्छा नेतृत्व केवल अपने अनुगामियों का मार्गदर्शन ही नहीं करता, अपितु उससे स्वयं भी मार्गदर्शन प्राप्त करता है। नेता इस बात का प्रयत्न करता है कि उसके अनुगामी अपनी योग्यता का सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करें।

11.2.3 लूथर गुलिक का योगदान

लूथर गुलिक ने अपने अनुभवों तथा अध्ययनों को समन्वित करके संगठन के सामान्य सिद्धान्तों का निर्माण किया। गुलिक संगठनात्मक कुशलता के स्तर को बढ़ाने वाले तटस्थ सिद्धान्तों के समर्थक थे। गुलिक ने 'पेपर्स आन साईन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन'(1937) नामक पुस्तक का सम्पादन किया। गुलिक राष्ट्रपति की प्रशासनिक प्रबन्ध समिति के सदस्य भी थे।

लूथर गुलिक, टेलर एवं फेयोल से बहुत अधिक प्रभावित थे। गुलिक ने फेयोल के प्रशासन के पाँच तत्वों- योजना, संगठन, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण को अपने तटस्थ सिद्धान्तों के रूप में प्रयोग किया। गुलिक ने प्रशासन के कर्तव्यों को संक्षिप्त रूप से 'पोस्डकार्ब' शब्द(एक्रोनिम) की संज्ञा देकर प्रस्तुत किया। इसे विस्तार को समझने का प्रयास करें-

1. **योजना-** इसका तात्पर्य सम्पन्न किए जाने वाले कार्यों का निर्धारण तथा संगठन के निर्धारित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उन्हें सम्पन्न करने के तरीकों का निर्धारण से है।
2. **संगठन-** से तात्पर्य औपचारिक सत्ता संगठन की स्थापना करना जिसके माध्यम से निर्धारित उद्देश्य के कार्य-उपभागों को व्यवस्थित, परिभाषित या समन्वित किया जाता है।
3. **कार्मिक सम्बन्धी कार्य-** से तात्पर्य कर्मचारियों की भर्ती तथा प्रशिक्षण कार्य के अनुकूल स्थिति बनाना।
4. **निर्देशन करना-** इसका अर्थ निर्णय करना और इन्हें विशिष्ट और सामान्य आदेशों और निर्देशों का रूप प्रदान करना।
5. **समन्वय करना-** इसके अन्तर्गत कार्य के विभिन्न भागों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना आता है, संगठन में यह सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है।
6. **प्रतिवेदन देना-** कार्यपालिका जिसके प्रति उत्तरदायी होती है, उन्हें प्रशासन की गतिविधियों से अवगत रखने की प्रक्रिया को प्रतिवेदन की संज्ञा दी जाती है।
7. **बजट बनाना-** संगठन के आय-व्यय हेतु वार्षिक बजट सम्बन्धी कार्यों को सम्पादित करना।

11.2.4 लिण्डॉल उर्विक का योगदान

शास्त्रीय विचारधारा के महत्वपूर्ण विचारकों में आपको सम्मिलित किया जाता है। आपने संगठन के निम्न सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। आइये इन्हें क्रमशः समझने करने का प्रयास करें-

1. **उद्देश्य का सिद्धान्त-** आपके अनुसार संगठन के उद्देश्यों की पूर्ण एवं स्पष्ट परिभाषा दी जानी चाहिए। इसके सहायक उद्देश्यों में स्पष्ट अन्तर किया जाना चाहिए जिससे कि प्रशासकीय कार्यों को मुख्य उद्देश्य के प्रति अधिक प्रभावपूर्ण बनाया जा सके। संगठन के स्वरूप का निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे संगठन के उद्देश्यों की प्राप्ति में व्यक्तिगत प्रयासों का अधिकतम सहयोग मिल सके।

2. **नियन्त्रण के क्षेत्र का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार किसी वरिष्ठ अधिकारी के अधीन अधीनस्थों की संख्या केवल उतनी ही होनी चाहिए कि कार्यों पर वह उचित नियन्त्रण स्थापित कर सके। जिससे कार्य सुव्यवस्थित रूप से सम्पन्न हो सके।
3. **व्याख्या का सिद्धान्त-** एक कुशल संगठन के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक अधिकारी के अधिकार, कर्तव्य, दायित्व की स्पष्ट व्याख्या हो, जिससे कार्य के निष्पादन में किसी प्रकार की भ्रान्त धारणा न रहे।
4. **समन्वय का सिद्धान्त-** संगठन का उद्देश्य प्रशासन के विभिन्न कार्यों, साधनों तथा व्यक्तियों की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना है।
5. **विशिष्टीकरण का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन के प्रत्येक व्यक्ति को वही कार्य आवंटित करना चाहिए, जिसके लिए वह शारीरिक व मानसिक दृष्टि से क्षमतावान हो। जिससे वह अपना सर्वोतम योगदान प्रस्तुत कर सके।
6. **पदाधिकारियों में सम्पर्क का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन ऊपर से नीचे की ओर वरिष्ठता तथा अधीनता के क्रम से परस्पर सम्बद्ध होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, अधीनस्थ को अपने वरिष्ठ की सत्ता का उल्लंघन नहीं करना चाहिए। इससे अनुशासन को बनाये रखने में सहायता मिलती है।
7. **निरन्तरता का सिद्धान्त-** संगठन एवं पुर्नसंगठन की विधि निरन्तर चालू रहती है। अतः इसके लिए प्रत्येक इकाई में विशिष्ट व्यवस्थाओं को निर्माण होना चाहिए। संगठन व्यवस्था न केवल तात्कालिक क्रियाओं के लिए, अपितु भविष्य में इन क्रियायों को बनाये रखने के लिए भी पर्याप्त होनी चाहिए।

संगठन के शास्त्रीय सिद्धान्त की यह कह कर विद्वानों ने आलोचना की है कि इस सिद्धान्त से यह स्पष्ट नहीं होता है कि किस विशेष स्थिति में कौन सा सिद्धान्त महत्व देने योग्य है? साइमन ने प्रशासन के सिद्धान्तों को प्रशासन की कहावतें मात्र कह कर इनका उपहास किया है, क्योंकि यह एक संकुचित विचार है जो व्यक्तियों के संगठन में उनके साथियों से अलग रखकर निरीक्षण करता है। अर्थात यह व्यक्ति परक है।

इन कमियों के बावजूद प्रशासन के क्षेत्र में शास्त्रीय विचारधार के योगदान की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस दृष्टिकोण की कमियों ने संगठन तथा उसके व्यवहार के भावी शोध की प्रेरणा प्रदान की इस प्रकार यह दृष्टिकोण संगठन की विचारधाराओं के विकास क्रम में में मील आधार का कार्य करता है।

11.3 मानव सम्बन्धी विचारधारा

मानवीय सम्बन्धों से हमारा तात्पर्य मुख्यतः नियोक्ताओं और कार्मिकों के उन सम्बन्धों से है, जो कानूनी मानकों द्वारा नियंत्रित नहीं होते। ये सम्बन्ध कानूनी तत्वों की अपेक्षा नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों से अधिक संबंधित है। इस विचारधारा के समर्थकों का यह दृष्टिकोण इस तथ्य पर आधारित है कि प्रशासन का कार्य व्यक्तियों को समझने तथा वे क्या करते हैं और क्यों करते हैं, पर अधिक केन्द्रीत करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

इस विचारधारा के अनुसार, संगठन की समस्याओं के समाधान के लिए सामाजिक और मनोविज्ञान के व्यवहार को प्रयोग में लाया जाता है। वास्तव में मानवीय सम्बन्ध अभिप्रेरणा, सम्प्रेषण व्यवस्था, प्रशिक्षण, नेतृत्व आदि प्रबन्धकीय विधियों के अंतर्गत आते हैं। इसलिए इस दृष्टिकोण को मानवीय सम्बन्ध, नेतृत्व व व्यावहारिक विज्ञान की संज्ञा भी दी जाती है।

11.3.1 एल्टन मेयो का योगदान

अमेरिका के हार्वर्ड यूनिवर्सिटी के समाजशास्त्री जार्ज ईल्टन मेयो ने अपने विचारों की स्थापना 1920 से लेकर 1930 तक वैस्टर्न इलैक्ट्रिक कम्पनी के हाथोर्न कारखाने में विभिन्न प्रयोगों के आधार पर की। हाथोर्न प्रयोगों ने

उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों की नींव डाली और यह सिद्ध कर दिया कि भौतिक तत्वों की तुलना में उत्पादकता में वृद्धि की दृष्टि से मानवीय तथा सामाजिक तत्व अधिक प्रभावपूर्ण होते हैं। परन्तु बाद में किये गये अनेक शोध अध्ययनों ने यह इंगित किया है कि हाथोर्न प्रयोगों द्वारा प्रतिपादित मानवीय सम्बन्ध सिद्धान्त यद्यपि उपयोगी हैं, परन्तु वे आज की बदली हुई परिस्थितियों में कर्मचारियों तथा संगठन के विकास सम्बन्धी समस्याओं का पूर्ण निराकरण करने में पूर्णतः सक्षम सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं।

अमेरिका की वैस्टन इलेक्ट्रिक कम्पनी के हाथोर्न कारखाने में मानवीय समबन्धों के बारे में जो परीक्षण किये गये हैं, उन्हें हाथोर्न प्रयोग के नाम से जाना जाता है। इस कारखाने के कर्मचारियेां में अत्यधिक असन्तोष व्याप्त था। जिसके कारण कारखाने में उत्पादन लगातार कम होता जा रहे थी। अधिकारियों ने उत्पादन बढ़ाने के लिए अनेक प्रयत्न किये, किन्तु परिणाम विपरीत ही रहा। अन्त में परेशान होकर अधिकारियों ने 'हार्वर्ड स्कूल ऑफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन' से इस सम्बन्ध में सहयोग माँगा।

इस सम्बन्ध में जार्ज एल्टन मेयो ने अनेक अध्ययन किये। परिणामतः इस तथ्य का खुलासा हुआ कि कार्यशील घण्टों, मजदूरी अथवा कार्य की दशाओं से भी अधिक महत्वपूर्ण कोई कारक हैं और वह हैं, कर्मचारियों की अपने कार्यों के प्रति अभिवृत्तियाँ, जो कि कर्मचारियों की उत्पादकता में प्रत्यक्ष रूप से वृद्धि करता है।

एल्टन मेयो एवं उनके सहयोगियों ने चार से बारह सप्ताह की अवधि में विभिन्न प्रयोग किये। जिनमें कर्मचारियों को भिन्न-भिन्न प्रकार की कार्य-दशाऐं दी गयी। संक्षेप में इन प्रयोगों से प्राप्त परिणामों को निम्नलिखित क्रम से प्रस्तुत कर आत्मसात किया जा सकता है-

1. सामान्य कार्य-दशाओं के अन्तर्गत 48 घण्टे प्रति में प्रत्येक महिला कर्मचारी ने प्रति सप्ताह 2,400 रिलेज यन्त्र का उत्पादन किया।
2. इसके पश्चात महिला कर्मचारियों से कार्यानुसार मजदूरी पर उत्पादन कराया गया, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हुई।
3. इसके पश्चात पाँच सप्ताह तक पाँच-पाँच मिनट के दो विश्राम दिये गये। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन में पुनः वृद्धि हुई।
4. इसके पश्चात दोनों विश्राम के समय को बढ़ाकर दस-दस मिनट कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई।
5. इसके पश्चात पाँच-पाँच मिनट के छः विश्राम दिये गये। जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में कमी आयी और महिला कर्मचारियों ने यह शिकायत की कि बार-बार विश्रामों के कारण उनके कार्य का क्रम टूट जाता है।
6. इसके पश्चात विश्रामों की संख्या घटाकर दो कर दी गई और प्रथम विश्राम के दौरान कम्पनी ने नाश्ते की व्यवस्था की जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई।
7. इसके पश्चात महिला कर्मचारियों के कार्य का समय आधा घण्टा प्रतिदिन घटा दिया गया, अर्थात् अब उनकी छुट्टी सायं 5 बजे के स्थान पर 4:30 बजे होने लगी। इसके परिणामस्वरूप उत्पादन में वृद्धि हुई।
8. इसके पश्चात महिला कर्मचारियों की छुट्टी आधा घंटा और घटाकर 4 बजे होने लगी लेकिन उत्पादन पहले के समान ही रहा।

अन्त में सारी सुविधायें समाप्त करके उन्हें पुरानी दशाओं में ही कार्य कराया जाने लगा और यह आश्चर्यजनक तथ्य सामने आया कि उत्पादन का सबसे ऊँचा रिकार्ड रहा, जो कि प्रत्येक महिला कर्मचारी का 48 घण्टे का प्रति सप्ताह का औसत 3,000 रिलेज यन्त्र हो गया।

परिणामतः यह कहा जा सकता है कि हाथोर्न प्रयोगों ने इस बात को सिद्ध कर दिया है कि यदि कर्मचारियों के साथ मानवीय व्यवहार किया जाये तो उनसे अधिक सहयोग प्राप्त किया जा सकता है और संगठन के पूर्व निर्धारित लक्ष्यों केा प्राप्त किया जा सकता है। मेयो के अन्य योगदानों में निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है-

- मानवीय सम्बन्ध विचारधारा का प्रतिपादन,
- कर्मचारियों को गैर-आर्थिक प्रेरणा,
- सम्प्रेषण की व्यवस्था,
- संगठन का एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में होना,
- रचनात्मक नेतृत्व का पाया जाना,
- कर्मचारियों का विकास होना।

11.3.2 डगलस मैग्रेगर का योगदान

डगलस मैग्रेगर अमेरिका में मिशीगन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर थे। आपने प्रशासकों की कर्मचारियों के प्रति प्रशासकीय समस्याओं का समाधान करने के लिये व्यावहारिक विज्ञान को आधार बनाया। आपने 'एक्स'(X) सिद्धान्त और 'वाई'(Y) सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जो कि काफी लोकप्रिय है। आइये इन दोनों सिद्धान्तों को क्रमशः समझने का प्रयास करें-

1. **'एक्स'(X) सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार, मनुष्य स्वभावतः आलसी होता है, न्यूनतम कार्य करना चाहता है। उत्तरदायित्व से दूर रहता है। स्वार्थी होता है। महत्वाकांक्षी नहीं होता है। अपनी सुरक्षा को अधिक महत्व देता है, उसे नवीनता ग्राहय नहीं होती है एवं संगठन के लक्ष्यों के प्रति उदासीन रहता है। अतः प्रशासकों को चाहिये कि वे कर्मचारियों को उपयुक्त पुरस्कार द्वारा अधिक कार्य करने के लिये प्रेरित करें। समय-समय पर आवश्यकतानुसार उन्हें दण्डित भी करें और उन पर पूर्ण नियन्त्रण रथापित रहेगा।
2. **'वाई'(Y) सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार, मनुष्य स्वभाव से निष्किय नहीं होते। अपितु उनमें यह गुण संगठन में काम करते-करते अनेक अनुभव का परिणाम होता है। सभी श्रमिकों में आशा, आकांक्षा, साहस एवं उत्साह आदि के गुण विद्यमान होते हैं। अतः प्रशासकों को चाहिये कि कर्मचारियों के इस गुण को विकसित करने के लिये पूर्ण अवसर प्रदान करें।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 'एक्स सिद्धान्त' निर्देशन एवं नियन्त्रण की तकनीक पर आधारित है और इसमें सत्ता के केन्द्रीयकरण पर अधिक बल दिया जाता है। आधुनिक युग में 'एक्स सिद्धान्त' की कोई उपयोगिता नहीं हैं। 'वाई सिद्धान्त' संगठनात्मक वातावरण के निर्माण और सत्ता के विकेन्द्रीयकरण पर अधिक बल देता है। आधुनिक युग में 'वाई सिद्धान्त' अधिक उपयोगी है

11.4 व्यवस्था सम्बन्धी विचारधारा

व्यवस्था का तात्पर्य, ऐसी इकाइयों से है जो अन्तर्सम्बन्धित होती हैं तथा प्रत्येक एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं। व्यवस्था उपागम के मुताबिक प्रत्येक व्यवस्था कई उपव्यवस्थाओं से मिलकर बनती है, जिसमें अगर कोई भी उपव्यवस्था ठीक से कार्य नहीं करती है, तो सम्पूर्ण व्यवस्था पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैसे- मानव शरीर का निर्माण पंच तत्वों से होता है और शरीर में स्थित हृदय इस व्यवस्था की एक उप-व्यवस्था है। इस उपागम का सर्वप्रथम प्रयोग मानव विज्ञान शास्त्री रेटली ब्राउन द्वारा किया गया था।

लोक प्रशासन के विद्वानों ने भी प्रशासनिक तथ्यों तथा घटनाओं के विश्लेषण में व्यवस्था उपागम के प्रयोग का प्रारम्भ किया। लोक प्रशासन के अन्तर्गत इस दृष्टिकोण को प्रचलित करने में चेस्टर बर्नार्ड का नाम सर्वप्रथम है।

चेस्टर बर्नार्ड ने संगठन को एक सहकारी व्यवस्था माना है, क्योंकि वह संगठन को लोगों के सहकारी प्रयासों के प्रतिफल की भावना उन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए होती है, जिन्हें वह अकेले प्राप्त नहीं कर सकता। उसके मतानुसार भौतिक सीमाऐं समूह को सहयोग हेतु आकर्षिक करती हैं और सहयोग की भावना सहयोगातमक व्यवस्था को कायम करती है।

बर्नार्ड ने संगठन को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में समझा है, जिसमें कार्य करने वाले व्यक्तियों के व्यवहार व्यक्तित्व और अभिलाषा भावनात्मक विकास की पारस्परिक क्रिया होती है और उन्हीं के फलस्वरूप सामूहिक क्रिया का विकास होता है, परिणामस्वरूप संगठन लोगों के सहयोग की सूची के रूप में तब्दील हो जाता है। चूँकि बहुत से लोग सहयोगी व्यवहार में शामिल होते हैं, इसलिए यह प्रक्रिया निरन्तर बदलती रहती है। स्पष्टतः संगठन और व्यक्ति दोनों ही इस उपागम के महत्वपूर्ण अंग बन जाते हैं। व्यवस्था प्रणाली की निम्नलिखित विशेषताओं को सूचिबद्ध किया जा सकता है। इन्हें समझनें का प्रयास करते हैं-

1. प्रत्येक प्रणाली के अन्तर्गत अनेक उपप्रणालियाँ समाहित होती हैं।
2. प्रत्येक प्रणाली के ऊपर अन्य बड़ी प्रणालियाँ स्थित हो सकती है।
3. प्रत्येक उपप्रणाली अन्तर्सम्बंधित प्रकृति की होती है।
4. प्रत्येक प्रणाली लक्ष्योन्मुख होती है तथा समस्त उपप्रणालियाँ उसे सुव्यवस्थित, क्रमबद्ध रूप से पाने में सहयोग करती हैं।
5. सभी प्रणालियों को दो भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है, खुली व बन्द प्रणाली।
6. बन्द प्रणाली अपने वातावरण से कोई सम्बन्ध नहीं रखती अर्थात वह ना तो प्रभावित होती है और ना ही प्रभावित करती है। इसके विपरीत खुली प्रणाली प्रभावित होती है और प्रभावित भी करती है।
7. समस्त प्रणालियों में साधन व उत्पादन दोनों व्यवस्था होती है।
8. खुली प्रणाली में प्रतिपुष्टि निरन्तर चलती रहती है। जिससे समय-समय पर आवश्यक समायोजन एवं संशोधन चलता रहता है।

उपरोक्त विवेचन के पश्चात हम कह सकते हैं कि इस विचारधारा की दृष्टि में प्रशासनिक संगठन भी एक प्रणाली है तथा इसकी प्रकृति खुली है। अतः प्रशासन को अपने संगठन की सफलता के लिए एकीकृत प्रणाली अपनानी चाहिए। संगठन रूपी प्रणाली के निरन्तर प्रवाह के लिए पाँच प्रमुख कारक आवश्यक होते हैं, यथा- संसाधन, रूपान्तरण, सम्प्रेषण व्यवस्था, उत्पादन तथ प्रतिपुष्टि।

इन कारकों को ध्यान में रखते हुए व्यवस्था उपागम अधिक संतोषप्रद है, क्योंकि इसमें औपचारिक और अनौपचारिक दोनों दृष्टिकोण से लाभ उठाने का प्रयास किया गया है। औपचारिक सिद्धान्त जो संगठन की संरचनाओं, प्रक्रियाओं, नियमों आदि को महत्व देता है उसे भी इस उपागम में सम्मिलित किया गया है। दूसरी ओर औपचारिक सिद्धान्त जो मानवीय व्यवहार की उपेक्षा है, किन्तु इस कमी को व्यवहारवादी सिद्धान्त द्वारा दूर किया गया है, उसके महत्व को भी व्यवस्था उपागम स्वीकार करता है। इस संगठन के क्रियाशील सभी तत्वों का समावेश व्यवस्था उपागम में किया गया है।

व्यवस्था उपागम की कई आलोचनाऐं की जाती हैं। सर्वप्रथम इस उपागम में अन्तर्निर्भरता पर आवश्यकता से अधिक बल दिया जाता है, जो सही नहीं है। दूसरे इस उपागम के अन्तर्गत प्रशासन संगठन को व्यापक स्तर पर खड़ा किया जाता है, जिससे इस सिद्धान्त के तकनीकी सम्बन्ध में कर्मचारियों एवं प्रशासनिक अधिकारियों को पूर्णतः प्रशिक्षित किया जा सके।

अभ्यास प्रश्न-

1. हेनरी फेयोल का जन्म कब और कहाँ हुआ था?
2. फेयोल ने संगठन के कितने सिद्धान्त बताये हैं?
3. 'जनरल एण्ड इण्डस्ट्रियल मैनेजमेन्ट' नामक पुस्तक किसने लिखी है?
4. 'पोस्डकार्ब' सूत्र किस विद्वान द्वारा प्रतिपादित किया गया था?
5. संगठन के मानवीय दृष्टिकोण से निम्न में से कौन सा विद्वान जुड़ा हुआ माना जाता है?
6. हाथोर्न प्रयोग किस विद्वान द्वारा किये गये थे?
7. 'एक्स' तथा 'वाई' सिद्धान्त के प्रतिपादक कौन थे?
8. हाथोर्न प्रयोग किस इलेक्ट्रिक कम्पनी में किये गये थे?

11.5 सारांश

संगठन सम्बन्धी सर्वाधिक प्राचीन विचारधाराओं को ही शास्त्रीय विचारधारा की संज्ञा दी जाती है। इसे यांत्रिक दृष्टिकोण भी कहा जाता है, यह संगठन का पुराना दृष्टिकोण है, इसलिए इसे परम्परागत दृष्टिकोण पर आधारित सिद्धान्त भी कहा जाता है।

मानवीय सम्बन्धों से हमारा तात्पर्य मुख्यतः नियोक्ताओं और कार्मिकों के उन सम्बन्धों से है, जो कानूनी मानकों द्वारा नियंत्रित नहीं होते। ये सम्बन्ध कानूनी तत्वों की अपेक्षा नैतिक और मनोवैज्ञानिक तत्वों से अधिक संबंधित है। इस विचारधारा के समर्थकों का यह दृष्टिकोण इस तथ्य पर आधारित है कि प्रशासन का कार्य व्यक्तियों को समझने तथा वे क्या करते हैं ओर 'क्यों करते हैं' पर अधिक केन्द्रीत करने की आवश्यकता पर बल दिया है।

व्यवस्था का तात्पर्य, ऐसी इकाइयों से है जो अन्तर्सम्बन्धित होती हैं तथा प्रत्येक एक दूसरे को प्रभावित करती है। व्यवस्था उपागम के मुताबिक प्रत्येक व्यवस्था कई उप-व्यवस्थाओं से मिलकर बनती है, जिसमें अगर कोई भी उप-व्यवस्था ठीक से कार्य नहीं करती है, तो सम्पूर्ण व्यवस्था पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जैसे- मानव शरीर का निर्माण पंच तत्वों से होता है और शरीर में स्थित हृदय इस व्यवस्था की एक उप-व्यवस्था है। इस उपागम का सर्वप्रथम प्रयोग मानव विज्ञापन शास्त्री रेटली ब्राउन द्वारा किया गया था।

11.6 शब्दावली

अधिकार- आदेश देने की शक्ति तथा यह निश्चित कर लेना कि इन आदेशों का पालन किया जा रहा है।

केन्द्रीयकरण- यह बिंदु अथवा स्तर जहाँ सभी निर्णय लेने वाले अधिकार केन्द्रित रहते हैं।

नियंत्रण- अधीनस्थों के कार्यों का मापन तथा सुधार जिससे यह आश्वस्त हो सके कि कार्य नियोजन के अनुसार किया गया है।

समन्वय- व्यक्ति तथा समूह के प्रयासों में सामूहिक कार्यों तथा उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सामंजस्य स्थापित करना।

विकेन्द्रीकरण- उपक्रम के नीचे के स्तरों पर निर्णय लेने की शक्ति को सोंपना।

निर्णयन- किसी कार्य को करने के विभिन्न विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन या किसी कार्य के निष्पादन के लिए विवेकपूर्ण चयन।

अधिकार का प्रयोजन- निर्धारित कार्यों के निष्पादन के लिए आवश्यक अधिकारों को अन्य व्यक्तियों को सौंपना।

नेतृत्व- समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों को प्रभावित करने की प्रक्रिया की कला।

अभिप्रेरणा- एक व्यक्ति के बीच इच्छा अथवा अनुभव का होना जिसके कारण वह कार्य करने के लिए उद्यत होता है।

दायित्व- एक व्यक्ति की बाध्यता अथवा सौंपे गए कार्य को निष्पादित करने की उसकी बाध्यता।
नियोजन- किन कार्यों को कहाँ और कैसे करना है का पूर्व निर्णय।
सिद्धान्त - मूल सत्य अथवा किसी निश्चित समय पर विश्वास योग्य सत्य, जो दो अथवा अधिक चलों के सेट के बीच सम्बन्धों की व्याख्या करता है, ये वर्णनात्मक भी हो सकते हैं जो यह बतलाते हैं कि क्या होगा अथवा आदेशात्मक (अथवा नियामक) भी होते हैं जो व्यक्ति को क्या करना है का आदेश देते हैं।
आदेश की एकता- प्रत्येक अधीनस्थ को एक ही अधिकारी के प्रति जवाबदेही के लिए बाध्य किया जाना चाहिए। यह सिद्धान्त बतलाता है कि जितना अधिक एक व्यक्ति एक ही अधिकारी के प्रति जवाबदेही करेगा, उतना ही कम विवाद की समस्या उत्पन्न होने की संभावना होगी।
निर्देश की एकता- इस सिद्धान्त का आशय एक अधिकारी, एक योजना अर्थात एक से ही उद्देश्य वाली सामूहिक क्रियाओं के लिए एक ही अधिकारी द्वारा निदेश किया जाना चाहिए।

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फ्रान्स, 1841, **2.** 14, **3.** हेनरी फेयोल, **4.** गुलिक, **5.** एम0पी0 फोलेट, **6.** मेयो, **7.** मैग्रेनर, **8.** वेस्टर्न इलेक्ट्रिक

11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 सी0वी0 गुप्ता, व्यापारिक संगठन और प्रबन्ध, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली-1996,
2. मामोरिया एवं मामोरिया, व्यापारिक योजना और नीति, हिमालया पब्लिशिंग हाउस, मुम्बई-1996,
3. हारोल्ड कून्टज एवं हेनीज विचरिच, इशनशियल्स ऑफ मैनेजमेन्ट, मैग्राहिल इन्टरनेशनल, नई दिल्ली-2000,

11.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. प्रशान्त के0 घोष, कार्यालय प्रबन्धन, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, 2000,
2. डॉ0 जे0 के0 जैन, प्रबन्ध के सिद्धान्त, प्रतीक पब्लिकेशन, इलाहाबाद-2002,
3. डॉ0 एल0 एम0 प्रसाद , प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली।

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रबन्ध की शास्त्रीय विचारधार के प्रवर्तन हेनरी फेयोल के योगदानों को विस्तार से समझाइये।
2. फोलेट द्वारा प्रस्तुत प्रत्यक्ष सम्पर्क के सिद्वान्ता का वर्णय करिये।
3. गुलिक द्वार प्रतिपादित 'पोस्डकार्ब' की अवधारणा को विवेचित करिये।
4. ऐल्टन में मो द्वारा प्रस्तुत हाथोर्न प्रयोग को विस्तार से समझाइये।
5. डगलस मैग्रेगर द्वारा प्रस्तुत 'एक्स' तथा 'वाई' सिद्वान्तों के महत्व को रेखांकित करिये।

इकाई- 12 संगठन के सिद्धान्त- पदसोपान, नियंत्रण का क्षेत्र, आदेश की एकता

इकाई की संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 पदसोपान
12.3 नियंत्रण का क्षेत्र
12.4 आदेश की एकता
12.5 सारांश
12.6 शब्दावली
12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
12.10 निबंधात्मक प्रश्न

12.0 प्रस्तावना

अभी तक के अध्ययन में आप पूर्णतया संगठन की अवधारणा तथा इसकी विभिन्न विचारधाराओं से जुड़े विद्वानों के मतों का विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई संगठन से वास्तविक तथा कार्यात्मक सिद्धान्तों का विस्तार से विवेचना करने का प्रयास करेगी। अध्ययन की सुविधा तथा क्रमबद्धता को ध्यान में रखते हुये इन सिद्धान्तों में पदसोपान, नियंत्रण का क्षेत्र तथा आदेश की एकता को सम्मिलित किया गया है।

12.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संगठन के प्रथम सिद्धान्त पदसोपान के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- नियंत्रण के क्षेत्र की अवधारणा का विश्लेषण कर सकेंगे।
- आदेश की एकता सम्बन्धी सिद्धान्त की विवेचना कर सकेंगे।

12.2 पदसोपान

प्रशासनिक दृष्टि से देखा जाय तो पदसोपान का अर्थ किसी अधीनस्थ पर वरिष्ठ की सत्ता या उच्चता से है। यह एक ऐसा बहुस्तरीय संगठन है, जिसमें क्रमवार कई स्तर होते हैं जो आपस में एक-दूसरे से जुड़े होते हैं। यह एक ऐसी व्यवस्था है, जिससे किसी संगठन के विभिन्न व्यक्तियों के प्रयासों को एक-दूसरे से समन्वित ढंग से सम्बन्धित किया जाता है। संगठन के विभिन्न सिद्धान्तों में का पदसोपान स्थान महत्वपूर्ण एवं प्रथम है। दूसरे शब्दों में यह अधिकार और आदेश की शीर्ष स्तरीय व्यवस्था है।

संगठन का एक सार्वभौमिक सिद्धान्त है पदसोपान, पदसोपान के अभाव में किसी संगठन की कल्पना सम्भव नहीं हो सकती है। इसलिए यह सभी संगठनों की एक आधारभूत आवश्यकता होती है। प्रत्येक प्रशासकीय संगठन पदसोपान के रूप में गठित होता है। अतः शिखर से नीचे तक उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के सम्बन्धों को परस्पर सम्बद्ध करने की व्यवस्था को ही पद-सोपान की संज्ञा दी जाती है।

संगठन सिद्धान्त के पितामह फेयोल के अनुसार उच्चतम प्रबन्ध से न्यूनतम पदों तक की श्रृखला ही पद सोपान के नाम से जानी जाती है। इसमें आदेश ऊपर से नीचे तथा एक क्रम में चलने चाहिये। पदसोपान में उत्तरदायित्व के अनेक स्तर होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य होता है कि जहाँ तक सम्भव हो अधीनस्थ को अपने वरिष्ठ की सत्ता का उल्लंघन नहीं करना है। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर तथा शीघ्र निर्णय लेने के लिये, फेयोल के अनुसार कभी-कभी इस क्रम को तोड़ा भी जा सकता है। है।

संगठन में इन सम्बन्धों से पिरामिड आकार की संरचना की स्थापना हो जाती है। इस संरचना को मूने और रैले ने सीढ़ीनुमा प्रक्रिया की संज्ञा दी है। संगठन में ''सीढ़ीनुमा'' का तात्पर्य है, अधिकारी तथा संबन्धित दायित्वों के अनुपात में दायित्वों का स्तर निर्धारित करना। मूने के अनुसार यह सीढ़ीनुमा श्रृंखला समस्त संगठनो में पायी जाती है, अतः जहाँ कहीं भी वरिष्ठ और कनिष्ठों के मध्य सम्बन्धों की स्थापना होगी, एक संगठन होगा, वहाँ सीढ़ीनुमा सिद्धान्त भी क्रियात्मक रूप से लागू होगा।

इस सिद्धान्त के अनुसार सभी पदाधिकारियों के मध्य प्रत्यक्ष सम्पर्क होना चाहिये। किसी भी सूचना का संचार सभी सम्बन्धित प्रबन्धकीय पदाधिकारियों के स्तर से होना चाहिये। वरिष्ठ एवं अधीनस्थों के मध्य सम्बन्धों की स्पष्ट श्रृंखला निर्धारित होनी चाहिए और श्रृंखला का उल्लंघन कदापि नहीं किया जाना चाहिए। आज्ञा व लेने-लेने के मार्ग बिल्कुल स्पष्ट होने चाहिये। इस प्रकार पद-सोपान आदेशों का एक प्रवाह बन जाता है।

पदसोपान में चूँकि सत्ता के अनेक स्तर होते हैं। अतः उसमें सत्ता का हस्तान्तरण करना अनिवार्य होता है। उच्च अथवा प्रवर अधिकारी द्वारा प्रत्येक अधीनस्थ कर्मचारी को कार्य का एक क्षेत्र आवंटित किया जाता है। इस आवंटित क्षेत्र में उसे निर्णय लेने का पूर्ण अधिकार होता है। प्रत्यायोजन द्वारा उच्च अधिकारी जो कुछ भी करता है उसके लिये सदा अपने उच्च अधिकारी के प्रति उत्तरदायी होता है।

प्रत्येक आज्ञा, पत्र-व्यवहार, तथा संचार आदि उचित मार्ग द्वारा ही आना जाना चाहिये। अर्थात् तत्काल उच्च अधिकारी द्वारा शिखर अधिकारी तक क्रम से जाना चाहिये। एक लिपिक, प्रधान लिपिक के अधीन है, प्रधान लिपिक एक कार्यालय अधीक्षक के अधीन है तथा कार्यालय अधीक्षक अनुभाग अधिकारी के अधीन है आदि। यदि लिपिक को कोई बात अनुभाग अधिकारी से कहनी है, तो वह प्रधान लिपिक के माध्यम से कार्यालय अधीक्षक तक पहुँचेगा और तब उसके द्वारा अनुभाग-अधिकारी तक पहुँचेगा।

इसी प्रकार यदि अनुभाग अधिकारी लिपिक की कोई आदेश देना चाहता है तो वह आदेश कार्यालय अधीक्षक के द्वारा ही प्रधान लिपिक तक पहुँचना चाहिए और तब उसके माध्यम से लिपिक तक आना चाहिए। उपरोक्त

निर्वचन के उपरान्त पद सोपान सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताओं का प्रतिपादन किया जा सकता है। इन्हें क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें-

1. प्रशासनिक संगठन की क्रिया-कलाप को इकाइयों और उप-इकाइयों में विभाजित करना सम्भव हो जाता है।
2. इन इकाइयों की स्थापना एक के नीचे एक की जाती है, जिससे पिरामिड के आकार की संरचना का निर्माण होता है।
3. विभिन्न स्तरों को से सम्बन्धित अधिकारों एवं उत्तर-दायित्वों का निर्धारण सम्भव हो पाता है।
4. सोपानक्रम पर आधारित संगठन सुव्यवस्थित रूप से उचित माध्यम से सिद्धान्त का पालन करता है।
5. कर्मचारी केवल अपने से निकटतम वरिष्ठ अधिकारी से आदेश माँगता है किसी भी अन्य अधिकारी से नहीं।
6. अधिकार और उत्तरदायित्व में समुचित समन्वय एवं ताल-मेल रेखा जाता है, क्योंकि बिना उत्तरदायित्व के अधिकार खतरनाक होते हैं तथा बिना अधिकार के उत्तरदायित्व महत्वहीन बन जाते हैं।

सोपानक्रम के बिना किसी संगठन की कल्पना करना कठिन है। एक प्रशासनिक संगठन में विभिन्न कर्मचारी एक साथ काम करते हैं। अतः यह वांछनीय है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने कर्तव्यों एव उत्तरदायित्वों का बोध हो। यही नहीं, प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का भी ज्ञान होना चाहिये कि उसके अन्य व्यक्तियों के साथ क्या सम्बन्ध हैं? उसके मस्तिष्क में यह तथ्य स्पष्ट होना चाहिये कि उसे किसकी आज्ञा का अनुपालन करना है। केवल ऐसा होने पर ही संगठन से भ्रम, विवाद तथा मतभेद दूर किये जा सकते हैं और इसे प्रभावी रूप से जनता के प्रति जावबदेह बनाया जा सकता है।

इस प्रकार जो संगठन पदसोपान के अनुसार कार्य करते हैं, उनमें अधिकार एवं सत्ता ऊपर से नीचे की ओर एक-एक सीढ़ी या एक-एक स्तर से उतरते हुए आते हैं। इस सीढ़ीनुमा व्यवस्था की आवश्यकता दो कारणों से पूरी होती है, पहला- कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त करने के उद्देश्य से कार्य को उसके आवश्यक हिस्सों में बाँटवारा। और दूसरा- विशेषाताओं के व्यवहार तथा कार्यों को एक संयुक्त प्रयास में समन्वित ढंग से जोड़ने की प्रक्रिया को प्राप्त करना। पदसोपान में ऊपर या नीचे एक-एक स्तर चढ़ कर या उतर कर आया जाता है। इस प्रकार सोपानक्रम संगठन में संचार तथा सत्ता के विभिन्न स्तरों के मध्य आदेशों की एक श्रृंखला का सशक्त बन जाता हैं। सोपानक्रम सिद्धान्त में यह आवश्यक है कि ऊपर यी नीचे के स्तर से सम्पर्क स्थापित करते समय बीच के किसी भी स्तरा को अनेदेखा न किया जाए। संगठन में सोपानक्रम सिद्धान्त के प्रयोग से होने वाले लाभों को निम्नलिखित ढंग से क्रमबद्ध कर आत्मसात् किया जा सकता है-

1. प्रशासनिक संगठन में उद्देश्यों में एकता होनी चाहिए। यह एकता पद सोपान द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है।
2. संगठन में कार्यों का विभाजन होता है, जिससे विभिन्न कार्य इकाइयाँ अस्तित्व में आती हैं। सोपानक्रम, संगठन की विभिन्न इकाइयों को आपस में समन्वित कर एक संयुक्त ढाँचे की रचना करता है। जिससे संगठनात्मक एकीकरण एवं समन्वय द्वारा संगठन को और प्रभावी बनाया जाता है।
3. इस सिद्धान्त में संगठन में नीचे से ऊपर तक एवं ऊपर से नीचे तक आवश्यक संचार व्यवस्था स्थापित की स्थापना होती है। जिससे प्रत्येक कार्मिक को यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका अगल सम्बन्ध किस कर्मचारी से हैं।

4. यह सिद्धान्त प्रत्येक स्तर और पद पर उत्तरदायित्व निर्धारित करने में सहायक होता है। प्रत्येक कर्मचारी को संगठन में अपनी स्थिति और उत्तरदायित्वों का ज्ञान होता है तथा यह भी मालूम होता है कि वह किसके प्रति प्रत्यक्ष तौर पर उत्तरदायी है।
5. इसके द्वारा उचित माध्यम से व्यवस्था में प्रक्रिया का कड़ाई से नियमानुसार पालन किया जाता है, जिससे आसान तथा भ्रष्ट रास्तों का प्रयोग प्रतिबन्धित हो जाता है।
6. सोपानक्रम के फलस्वरूप उच्चतम स्तर पर काम का भार कम हो जाता है तथा विकेन्द्रीकरण द्वारा निर्णय लेने की प्रक्रिया आसान हो जाती है। संगठन का प्रत्येक कर्मचारी निर्णय लेने और अपने अधीनस्थों के मार्गनिर्देशन के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, जिससे अधीनस्थ कर्मचारियों एवं अधिकारियों में भी संगठन में अपने महत्व की भावना उत्पन्न होती है।
7. सुव्यवस्थित व्यवस्था तथा नियमों का कड़ाई से पालन किये जाने के कारण कर्यों की गति आसान हो जाती है और यह जानना आसान हो जाता है कि किसी कार्य से सम्बन्धित पत्रावली किस कर्मचारी विशेष के पास तथा किन कारणों से अवरूद्ध है।

यद्यपि पदसोपान व्यवस्था की उपयोगिता को सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है। परन्तु साथ ही साथ इस बात का भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि सिक्के के दो पहलू होते हैं। अर्थात इस व्यवस्था के निम्नलिखित दोषों को भी रेखांकित करना आवश्यक है-

यह सिद्धान्त कार्य के निष्पादन में अनावश्यक विलम्ब करता है। इस व्यवस्था में कई दिन सप्ताह तथा महीने लग सकते है। अतः यह सिद्धान्त लालफीताशाही को बढ़ावा मिलता है तथा भ्रष्टाचार का जन्म होता है।

अत्यधिक औपचारिक के कारण संगठन में उच्च अधिकारियों एवं अधीनस्थों के मध्य औपचारिक सम्बन्ध पैदा हो जाते है। ऐसे सम्बन्धों के कारण उच्चतर पदाधिकारियों एवं निम्न पदाधिकारियों के मध्य पारस्परिक सहयोग की भावना में कमी हो जाती है तथा सभी यांत्रिक बनकर मूकदर्शक बने रहते है।

वस्तुतः इस सिद्धान्त के गुणों एवं दोषों को देखते हुए यह सिद्ध हो जाता है कि संगठन में पदसोपान के दोषों की अपेक्षा उसके लाभ की अधिकता है। यदि उच्च एवं निम्न अधिकारियों के मध्य समुचित निष्ठा एवं विश्वास पैदा हो जाये, तो कार्य के विलम्ब के दोषों तथा उच्चाधिकारियों एवं अधीनस्थ से उत्पन्न दोषों को निश्चित रूप से कम किया जा सकता है। जिससे एक प्रशासनिक संगठन को अधिक पारदर्शी, जवाबदेह तथा प्रभावी बनाया जा सकता है।

12.3 नियंत्रण का क्षेत्र

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है कि प्रशासनिक संगठन में किसी अधिकारी का कार्य-क्षेत्र कितना होना चाहिए? नियन्त्रण के माध्यम क्या होने चाहिये? इन प्रश्नों के उत्तर के रूप में 'नियंत्रण का क्षेत्र' नामक सिद्धान्त की स्थापना की गयी है। संगठन में आधिकारी के पास अधिक कार्य भी नहीं होना चाहिये और कम भी नहीं, क्षमता के अनुसार ही कार्य-क्षेत्र निर्धारित होना चाहिये।

लोक प्रशासन के चिन्तकों के अनुसार अधिकारियों का नियन्त्रण क्षेत्र सीमित होना चाहिये, क्योंकि नियन्त्रण क्षेत्र के व्यापक होने पर नियत्रण का प्रभाव कम हो जाता है।

'स्पैन' का शाब्दिक अर्थ वह दूरी है, जो किसी व्यक्ति के अंगूठे और कनिष्ठ ऊंगली को फैलाये जाने से बनती है। जबकि नियंत्रण शब्द का मतलब आदेश-निर्देश या नियंत्रित करने वाले अधिकार या सत्ता से है। लोक प्रशासन में नियंत्रण के क्षेत्र का तात्पर्य उन अधीनस्थ कर्मचारियों से है, जिन पर एक अधिकारी कारगर एवं प्रभावी ढंग से नियंत्रण करता है।

संगठन में एक उच्च अधिकारी को अपने अधीनस्थ कर्मचारी वर्ग की क्रियाओं पर नियन्त्रण रखना होता है। इससे वह आश्वस्त होता है कि प्रत्येक कार्य नियमों एवं निर्देशों के अनुसार किया जा रहा है या नहीं। परन्तु उस नियन्त्रण के क्षेत्र की भी शारीरिक व मानसिक सीमाऐं होती हैं, जोकि एक उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर लागू कर सकता है।

नियन्त्रण के क्षेत्र पर एक महत्वपूर्ण सीमा मानवीय ध्यान-क्षेत्र द्वारा लागू होती है। उदाहरण के तौर पर यह देखा जाता है कि एक व्यक्ति केवल सीमित कर्मचारियों, जैसे- सात, नौ अथवा बारह का ही सक्रिय पर्यवेक्षक कर सकता है। यदि एक उच्च अधिकारी से आशा की जाये कि वह उससे अधिक व्यक्तियों की क्रियाओं का नियन्त्रण करेगा, जितनी कि वह वास्तव में कर सकता है तो उसका परिणाम होगा कार्य में देरी तथा अकुशलता।

अनुसंधानकर्ताओं ने इस तथ्य की खोज के अनेक प्रयास किये हैं कि व्यक्तियों की वह आदर्श संख्या क्या होनी चाहिये जिनकी क्रियाओं पर एक उच्च अधिकारी द्वारा प्रभावी नियन्त्रण किया जा कर सके वस्तुतः ऐसा अनुसन्धान पूर्णतः निरर्थक है। एक अधिकारी द्वारा कितने व्यक्तियों पर प्रभावी नियन्त्रण किया जा सकता है। यह तथ्य नियन्त्रणकर्ता की शक्ति, सौंपे गये कार्य की प्रवृति और कर्मचारियों की शारीरिक स्थिति पर निर्भर करता हैं आइये सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विचार को के मतों को जानने व समझने का प्रयास करें-

- एल0 उर्विक के मतानुसार एक व्यक्ति अधिक से अधिक पाँच या छः सहायक कर्मचारियों की क्रियाओं पर सफलतापूर्वक नियन्त्रण रख सकता है।
- ई0 एफ0 एल0 ब्रीच के मतानुसार एक उच्चधिकारी के अधीन अधीनस्थों की संख्या पर्याप्त है। लिण्डाल के मतानुसार, कोई एक व्यक्ति अपने तुरन्त अधीन अधिक से अधिक पाँच सहायक कर्मचारियों की क्रियाओं का प्रबन्ध कर सकता है।
- हेमिल्टन ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है, सामान्यतया एक मानव तीन से छः मस्तिष्क पर प्रभावी ढंग से नियंत्रण रख सकता है।
- हेनरी फेयोल के विचारानुसार प्रबन्धक पर्यवेक्षक के नियंत्रण में अधिक से अधिक पाँच या छः अधीनस्थ होने चाहिए।

वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि सभी विचारकों में यह सहमति प्रदर्शित होती है कि क्षेत्र जितना छोटा होगा, सम्पर्क उतना ही ज्यादा होगा और परिणाम स्वरूप नियंत्रण अधिक कारगर होगा, क्योंकि शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से मानव क्षमता की एक सीमा होती है। इसलिए कोई वरिष्ठ अधिकारी कितनी भी सक्षम क्यों न हो वह असीमित संख्या में अधीनस्थों का निरीक्षण नहीं कर सकता। एक प्रबन्धक अधिक से अधिक छ: या सात अधीनस्थों के कार्य का नियंत्रण कर सकता है।

12.4 आदेश की एकता

लोक प्रशासन की महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक है सामूहिक साहयोग और समन्वय से काम करवाना, जिससे संगठन के सदस्य एक उद्देश्य के लिये, एक शक्ति से, एक स्वर से निरन्तर कार्य करें न कि एक-दूसरे के विरूद्ध कार्य निष्पादन में।

इस सिद्धान्त के अनुसार आदेश में एकता होनी चाहिये। इसके लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक कर्मचारी को आदेश एक ही अधिकारी द्वारा दिये जाये। जिससे वह उसके प्रति जावबदेह रहे। इससे उनके मन में कोई आशंका नहीं होती, क्योंकि अनेक अधिकारियों द्वारा दिये गये आदेश एक-दूसरे के प्रतिकूल भी हो सकते हैं। इससे वह

अपने उत्तरदायित्व का ठीक प्रकार से निर्वाह नहीं कर पाता, अनुशासन खतरे में पड़ जाता है। जिससे उपक्रम में शान्ति एवं स्थिरता का खतरा पैदा हो जाता है।

आदेश की एकता से कर्मचारियों में कार्य के प्रति न हो भ्रान्तियाँ पैदा होती हैं, न ही गलतियाँ और न ही कार्यसम्पन्न करने में अनावश्यक विलम्ब होता है, जिससे वे सदैव आत्मविश्वास के साथ कार्य करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार वह स्थिति बड़ी अवांछनीय होती है जब संगठन में किसी सदस्य को ऐसी स्थिति में रख दिया जाता है, जबकि उसे एक से अधिक उच्च अधिकारियों के आदेश प्राप्त होते हैं।

एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यक प्रश्न यह है कि क्या व्यवहार में संगठनों में आदेश की एकता को अपनाया जा सकता है। एक उदाहरण द्वारा इस प्रश्न पर विचार करें- मुख्य सचिव प्रदेश स्तर पर कृषि, पशुपालन, सहकारिता, कानून-व्यवस्था, शिक्षा, चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवाओं जैसे सभी विभागों और कार्य-कलापों का प्रमुख होता है। इस प्रकार अगर देखा जाये तो प्रदेश के सभी विभागों के कर्मचरियों को सीधे उसी से आदेश लेने चाहिये, लेकिन व्यवहार में वे अपने प्रमुख सचिवों और विभागीय प्रमुखों दोनों से आदेश लेते हैं। विभागीय प्रमुख सचिव तथा मंत्री महोदय दोनों से आदेश लेते हैं। इस तरह, आधुनिक संगठनों की एकता लागू कर पाना मुश्किल होता है।

इस तरह समावेश की एकता में महत्व एकता का है न कि समावेश का। एकता का मतलब संगठन के काम में एकरूपता से है। आदेश में एकता का क्षेत्र अधिकारियों या सामान्य प्रशासकों और तकनीकी अधिकारियों द्वारा कर्मचारियों को आदेश दिये जाने से है, जब तक समावेश संगठन के उद्देश्य की एकरूपता के अनुकूल होते है। यह बात महत्वपूर्ण नहीं रहती कि कौन-कौन अधिकारी क्या आदेश दे रहे हैं? उपरोक्त विवेचन से इस सिद्धान्त की निम्नलिखित विशेषताओं का अध्ययन किया जा सकता है। इसे क्रमबद्ध कर समझनें का प्रयास करें-

- आदेश की एकता से सत्ता या संगठन से सम्बद्ध सूत्रों का स्पष्टीकरण होता है।
- आदेश की एकता से कार्य व आदेश के उत्तरदायित्व का निर्धारण होता है।
- आदेश की एकता से इन बात की भी सम्भावना हो जाती है कि अनेक विरोधी आदेशे का लाभ उठाकर कर्मचारी व अधिकारियों के बीच मनमुटाव पैदा करा सकते हैं।
- निर्देशों में परस्पर विरोध का अभाव दृष्टिगत हो सकता है।
- कर्मचारियों का प्रभावपूर्ण निरीक्षण, पर्यवेक्षण व नियंत्रण सम्भव होता है।
- विभिन्न कार्यों के लिये उत्तरदायित्व का स्पष्ट निर्धारण किया जाता है, जिससे कार्य निस्पादन गुण से युक्त होता है।

वस्तुतः आदेश की एकता कार्मचारियों को उद्देश्य के प्रति सजग, समर्पित और कार्य-कुशल बनाती है।

अभ्यास प्रश्न-

1. 'संगठन सिद्धान्त' के पितामह किसे माना जाता है?
2. संगठन संरचना की तुलना सीढ़ी सरंचना से किस विद्वान ने की है?
3. पदसोपान व्यवस्था में कितने स्तर होते हैं?
4. लोक प्रशासन में 'नियंत्रण का क्षेत्र' किससे सम्बन्धित है?
5. नियंत्रण के लिये किसने कहा कि 'यह पाँच या छः सह कर्मियों की क्रियाओं को सुव्यवस्थित कर सकता है।'

12.5 सारांश

वर्तमान युग सूचना प्रोद्योगिक और ज्ञान का युग है, जब प्रशासनिक संगठनों की जवाबदेही ही सुनिश्चित करना एक राज्य का सर्वोच्तम प्रयास माना जाने लगा है। ऐसी संगठनात्मक कार्यकुशलता, पारदर्शिता और प्रभावपूर्णता बनाये रखने के लिये संगठन की संरचना में लोक प्रशासन के विचार को वर्णित सिद्धान्तों द्वारा कठोरता से अनुपालन किया जाना अनिवार्य है।

12.6 शब्दावली

प्रशासनिक दृष्टिकोण- प्रबन्ध के कार्यों तथा उनके निष्पादन के लिए आवश्यक गुणों के सन्दर्भ में प्रबन्ध न प्रक्रिया का विश्लेषण करना।

तंत्र विचारधारा- संतुलित तथा एकीकृत तंत्र के रूप में प्रबन्ध को समझना।

समग्र अध्ययन- किसी कार्य का निष्पादन करने में लगने वाले समय का मापन व विश्लेषण करने के लिए प्रयोग की जाने वाली तकनीक।

नियंत्रण का विस्तार- एक प्रबन्ध क के द्वारा प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण करने के लिए सीमित कर्मचारियों की संख्या का निर्धारण।

आदेश की सोपान श्रृंखला- उच्चतम अधिकारी से लेकर नीचे के स्तर तक उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच अधिकार सम्बन्ध का यह सोपान बोध कराती है। इसमें अधिकारियों की कड़ी होती है, जो दोनों ही दिशाओं, (ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर) में संवहन के लिए कड़ी के रूप में कार्य करते हैं।

प्रबन्ध की सार्वभौमिकता- प्रबन्ध विज्ञान के मूल अथवा प्रमुख तत्व, सिद्धान्त अवधारणाऐं सभी प्रकार की परिस्थितियों में सभी स्थानों पर लागू होते हैं। व्यवहार में उनका प्रयोग सांस्कृतिक अंतरों, संभाव्यताओं अथवा परिस्थितियों के अनुसार किया जाता है।

आदेश की सोपान श्रृंखला- उच्चतम अधिकारी से लेकर नीचे के स्तर तक उपक्रम में कार्य करने वाले व्यक्तियों के बीच अधिकार सम्बन्ध का यह सोपान बोध कराती है, इसमें अधिकारियों की एक श्रंखला होती है जो दोनों ही दिशाओं(ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर) में संवहन के लिए कड़ी के रूप में कार्य करते हैं।

प्रबन्ध अथवा नियंत्रण का विस्तार- एक प्रबन्ध क के द्वारा प्रभावपूर्ण पर्यवेक्षण करने के लिए सीमित कर्मचारियों की संख्या निर्धारण।

12.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. फेयोल, **2.** मूने तथा रेले , **3.** संगठन की आवश्यकता एवं प्रकृति के अनुसार, **4.** आदेश, **5.** उर्विक

12.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Bhattacharya, Mohit, 1987 Publi Administration, The World Press Private Ltd: Calcutta.
2. Prasad, Ravindra D. Etc. al 9eds.) 1989 Administrative thinkers:Sterling Publishers: New Delhi.
3. चतुर्वेदी, त्रिलोक नाथ, 1989 तुलनात्मक लोक प्रशासन, रिसर्च पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
4. Avasth, A., & maheshwari S, 1984 Public Adiministration; Lakshmi Narain Agarwal; Agra

12.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Baker R.J.S. 1972 Adiministrative Theory and Aublic Administration; Hut Chinos: London.

2. Gros Betras, 1964 the Managing Organisations: The Administrative Struggle Vol: The Fee Press of Glencoe : London.
3. Gulick L. and Urwick L. (rds.) 1937 Papers on Science of Administeation ; The Institute of Public Adminisration ; Columbia Unviersity : New Yrk.
4. Prasad, Ravindra, D.(ed) 1989 Adninistrative Thinkers: Sterling Pulishers; New Delhi.

12.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. पदसोपन की अवधारण को समझाते हुए स्पष्ट करिये कि पदसोपान किसी संगठन के लिये क्यों आवश्यक है?
2. नियंत्रण तथा पर्यवेक्षण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, टिप्पणी करें।
3. संगठन के लिये आदेश की एकता का क्या महत्व है? प्रशासनिक संगठन में इसे कैसे स्थापित किया जा सकता है?
4. नियंत्रण का विस्तार करते समय किन तथ्यों की जानकारी होना आवश्यक है?
5. क्या प्रभावी नियोजिन ही प्रभावी नियंत्रण का आधार बन जाता है? टिप्पणी करें।

इकाई- 13 समन्वय, प्रत्यायोजन, पर्यवेक्षण, केन्द्रीकरण, विकेन्द्रीकरण

इकाई की संरचना

13.0 प्रस्तावना
13.1 उद्देश्य
13.2 संगठन के सिद्धान्त
    13.2.1 समन्वय
    13.2.2 प्रत्यायोजन
    13.2.3 पर्यवेक्षण
    13.2.4 केन्द्रीकरण
    13.2.5 विकेन्द्रीकरण
13.3 सारांश
13.4 शब्दावली
13.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
13.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
13.8 निबंधात्मक प्रश्न

13.0 प्रस्तावना

यह सर्वविदित है कि प्रशासनिक संगठन नियमों और सिद्धान्तों के आधार पर अपनी संरचना और दैनिक क्रिया कलापों को अगली जामा पहनाते हैं पिछली इकाई ने संगठन के आधार भूत तीन सिद्धान्तों को विस्तृत विवेचना प्रस्तुत की है। वर्तमान इकाई वस्तुतः उन सिद्धान्तों का विवेचन करेगी जिनका उपयोग क्रियात्मक रूप से संगठन को प्रत्यायोजन, पर्यवेक्षण, केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण को सम्मिलित किया गया है।

13.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के उपरान्त आप-

- संगठन में समन्वय के सिद्धान्त और प्रत्यायोजन के सिद्धान्त के समझ सकेंगे।
- संगठन में पर्यवेक्षण के सिद्धान्त की विवेचना कर सकेंगे।
- संगठन में केन्द्रीकरण की अवधारणा का विवेचन कर सकेंगे।
- संगठन में विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्त के आत्मसात कर सकेंगे।

13.2 संगठन के सिद्धान्त

संगठन के सिद्धान्तों को निम्नलिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझने का प्रयास करते हैं-

13.2.1 समन्वय

समन्वय से आशय विभिन्न उत्पन्ति के साधनों और उनकी क्रियाओं को इस तरह से क्रमबद्ध से है, जिससे कि प्रभावी ढंग से संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त किया जा सके। एक प्रशासक अपने अधीनस्थ कर्मचारियों एवं अधिकारियों के मध्य सामूहिक प्रयासों को इस प्रकार सुव्यवस्थित करता है कि सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति में सभी का योगदान सकारात्मक हों।

सामान्यतः समन्वय यह सुनिश्चित करता है कि एक कर्मचारी दूसरे कर्मचारी के कार्यों में सहयोग दे। इसके अभाव में सामूहिक प्रयासों की सही दिशा नहीं दी जा सकती है। यह संगठन का हृदय हैं, जिसमें सर्वोच्च अधिकारी से लेकर नीचे स्तर तक के श्रमिकों को उद्देश्य प्राप्ति के लिए समन्वित प्रयास हेतु प्रेरित किया जाता है। इससे गुणवत्ता के साथ- समय-बद्ध कार्य का निष्पादन सम्भव हो पाता है।

इस प्रकार संगठन के लक्ष्य को ध्यान में रखकर संगठन के अधीनस्थों तथा विभागों में एकीकरण करने की प्रक्रिया इसमें समाहित होती है। संगठन में प्रशासक के अनेक कार्य होते हैं, जैसे- नियोजन, नियंत्रण, नियुक्तियाँ, संगठन, अभिप्रेरणा आदि। इन सभी में समन्वय रखना उसके लिये अति महत्वपूर्ण प्रकार्य होता है। अतः सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संस्था के मानवीय एवं भौतिक संसाधनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया जाता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझने का प्रयास करें-

जिस प्रकार भारतीय क्रिक्रेट टीम के खिलाड़ी दूसरी टीम पर उसी दशा में जीत प्राप्त प्राप्त करतें हैं, जबकि टीम के समस्त खिलाड़ी आपस में समन्वय रखते हुए अपनी भूमिकाओं का निर्वहन करें। ठीक उसी प्रकार संगठन के कर्मचारी भी संगठन के पूर्व-निर्धारित लक्ष्यों को तभी प्राप्त कर सकते हैं, जब उनके कार्यों में समन्वय हो। इस प्रकार समन्वय प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य है। समन्वय को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से समझाने का प्रयास किया है। अत: इसकी विभिन्न परिभाषाओं को समझने का प्रयास करें-

हेनरी फेयोल के शब्दों में, ''समन्वय से अभिप्राय किसी संगठन की सभी क्रियाओं में एकरूपता स्थापित करने से है, जिससे उसकी कार्यशीलता तथा सफलता सम्भव हो सके।''

मूने तथा रैले के अनुसार, ''कार्य की एकता की स्थापना हेतु सामूहिक प्रयास का व्यवस्थित आयोजन ही समन्वय कहलाता है।''

न्यूमैन के अनुसार, ''समन्वय का सम्बन्ध व्यक्तियों के एक समूह के कार्यों को व्यवस्थित ढंग से जोड़ने तथा उनमें एकरूपता लाने से है।''

कूण्टज 'ओ' डोनेल के अनुसार, ''समन्वय प्रबन्ध का सार है, जो एक समूह के लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तिगत प्रयासों में एकरूपता लाने के लिए किया जाता है।''

मैरी पार्कर फोलेट के अनुसार, ''यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। अतः प्रारम्भ से ही संस्था की क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना चाहिए, क्योंकि बाद में इसकी स्थपना करना अत्यन्त कठिन हो जाता है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समन्वय संगठन में पारस्परिक विरोध व कटुता को दूर करता है, जिससे सहयोग पूर्ण वातावरण का निर्माण करता है। चूँकि प्रत्येक संगठन में विभिन्न योग्यताओं, इच्छाओं, दृष्टिकोणों तथा आकांक्षाओं वाले व्यक्ति कार्य करते हैं, अतः यदि इस विविधता को उद्देश्य की एकता में रूपान्तरित न किया जाये तो परिणाम नकारात्मक होंगे। वस्तुतः समन्वय ही वह कला है जो अनेकता को एकता में परिवर्तित कर संगठन को कार्यकुशल एवं प्रभावी बनाता है। लोक प्रशासन के विचारक समन्वय के अन्तर्गत निम्नलिखित क्रियाओं को सम्मिलित करते हैं-

- संगठन की समस्त क्रियाओं में प्रारम्भ से ही समन्वय स्थापित करना चाहिए।
- विभिन्न अधिकारियों द्वारा किसी निर्णय पर सामूहिक विचार-विमर्श करना चाहिए।
- अधिकारियों एवं कर्मचारियेां के मध्य प्रत्यक्ष सम्प्रेषण व्यवस्था स्थापित करना चाहिए।
- सेवी-वर्गीय विभागों की आन्तरिक क्रियाओं में समन्वय स्थापित करना चाहिए।

उपरोक्त क्रियाओं के पश्चात समन्वय को निम्नलिखित ढंग से सूची-बद्ध कर आत्मसात् किया जा सकता है। इन्हें समझने का प्रयास करें-

- समन्वय एक सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। यह स्थिर न होकर गत्यात्मक हैं जो कि किसी निश्चित उद्देश्य के लिए क्रियान्वित की जाती है।
- समन्वय आयोजना, संगठन, अनुमान तथा नियन्त्रण के समन्वय का मूर्त विज्ञान है।
- समन्वय की आवश्यकता सभी व्यावसायिक, गैर-व्यावसायिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक संगठनों में उनेक प्रारम्भिक कार्यों से ही प्रारम्भ हो जाती है।
- संगठन की कार्यकुशलता उचित समन्वय पर ही निर्भर करती है। जितना कुशल समन्वय होगा, संगठन उतना ही सुचारू रूप से अपने कार्यों का निष्पादन करेगा।

इस प्रकार कार्य की एकता की स्थापना हेतु सामूहिक प्रयास की नियमित व्यवस्था ही समन्वय का मूल आधार है। एक ओर जहाँ समन्वय के विभिन्न लाभ हैं, वही दूसरी ओर इसके महत्वपूर्ण कार्य भी है। जिन्हें अध्ययन को पूर्णता प्रदान करने हेतु वर्गीकृत कर अध्ययन किया जाना आवश्यक हैं। इन्हें विश्लेषित करने का प्रयास करें-

- बिना समन्वय के एक संस्था के कर्मचारी विभिन्न दिशाओं में भटक सकते हैं, समन्वय समूह के सदस्यों में समान उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए सामूहिकतर की भावना को जगाने का प्रयास करता है।
- सामान्यतया यह देखा गया है कि एक ही संगठन के विभागीय उद्देश्य व वैयक्तिक उद्देश्य परस्पर विरोधी होते हैं। जिससे संसाधनों का दुरूपयोग प्रारम्भ हो जाता है। ऐसे विरोधों को दूर कर संसाधनों का सदुपयोग संभव बनाने का कार्य करता है।
- निजीकरण उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के कारण प्रशासनिक संगठन के आकार में बहुत अधिक वृद्धि होने लगी है। इनका बढ़ता हुआ आकार जटिल संगठन संरचना तथा दोषपूर्ण सम्प्रेषण को जन्म देता है और ऐसी दशा में संगठन में प्रवाहपूर्ण कार्य-प्रणाली के लिये समन्वय की आवश्यकता बढ़ जाती है।
- जब समूह का मिला-जुला प्रभाव समूह के प्रत्येक सदस्य के पृथक-पृथक किये जा सकने वाले योगदान के योग से अधिक हो तो इसे सिनर्जी लाभ कहा जाता है। समन्वय द्वारा एक संगठन को सिनर्जी लाभ होता है, क्योंकि समन्वय द्वारा वैयक्तिक प्रयास समूह प्रयास में बदल दिये जाते हैं और संगठन की कुल कार्यक्षमता बढ़ जाती है।
- समन्वय के अन्तर्गत ऐसी योजनाओं का निर्माण किया जाता है जो कि अधीनस्थ कर्मचारियों की गतिविधियों में उचित समन्वय स्थापित करने में सर्वथा सक्षम हों तथा जो उनकी गतिविधियों का नियमन कर सकें।

अब तक के विश्लेषण से आप समन्वय के सिद्धान्त के अनुप्रयोगों से भली-भाँति परिचित हो चुके हैं। अब प्रश्न यह उठाता है कि क्या समन्वय लागू करने की कोई प्रक्रिया भी है? समन्वय को क्रियान्वित करने की निम्नलिखित विधियाँ हैं। इन्हें क्रमबद्ध कर समझनें का प्रयास करें-

- नियेाजन- नियोजन को समन्वय की तरफ बढ़ा हुआ प्रथम कदम मानते हैं। यह साधन, कर्मचारी-वर्ग एवं उनके व्यवहार आदि से प्रत्यक्ष सम्बन्धित होता है। एक अच्छे नियेाजन का कार्य आधी सफलता की गारण्टी होता है। अतः संगठन में कुशल समन्वय के लिये प्रभावी नियोजन का होना अवश्यक है।
- समन्वय- संगठन के समस्त अनुभाग समन्वय में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, प्रशासन में विभिन्न प्रकार के विवाद उठते हैं, जिनका समाधान समन्वय के द्वारा किया जाता है। अतः विभागीय स्तर पर समन्वय की स्थापना, प्रभावी समन्वय का द्वितीय चरण है।
- लेखा विभाग- किसी भी संगठन का 'लेखा विभाग मंत्रालय' स्वयं एक महत्वपूर्ण समन्वयकर्ता है। प्रशासकीय विभाग लेखा विभाग में अपनी वित्त सम्बन्धी माँगे प्रस्तुत करते हैं और ऐसा करने में वे अक्सर समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाते हैं। बजट-निर्माण के क्रम में लेखा विभाग को विभिन्न प्रकार की समन्वयकारी भूमिका निभानी पड़ती है। अतः आवश्यकतानुसार समन्वय स्थापना में लेखा एवं वित्त अनुभाग की सहायता ली जा सकती है।
- अन्तर्विभागीय समितियां- प्रशासनिक विभागों के बीच उत्पन्न होने वाले विवादों और मतभेदों को सुलझाने में प्रशासनिक क्रियाओं और विभागीय समितियों का महत्वपूर्ण स्थान होता है। अतः इन समितियों की स्थापना एवं कुशल प्रयोग समन्वय को प्रभावी बनाता है।
- संचार के साधन- संचार के साधन भी समन्वय स्थापना में महत्वपूर्ण होते हैं। संचार के साधनों द्वारा लिखित या अलिखित सूचनाओं, आज्ञाओं, निर्देशों आदि को एक अधिकारी से दूसरे अधिकारी तक पहुँचाया जाता है, जिससे समन्वय की प्रक्रिया आसान हो जाती है।

13.2.2 प्रत्यायोजन

आज सूचना-क्रान्ति के युग में किसी एक व्यक्ति के लिये उपक्रम की सम्पूर्ण व्यवस्था पर नियन्त्रण रखना सम्भव नहीं है। इसलिये व्यक्ति अपना कार्य अन्य व्यक्तियों को सौंप देते हैं। इस प्रकार से अपने कार्य-भार को दूसरे व्यक्तियों को सौंपना ही प्रत्यायोजन कहलाता है। अतः यदि कोई अधिकारी स्वयं कार्य करने में समर्थ नहीं है तो उसके लिए उसे अपने अधिकारों को हस्तान्तरित करना होता है।

दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति को जिसे कुछ कार्य सौंपे जायें तो आवश्यक है कि उसे कुछ अधिकार भी प्रदान किये जायें, क्योंकि अधिकारों के बिना कोई भी व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पूर्णतया पालन करने में असमर्थ रहेगा। अतः यह आवश्यक है कि यदि किसी व्यक्ति को कोई कार्य सौंपा जाये तो उसे कुछ अधिकार भी प्रदान किये जाये। अधिकारों के इस प्रकार के हस्तान्तरण को ही अधिकारों के प्रत्यायोजन की संज्ञा दी जाती है। इस सम्बन्ध में लोक प्रशासन के विद्वानों ने विभिन्न परिभाषाऐं प्रस्तुत की हैं-

एफ0 जी0 मूरे के अनुसार, ''अधिकार प्रत्यायोजन का आशय, कार्यों का अन्य व्यक्तियों को हस्तान्तरण तथा उस कार्य को करने की शक्ति का हस्तांतरण है।''

लुईस ए0 ऐलन के अनुसार, ''प्रत्यायोजन एक क्रियात्मक संचालन शक्ति है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसका अनुसरण करते हुए एक प्रशासक अपने कार्य को इस तरह विभाजित करता है कि इसका ऐसा भाग जो केवल वह स्वयं ही संगठन में अपनी अद्वितीय स्थिति के कारण प्रभावपूर्णता के साथ कर सकता है, वह स्वयं करता है और अन्य भागों के सम्बन्ध में ही दूसरों से सहायता लेता है।''

उपरोक्त दृष्टिकोणों के आधार पर प्रत्यायोजन की निम्नलिखित विशेषताओं की स्थापना की जा सकती है-

- प्रत्यायोजन संगठन की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अधिकारों या सत्ता का एक भाग अधीनस्थों को सौंपा जाता है। इसमें अधिकारों का स्तान्तरण किया जाता है।

- प्रत्यायोजन के बाद भी इस क्रिया को करने वाले अधिकारी के पास अधिकार बने रहते हैं। इस प्रकार यह अधिकारों का वितरण है, ना कि विकेन्द्रीकरण।
- प्रत्यायोजन उपरिगामी तथा पार्श्विक प्रकृति का भी हो सकता है। जिससे अधीनस्थों की अधिकार-सीमा स्पष्ट होती है।
- प्रत्यायोजन का अर्थ अधिकार त्यागना नहीं है, बल्कि अधिकारों को सौंपना होता है जिससे निष्पादन सरल हो सके।
- प्रत्यायोजन सौंपे गये अधिकारों को कभी भी कम या अधिक कर सकता है।
- प्रत्यायोजन में उस व्यक्ति के कार्य की सीमाऐं भी निश्चित की जाती हैं, जिसे अधिकार सौंपे गये हैं।
- प्रत्यायोजन का उद्देश्य प्रशासकीय एवं क्रियात्मक दक्षता को बढ़ाना होता है। यह सदैव सिद्धान्तों के आधार पर किये जाते हैं।
- ऐसे अधिकारों का प्रत्यायोजन कदापि नहीं किया जा सकता जो स्वयं के पास न हो।
- प्रत्यायोजन में कार्य निष्पादन हेतु अधिकारों का प्रत्यायोजन किया जाता है, न कि पद का।

अब तक हम यह अच्छी तरह जान चुके हैं कि व्यस्तताओं एवं जटिलताओं के कारण कोई भी प्रशासक संगठन की समस्त क्रियाओं का सफल संचालन नहीं कर सकता, क्योंकि प्रायः एक प्रशासक को संगठन की समस्त क्रियाओं का ज्ञान थोड़ा ही होता है। आधुनिक समय में प्रशासक के लिये निम्नलिखित कारणों से प्रत्यायोजन करना आवश्यक होता है। उन कारणों को क्रमबद्ध कर समझने का प्रयास करें-

- कोई भी प्रशासक कितना ही योग्य क्यों न हो, वह संगठन की समस्त क्रियाओं पर अकेला नियन्त्रण नहीं रख सकता। इसके अतिरिक्त यदि कोई प्रशासक संगठन की विविध क्रियाओं को करना भी चाहे तो, वह अनेक महत्वपूर्ण कार्यों को समय पर पूरा नहीं कर सकेगा। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक मानव अपूर्ण है। अतः इस मानवीय अपूर्णता के कारण प्रत्यायोजन करना आवश्यक हो जाता है।
- आधुनिक युग विशिष्टीकरण का युग है और किसी भी एक व्यक्ति के लिये यह सम्भव नहीं है कि वह सभी क्षेत्रों की क्रियाओं में विशिष्टता प्राप्त कर ले। अतः प्रशासकों को विशेषज्ञों के कार्यों का प्रत्यायोजन करना पड़ता है।
- आधुनिक संचार और सूचना-क्रान्ति के युग में समाज की बढ़ती हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये संगठन को अपने कार्यात्मक-क्षेत्र के आकार में विस्तार करना पड़ता है। विस्तार करने के लिये अनेक शाखाऐं अथवा उप-विभागों की स्थापना करनी पड़ती है। इन नये उप-विभागों की क्रियाओं को संचालित करने के लिये प्रत्यायोजन की निरन्तर आवश्यकता पड़ती है।
- उच्च अधिकारी अपने अधिकारों एवं कर्तव्यों का प्रत्यायोजन करके निम्न स्तर के प्रबन्ध अधिकारियों को महत्वपूर्ण विषयों एवं समस्याओं पर निर्णय लेने के अवसर प्रदान करते हैं। इसे निम्न स्तर के कर्मचारियो में भी आवश्यक गुणों का विकास होता है और भविष्य में अच्छे कर्मचारी आसानी से उपलब्ध हो जाते हैं।

उपयुक्त विवेचन के आधार पर प्रत्यायोजन की आवश्यकता के समबन्ध में कहा जा सकता है कि जिस प्रकार अधिकार प्रशासन के कार्य की कुन्जी है, ठीक उसी प्रकार अधिकार का प्रत्यायोजन संगठन की कुन्जी है। आधुनिक समय में प्रशासनिक संगठन अधिकारों का प्रत्यायोजन किये बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकता।

उपरोक्त आवश्यकताओं के आधार पर लोक प्रशासन के विभिन्न विद्वानों ने प्रत्यायोजन का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है। इसके वर्गीकरण को विस्तार से समझने का प्रयास करें -

- **सामान्य प्रत्यायोजन-** जब संगठन की समस्त क्रियाओं का कार्य-भार किसी एक व्यक्ति को सौंप दिया जाता है, तो यह सामान्य प्रत्यायोजन कहलाता है।
- **निश्चित प्रत्यायोजन-** जब एक व्यक्ति को निश्चित क्रियाओं के सम्बन्ध में ही कार्य-भार सौंपा जाता है, तब निश्चित प्रत्यायोजन अस्तित्व में आता है।
- **लिखित प्रत्यायोजन-** जब कार्य-भार का प्रत्यायोजन लिखित रूप में सौंपा जाये तो इसे लिखित भारार्पण की संज्ञा दी जाती है।
- **मौखिक प्रत्यायोजन-** जब कार्य-भार मौखिक रूप में सोंपा जाये तो उसे मौखिक प्रत्यायोजन के नाम से जानते हैं। इसकी तुलना में लिखित प्रत्यायोजन को संगठन में अधिक श्रेष्ठ माना जाता है।
- **औपचारिक प्रत्यायोजन-** जब प्रत्यायोजन संगठन की अधिकार-रेखा द्वारा निर्धारित सीमाओं के आधार पर होता है तो उसे औपचारिक प्रत्यायोजन के नाम से जाना जाता है।
- **अनौपचारिक प्रत्यायोजन-** इसके अन्तर्गत अधीनस्थ कर्मचारी उच्च-अधिकारियों की आज्ञा पर नहीं, अपितु स्वतः प्रेरणा से कार्य करते हैं। इसका मुख्य उद्देश्य लालफीताशाही को समाप्त कर भ्रष्टाचार का अन्त करना होता है।
- **पाश्विक प्रत्यायोजन-** जब प्रत्यायोजन समस्तरीय अधिकारी को किया जाये तो उसे पर्श्विक प्रत्यायोजन कहा जाता है।
- **अधोगामी प्रत्यायोजन-** अधोगामी प्रत्यायोजन के अन्तर्गत प्रत्यायोजन प्राय उच्च अधिकारी से नीचे के अधिकारी की ओर होता है।

प्रशासकीय संगठनों में प्रत्यायोजन की सफलता से क्रियान्यवयन हेतु, विभिन्न प्रकार के सिद्धान्तों का निरूपण किया गया है। ज्ञातव्य हो कि वे सिद्धान्त संगठन की प्रकृति और उसकी आवश्यकतानुसार परिवर्तनीय हैं। कभी-कभी एक से अधिक सिद्धान्तों का प्रयोग भी लक्ष्यों की सफलता एवं सुव्यवस्थित प्राप्ति के लिये किया जा सकता है।

आइये प्रभावी प्रत्यायोजन के लिये निरूपित कुछ सिद्धान्तों को समझने का प्रयास करें-

- **प्रत्याशित परिणामों के द्वारा कर्तव्यों को सौंपने का सिद्धान्त-** उच्च अधिकारी अपने कर्तव्यों का प्रत्यायोजन अपने अधीनस्थों को करता है। परन्तु ऐसा करते समय उच्च-अधिकारी को चाहिये वह अधीनस्थों को उन उद्देश्यों को स्पष्ट कर दे जिन्हें वह प्राप्त करना चाहता है।
- **अधिकार एवं दायित्व का सिद्धान्त-** इस सिद्धान्त के अनुसार अधीनस्थों को प्रत्यायोजन करते समय उनके अधिकारों एवं दायित्वों को ध्यान में रखा जाता है।
- **पूर्ण उत्तरदायित्व का सिद्धान्त-** कोई भी अधिकारी केवल अपने अधिकारों को प्रत्यायोजन कर सकता है, उत्तरदायित्वों का नहीं। प्रत्येक अधिकारी जो अपने कार्य को अधीनस्थों को सौंपता है, सौंपे गये कार्यों के सम्बन्ध में पूर्ण उत्तरदायित्व उसी अधिकारी का होता है, अधीनस्थों को नहीं।

- **आदेश की एकता का सिद्धान्त-** प्रत्यायोजन की प्रक्रिया सम्पन्न करते समय इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि अधीनस्थों को आदेश केवल उच्च-स्तर से ही प्राप्त हों तथा एक ही अधिकारी आदेश दे।

प्रायः सामान्यज्ञों द्वारा यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या प्रत्यायोजन वास्तव में लाभकारी है? इस सम्बन्ध में लोक प्रशासन के विभिन्न विद्वानों ने एक स्वर में निम्नलिखित लाभों को सूचिबद्ध किया है, जिनके आधार पर प्रशासनिक संगठनों में प्रत्यायोजन किया जाना लाभप्रद होता है। इनको समझने का प्रयास करें-

- प्रत्यायोजन संगठन में प्रभावशाली आधार का कार्य करता है।
- प्रत्यायोजन निर्णय की प्रक्रिया को प्रभावशाली आधार तक पहुँचाने में सहायता होता है, जिससे पारस्परिक सहयोग बढ़ता है।
- इसके द्वारा अधीनस्थों को प्रशिक्षण प्रदान करने में सहायता मिलती है।
- यह पदोन्नति से सम्बन्धित निर्णय लेने में सहायक होता है।
- यह प्रशासनिक पर्यवेक्षण को अधिक प्रभावी बनाता है।
- इसके उपयोग से प्रशासन को नीति-निर्माण करने का पर्याप्त समय मिलता है।
- प्रत्यायोजन के द्वारा संगठन विस्तार में सुगमता होती है।
- इसका क्रियान्वयन उपकरण प्रत्यायोजन को ही माना जाता है।
- यह सदैव अधीनस्थों के मनोबल में वृद्धि कर कार्य-निष्पादन को सुगम बनाता है। इससे अधीनस्थों को व्यक्तिगत विकास में भी सहायता मिलती है।

उपरोक्त लाभों के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि अधिकारों का प्रत्यायोजन अधिकारी एवं अधीनस्थों दोनों के ही हित में है और इससे सम्पूर्ण उपक्रम लाभान्वित होता है तथा जनता के प्रति जवाबदेही सुनिश्चित होती है।

13.2.3 पर्यवेक्षण

जब प्रशासनिक संगठनों में निर्णय निम्न अधिकारियों तक संचारित कर दिये जाये तो पदसोपान में उच्चाधिकारी को अगला कार्य पदसोपान में यह देखना होता है कि उन्हें प्रभावी रूप से क्रियान्वित किया जाये। उनका यह दायित्व है कि वे इस सम्बन्ध में आश्वस्त करते रहें कि संगठन सुचारू रूप से कार्य करता रहे तथा निर्दिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये समन्वित प्रयास निरन्तर किये जाते रहें। प्रशासनिक संगठन की इसी आवश्यकता को ही पर्यवेक्षण कहा जाता है।

इस प्रकार किसी संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किये जाने वाले सामूहिक प्रयास का पर्यवेक्षण करना आवश्यक हो जाता है। दूसरे शब्दों में पर्यवेक्षण से अभिप्राय होता है, कार्यरत कर्मचारियों पर निगरानी रखना। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों के कार्य का निर्देशन और निरीक्षण करता है। इसका मुख्य प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि कर्मचारियों को जो कार्य सौंपे जाते हैं, वे उन्हें भली-भाँति और कुशलता पूर्वक करते हैं या नहीं।

कार्यालय प्रभारी या उसके ऊपर के अधिकारियों से मिले सामान्य आदेशों और निर्देशों को कार्यालय के पर्यवेक्षण स्तर पर कार्यान्वित किया जाता है। रिपोर्टों का तैयार होना, उनको टाइप किया जाना, पत्रों का फाइल होना, बैठकों की व्यवस्था, आगंतुकों का सत्कार कर विवरणियों को तैयार किया जाना तथा इसी प्रकृति के अन्य कार्यों को किया जाना और इन कार्यों के होने वाले परिणाम बहुत कुछ इस बात पर निर्भर करते हैं कि कार्यालय पर्यवेक्षण किस प्रकार का है।

पर्यवेक्षण के दोषपूर्ण या उसमें कमी होने से नीतियों और कार्यक्रमों के सुचारू रूप से कार्यान्वयन में अनेक बाधाऐं आ सकती है। यदि पर्यवेक्षण न किया जाए तो प्रत्येक कर्मचारी कार्यालय के उद्देश्यों को ध्यान में रखे बिना ही अपनी सुविधा के अनुसार मनमनाने ढंग से काम करेगा। कार्यालय के कार्यों में बढ़ती जटिलता के कारण अब पर्यवेक्षण के महत्व को अधिक स्वीकारा जाने लगा है। केवल किताबी ज्ञान प्राप्त व्यक्ति यदि कार्यालय में काम करने आता है तो वह वहाँ हो रहे काम को देखकर ही उन्हें नहीं सीख सकता। इसके लिए तो आवश्यक है कि उसे सतत् मागदर्शन और निर्देशन प्राप्त होता रहे तथा कार्य को सीखने और कुशलता पूर्वक करने की उसे प्रेरणा मिले। कार्यालय पर्यवेक्षण के फलस्वरूप नये तथा पुराने सभी प्रकार के कर्मचारी कार्य को अच्छी तरह से कर पाते हैं।

कार्यालय के पर्यवेक्षण के फलस्वरूप कार्यालय के कार्य समन्वित ढंग से हो पाते हैं। ये कार्य दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक विशेषीकृत होते जा रहे हैं। जिम्मेदारी विभिन्न स्तरों के अधिकारियों के मध्य विभक्त होती है और एक-दूसरे पर निर्भरता भी होती है। इन सबके फलस्वरूप रिपोर्टों, बीजकों और पत्रों के मसोदों को अच्छी तरह से तैयार करने के कार्य में पर्यवेक्षण आवश्यक हो जाता है। चूँकि कार्य अनेक विभागों में होता है, अतः आवश्यक होता है कि काम के सम्बन्ध में कर्मचारी एक-दूसरे से विचार-विमर्श करते रहें।

इस प्रकार पर्यवेक्षण का कार्य करने वाले अधिकारी/कर्मचारी संगठन में कड़ी का काम करते हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार नेता एवं कर्मचारियों के मध्य जितना अधिक व्यक्तिगत व प्रत्यक्ष सम्पर्क होगा, नेतृत्व भी उतना ही अधिक प्रभावशाली होगा।

उपरोक्त विवेचन के उपरान्त पर्यवेक्षण की निम्नलिखित विशेषताऐं दृष्टिगत होती हैं। इनको क्रमशः समझने का प्रयास करें-

1. संगठन में काम करने वाले कर्मचारियों को निरंतर निर्देशित और अभिप्रेरित करना होता है, जिससे वे और अच्छे तरह से काम कर सकें। प्रबन्ध के सबसे नीचे के स्तर पर पर्यवेक्षक होते हैं, जिनका कर्मचारियों के साथ लगातार सम्पर्क होता है तथा उनके दिन-प्रतिदिन के कार्य में वे उनका निर्देशन करते हैं। इस प्रकार पर्यवेक्षक एक सतत् गतिशील प्रक्रिया है।
2. कार्यालय पर्यवेक्षण प्रत्यायोजित कार्य है। कार्यालय के पर्यवेक्षक के पास जो शक्ति होती है, वह उसे अपने ऊपर के अधिकारियों से मिली होती है। कार्यालय का प्रबन्ध क वहाँ के कर्मचारियों के काम के निर्देशन का अधिकार पर्यवेक्षक को सौंप देता है। पर्यवेक्षण प्रत्यायोजित कार्य तो है, परन्तु इसके सम्बन्ध में मुख्य बात यह है कि पर्यवेक्षक के पास अधिकार तो होता है और उसके साथ ही साथ कार्य में लगे हुए कर्मचारियों के काम के सम्बन्ध में जिम्मेदारी भी उसी की होती है।
3. कार्यालय पर्यवेक्षण प्रबन्ध का पहला स्तर है। प्रबन्ध की अनेक श्रेणियों में से पर्यवेक्षण पहली श्रेणी है। पर्यवेक्षक योजना बनाने वाले और उन्हें कार्यान्वित करने वालों के बीच कड़ी का काम करता है। प्रबन्ध के प्रथम स्तर के अधिकारी होने के नाते पर्यवेक्षक के पास कार्य की प्रगति के सम्बन्ध में मूल स्रोत से प्राप्त सूचना होती है और वह कार्य को निर्धारित समय में पूरा कराता है।

   आधुनिक युग में प्रशासकीय संगठन में पर्यवेक्षण का महत्व और भी बढ़ गया है। लोक प्रशासन में नीतियों की रचना, कार्यक्रमों का निर्धारण, बजट-निर्माण तथा कर्मचारियों की नियुक्ति इत्यादि कार्य तभी सफल हो सकता है, यदि उनके कार्यों के पर्यवेक्षण किया जाये। आज के युग में पर्यवेक्षण का स्वरूप पहले की तुलना में बदल गया है। अब इसका उद्देश्य पहले की तरह केवल गलतियों को खोजना नहीं, बल्कि यह देखना है कि कार्य करने की सुविधाऐं कर्मचारी को प्राप्त हैं, या नहीं।

13.2.4 केन्द्रीकरण

जब उपक्रम के उच्च-प्रबन्धकों के द्वारा अधीनस्थों को अधिकारों का भारार्पण नहीं किया जाता है और अधीनस्थ उच्च-प्रबन्ध के निर्देशानुसार ही कार्य करते हैं, तब इस संगठन के प्रारूप को केन्द्रीयकरण की संज्ञा देते हैं। केन्द्रीयकरण एक ऐसी स्थिति होती है, जिसके अन्तर्गत सभी प्रमुख अधिकार किसी एक व्यक्ति या विशिष्ट पद के पास सुरक्षित रहते हैं। अर्थात् इस व्यवस्था के अन्तर्गत अधिकारों का सहायकों को भारार्पण नहीं किया जाता है। वास्तव में कार्य के सम्बन्ध में अधिकांश निर्णय उन व्यक्तियों द्वारा नहीं लिये जाते जो कि कार्य में संलग्न हैं, अपितु संगठन में एक उच्चतर बिन्दु पर लिये जाते हैं। यह अधिकार सत्ता का न्यूनतम प्रत्यायोजन है। केन्द्रीकरण का तात्पर्य है, सत्ता को संगठन के उच्च स्तर पर केन्द्रित करना। इस व्यवस्था के अन्तर्गत नीति-निर्धारण एवं निर्णय लेने की शक्ति को प्रशासनिक संगठन के उच्च अधिकारियों के अधिकार-क्षेत्र में रखा जाता है तथा संगठन के निचले स्तर के अधिकारी निर्देश, सलाह तथा स्पष्टीकरण हेतु ऊपरी स्तर के अधिकारियों पर निर्भर रहते हैं।

लोक प्रशासन के विभिन्न विचारकों ने इस सम्बन्ध में विभिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत किये हैं। इन्हें समझने का प्रयास करें-

1. हेनरी फेयोल के अनुसार, ''संगठन में अधीनस्थों की भूमिका को कम करने के लिए जो भी कदम उठाये जाते हैं, वे सब विकेन्द्रीयकरण के अन्तर्गत आते हैं।''
2. कुण्टज 'ओ' डोनेल के अनुसार, ''केन्द्रीयकरण और विकेन्द्रीकरण में ठीक उतना ही अन्तर है, जितना कि ठण्डे और गरम में पाया जाता है।''
3. लुइस ए0 ऐलन के शब्दों में, ''केन्द्रीयकरण से आशय है कि किये जाने वाले कार्य के सम्बन्ध में अधिकांश निर्णय उन व्यक्तियों द्वारा नहीं लिये जाते हैं जो कि कार्य कर रहे हैं, अपितु संगठन के उच्चतर बिन्दु पर लिये जाते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं के विवेचन के उपरान्त संगठन की निम्नलिखित विशेषताऐं सामने आती हैं। जो इस प्रकार हैं-

1. केन्द्रीयकरण के अन्तर्गत संगठन के समस्त अधिकार एक ही व्यक्ति के पास केन्द्रित कर दिये जाते हैं और वह व्यक्ति ही उपक्रम के सम्पूर्ण कार्यों का निर्देशन करता है।
2. केन्द्रीयकरण व्यक्तिगत नेतृत्व में सहयोगी होता है।
3. एकीकरण व समन्वय सुगम व श्रेष्ठतर होता है।
4. नीतियों, व्यवहारों व कार्यवाहियों में एकरूपता रहती है।
5. आपातकालीन परिस्थितियों और संकट का सामना आसानी से हो सकता है।
6. योजनाओं तथा प्रस्तावों की गोपनीयता बनाई रखी जा सकती है।
7. इसके अन्तर्गत निर्णय परिचालन स्तर पर लेने के बजाए शीर्ष प्रबन्धकों के स्तर या उच्चतर बिन्दु पर लिये जाते हैं।
8. अधिकारों का केन्द्रीयकरण केवल उसी सीमा तक किया जाना चाहिए जो कि श्रेष्ठतम निष्पादन के लिए आवश्यक हो। केन्द्रीयकरण की कोटि का निश्चय संगठन की प्रकृति तथा उसके आकार को ध्यान में रखकर किया जाता है। केन्द्रीयकरण से संगठन को निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं।
    - **एकीकृत व्यवस्था-** संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए उच्च अधिकारियों द्वारा अपने अधीनस्थों को केन्द्रीयकृत आदेश एवं निर्देश देना अत्यन्त आवश्यक होता है। चूँकि केन्द्रीकरण के अन्तर्गत निर्णय शीर्ष अधिकारियों द्वारा लिये जाते हैं, जिससे आदेशों एवं निर्देशों में एकता बनी रहती है। एक क्रम में चलते हुए यह एकीकृत व्यवस्था को जन्म देता है।
    - **क्रियाओं की एकरूपता-** केन्द्रीकरण के अन्तर्गत संस्था के समस्त विभागों को आदेश एक ही केन्द्र-बिन्दु से प्राप्त होते हैं, जिससे इन विभागों की क्रियाओं में एकरूपता बनी रहती है। निर्णयों

में भी एकरूपता रहती है। इस प्रकार सम्पूर्ण संगठन की क्रियाओं में एकरूपता का प्रदर्शन होता है।

- **संकटकाल में सहायक-** प्रशासन जितना केन्द्रित होगा, आपातकालीन निर्णय उतना ही शीघ्रता से लिया जा सकेगा। आपातकाल में सोचने-विचारने का समय कम होता है तथा गलत निर्णय लेने पर परिणाम नकारात्मक भी हो सकते हैं। अतैव केन्द्रीकरण के द्वारा संकटकालीन समस्त निर्णय शीर्षस्थ अधिकारी लेते हैं, जिससे अधीनस्थ चिन्तामुक्त रहते हैं।

यूँ तो केन्द्रीकरण से उपरोक्त लाभ एक संगठन के होते हैं, फिर भी प्रत्येक अवधारणा के जहाँ लाभ होते हैं, वहीं उसकी कुछ हानियों भी होती है। अध्ययन की पूर्णता की दृष्टि से इसके निम्नलिखित दोषों को समझने का प्रयास करें-

- **विकास में बांधक-** उच्च अधिकारियों पर कार्यभार अधिक हो जाने से विलम्ब के साथ-साथ अकुशलता भी बढ़ सकती है।
- **उच्च स्तरीय प्रबन्ध का बोलबाला-** केन्द्रीकरण में शीर्ष प्रबन्ध एवं विभागीय प्रबन्ध के बीच सदैव टकराव की स्थिति बनी रहती है, क्योंकि समस्त अधिकार एवं निर्णय लेने की दक्षता वरिष्ठ अधिकारियों में समाहित कर दी जाती है।
- **संदेशवाहन में अप्रभावी-** अधिकारों और उत्तरदायित्वों के मध्य असन्तुलन भी होता है। केन्द्रीकरण का यह असन्तुलन अधिकारियों और कर्मचारियों के मध्य सम्प्रेक्षण प्रणाली को भी हानि पहुँचता है।
- **संगठन में निराशा-** केन्द्रीकरण में कर्मचारी प्रेरणा का अभाव रहता है तथा उनका मनोबल बढ़ाने के लिए कोई स्पष्ट युक्ति का प्रयोग नहीं होता, जिससे कर्मचारियों का उत्साह व मनोबल गिरता है, जिससे नियन्त्रण शिथिल हो जाता है।
- **निर्णयों में देरी-** वरिष्ठों एवं कर्मचारयों के बीच संघर्ष की आशंका निरन्तर बनी रहती है तो निर्णयों में विलम्ब सामने आता है। कागजी कार्यवाही जटिल हो जाती है।

संक्षेप में केन्द्रीकरण की अवधारणा का लक्ष्य केन्द्रीयकृत कार्य करना है। जिसके लिए अधिकारियों की शाक्ति संगठन के शीर्ष स्तर पर केन्द्रीकृत कर ली जाती है। किन्हीं परिस्थितियों में ये अच्छा परिणाम दे सकते हैं और कभी नकारात्मक परिणाम भी दे सकते हैं।

13.2.5 विकेन्द्रीकरण

आज प्रशासनिक संगठन का सम्पूर्ण कार्य एक व्यक्ति द्वारा सम्पादित नहीं किया जा सकता है, अपितु संगठन के विभिन्न व्यक्तियों को सौंप दिये जाते हैं। इस प्रकार संगठन में केन्द्रीकरण के स्थान पर विकेन्द्रीकरण की अवधारणा जन्म लेती है। यह एक ऐसी व्यवस्था होती है, जिसके अन्तर्गत सभी अधिकार किसी विशिष्ट व्यक्ति या पद के पास एकत्रित न कर उन व्यक्तियों को प्रत्यायोजित कर दिये जाते हैं, जिनसे यह सम्बन्धित होते हैं। संगठन में विकन्द्रीकरण की मात्रा जितनी अधिक होगी उतनी ही अधिक अधीनस्थों की संख्या पर नियंत्रण किया जाना सम्भव हो सकेगा।

1. लुइस ए0 ऐलन के शब्दों में, विकेन्द्रीकरण से आशय केवल केन्द्रीय बिन्दुओं पर ही प्रयोग किये जाने वाले अधिकारों के अतिरिक्त सभी अधिकारों को व्यवस्थित रूप से निम्न स्तरों को सौंपने से है। विकेन्द्रीकरण का सम्बन्ध उत्तरदायित्व के सन्दर्भ में अधिकार प्रदान करने से है।
2. कुण्ट्ज एवं ओ0 डोनेल के अनुसार, अधिकार सत्ता का विकेन्द्रीकरण प्रत्यायोजन का प्राथमिक पहलू है तथा जिस सीमा तक अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं होता है वे केन्द्रित हो जाते हैं।

3. हेनरी फेयोल के शब्दों में, अधीनस्थ वर्ग की भूमिका के महत्व को बढाने के लिये जो भी कदम उठाये जाये, वे सब विकेन्द्रीकरण के अन्तर्गत आते हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि विकेन्द्रीकरण एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें अधीनस्थों का महत्व बढ़ता है। निर्णयन प्रणाली का महत्वपूर्ण हिस्सा बनते हैं। इसकी कुछ महत्वपूर्ण विशेषताओं को समझने का प्रयास करें-

- उच्च अधिकारी का ध्यान बड़े कार्यों पर केन्द्रित होता है।
- युवा अधिकारियों को स्वतंत्र निर्णय लेने का अवसर मिलता है।
- समन्वय की भावना का प्रसार होता है।
- विकेन्द्रीकरण में विविधीकरण आसान हो जाता है।
- योग्य प्रबन्धक व कर्मचारी संस्था की ओर आकर्षित होते हैं।
- निम्न स्तर के प्रबन्धकों को कार्यभार सुपुर्द किए जाने के कारण उनमें प्रबन्धकीय क्षमता विकसित होती है।
- निर्णय लेने में सुविधा व शीघ्रता होती है।

उपरोक्त विशेषताओं के सन्दर्भ में लोक प्रशासन के विचारकों ने विकेन्द्रीकरण के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों की स्थापना की है। इन्हें क्रमबद्ध कर विश्लेषित करने का प्रयास करें-

- **उच्च प्रबन्धकों का कार्यभार कम करना-** यदि संगठन में सभी छोटे-बड़े कार्यों पर निर्णय उच्च अधिकारियों को ही करना होगा, तो ऐसी स्थिति में उनका कार्यभार तो बढ़ेगा ही साथ ही ऐसा भी हो सकता है कि महत्वपूर्ण कार्यों या योजनाओं के सम्बन्ध में वे सुव्यवस्थित निर्णय न कर सकें। ऐसी स्थिति में विकेन्द्रीकरण अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।
- **अधीनस्थों का विकास करना-** सहायक अधिकारियों की योग्यता, कार्यकुशलता, अनुभवों, तकनीकियों आदि को परखने तथा विकसित करने के लिए विकेन्द्रीकरण अत्यन्त आवश्यक है। इस प्रकार इनका सही उपयोग एवं उत्तरदायित्व निर्धारित किया जाता है।
- **प्रतिस्पर्धा का सामना करना-** आज की गलाकाट प्रतिस्पर्धा के युग में जहाँ तुरन्त निर्णय लेने की आवश्यकता होती है, ऐसी स्थिति में केन्द्रीकरण के ऊपर पूर्णरूप से निर्भर नहीं रहा जा सकता है। विकेन्द्रीकरण निर्णय को सरल, प्रभावी एवं मितव्ययी बनाता है।
- **विविधीकरण की सुविधा के लिए-** यदि किसी संगठन के पास कार्यों की विविधता है तो उसे विकेन्द्रीकरण के सिद्धान्तों पर आधारित विभागीकरण को अपनाना आवश्यक होगा। इस प्रकार विभागीकरण, विकेन्द्रीकरण अवधारणा के अन्तर्गत ही अस्तित्व में लाया जा सकता है।

भारतीय गणराज्य जहाँ संवैधनिक व्यवस्था का मूल आधार लोककल्याण है। सभी राज्यों और केन्द्र प्रशासन में विकेन्द्रीकृत व्यवस्था क्रियान्वित है। किन्तु ये व्यवस्था कुछ निश्चित सिद्धान्तों के आधार पर क्रमशः आगे बढ़ती है। लोक प्रशासन में राल्फ जे0 कार्डीनर ने विकेन्द्रीकरण के निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। इन्हें समझने का प्रयास करें-

- विकेन्द्रीकरण से सम्बन्धित निर्णय लेने का अधिकार सदैव उच्च-प्रबन्ध को दिया जाना चाहिए।
- अधीनस्थों में निर्णय लेने की क्षमता होनी चाहिए, तभी इसे क्रियान्वित करना चाहिए।

- विकेन्द्रीकरण व्यवस्था को क्रियान्वित करने के लिए अधिकारों का प्रत्यायोजन किया जाना चाहिए।
- अधीनस्थों को अधिकारों के साथ-साथ उत्तरदायित्व भी उचित मात्रा में सौंपे जाने चाहिए।
- विकेन्द्रीकरण के लिए ऐसी आपसी साझेदारी का होना आवश्यक है, जिसमें स्टाफ का प्रमुख कार्य अनुभवी लोगों के माध्यम से कर्मचारियों को सहायता एवं परामर्श प्रदान करना होता है, ताकि कर्मचारी स्वतंत्रता पूर्वक निर्णय ले सकें और यदि आवश्यकता हो तो उसमें सुधार कर सकें।
- विकेन्द्रीकरण इस मान्यता पर आधारित है कि एक व्यक्ति द्वारा लिये गये निर्णय की तुलना में, सामूहिक रूप से लिये गये निर्णय व्यवसाय में अधिक श्रेष्ठ होते हैं।
- इसमें निर्णय लेते समय अधिकतम ज्ञान व अनुकूलतम साझेदारी से काम लेना चाहिये अन्यथा विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था सफल नहीं होगी।
- इसके लिये सेवीवर्गीय नीतियाँ प्रामाणिक आधार पर हानी चाहिए तथा उनमें समय-समय पर आवश्यक संशोधन किये जाने चाहिए। इसमें श्रेष्ठ कार्य करने वाले व्यक्ति को पुरस्कार तथा खराब कार्य करने वाले व्यक्ति को दण्ड देने का प्रावधान होना चाहिए।
- विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था सामान्य व्यावसायिक उद्देश्यों, संगठन, संरचना, उपक्रम की नीतियों की जानने व समझने की आवश्यकता पर निर्भर करती है।

लोक प्रशासन में विचारकों ने विकेन्द्रीकृत व्यवस्था के निम्नलिखित लाभों को रेखाकिंत किया है। भारतीय प्रशासनिक प्रणाली इस तथ्य की प्रत्यक्ष गवाह है कि विकेन्द्रीकृत व्यवस्था ने सदैव ही अप्रत्याशित परिणाम दिये हैं। इसके कुछ प्रमुख लाभों को जानने का प्रयास करें-

- इस अवधारणा सें निर्णय लेने में सुविधा रहती है।
- इसमें उच्च-प्रबन्ध व अधीनस्थों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध होते हैं।
- इस अवधारणा से संगठन में राजनीति का अभाव रहता है, जिससे अधिकारियों एवं कर्मचारियों में टकराहट नहीं होती।
- इससे अनौपचारिकता व लोकतन्त्र को बढ़ावा मिलता है।
- इसमें अधीनस्थों के अच्छे कार्य की प्रशंसा की जाती है।
- इसमें विभागों के मध्य स्वस्थ प्रतिस्पर्धा से, उनकी कमजोरियों का ज्ञान प्राप्त होता है, जिसमें उन्हें तुरन्त दूर किया जा सकता है। जिससे निरीक्षण कार्य प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।
- इसमें निर्णय लेते समय अधिकारी को सभी बातों का ज्ञान रहता है।

इस प्रकार प्रशासनिक संगठन के विकेन्द्रीकरण में कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि होती है और योग्य कर्मचारियों की प्राप्ति होती है। इसमें उच्च अधिकारियों पर कार्य-भार भी कम रहता है।

अभ्यास प्रश्न-

1. समन्वय का शाब्दिक अर्थ क्या है?
2. किस विद्वान के अनुसार समन्वय संगठन की विभिन्न क्रियाओं में एकरूपता लाता है?
3. अपने कार्यों को दूसरे कर्मचारियों को सौंपना क्या कहलाता है?
4. किस विद्वान के अनुसार प्रत्यायोजन एक क्रियात्मक संचालन शक्ति है?

5. जब प्रत्यायोजन उच्च अधिकारी से निम्न अधिकारी को होता है तो यह किस प्रकार का प्रत्यायोजन कहलाता है?
6. जब प्रत्यायोजन संगठन की अधिकार रेखा द्वारा निर्धारित सीमाओं के आधार पर होता है तो यह किस प्रकार का प्रत्यायोजन कहलाता है?

13.3 सारांश

अभी तक के समस्त सिद्धान्तों का अभिप्राय केवल संगठन के कार्य को प्रभावी बनाना है। वर्तमान समाज ज्ञान आधारित समाज है, यहाँ संगठन में पारदर्शिता, जवाबदेही और कार्यकुशलता की अपेक्षा प्रत्येक नागरिक से होती है। वस्तुतः संगठन में समन्वय, प्रत्यायोजन, पर्यवेक्षक, केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण आदि ऐसे सिद्धान्त हैं, जो संगठन को प्रभावी बनाने में सहयोग करते हैं। इस प्रकार एक संगठन और उसमें कार्यरत कर्मचारी ढंग से पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को पूर्ण करने में सफलता प्राप्त करते हैं।

13.4 शब्दावली

नियोजन- किन कार्यों को कहाँ और कैसे करना है का पूर्व निर्णय।

अधिकार का प्रत्यायोजन- निर्धारित कार्यों के निष्पादन के लिए आवश्यक अधिकारों को अन्य व्यक्तियों को सौंपना।

समन्वय- व्यक्ति तथा समूह के प्रयासों में सामूहिक कार्यों तथा उद्देश्यों को पूरा करने के लिए सामंजस्य स्थापित करना।

विकेन्द्रीकरण- उपक्रम के नीचे के स्तरों पर निर्णय लेने की शक्ति को सौंपना।

अधिकार का दायित्व के साथ मेल- अधिकार कार्य निष्पादन करने का विवेकाधिकार है तथा दायित्व अधिकार प्राप्त करने वाले व्यक्ति का कार्य निष्पादन करने का दायित्व है, अतः यह तार्किक ढंग पर निष्कर्ष निकलता है कि कार्य करने का दायित्व हस्तांतरित अधिकार से अधिक नहीं होना चाहिए और न ही यह कम रहना चाहिए। यह सम रहना चाहिए।

केन्द्रीकरण- यह बिंदु अथवा स्तर जहाँ सभी निर्णय लेने वाले अधिकार केन्द्रित रहते हैं।

नियंत्रण- अधीनस्थों के कार्यों का मापन तथा सुधार जिससे यह आश्वस्त हो सके कि कार्य नियोजन के अनुसार किया गया है।

अधिकार- आदेश देने की शक्ति तथा यह निश्चित कर लेना कि इन आदेशों का पालन किया जा रहा है।

13.5 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सहयोग, **2.** फेयोल, **3.** प्रत्यायोजन, **4.** लुईस एवं ऐलन, **5.** उर्ध्वगामी, **6.** औपचारिक

13.6 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Prasad, Ravindra D. Etc. al 9eds., 1989 Administrative thinkers:Sterling Publishers : New Delhi.
2. Avasthi, A., & maheshwari S, 1984 Public Adiministration; Lakshmi Narain Agarwal ; Agra.
3. डॉ0 जे0 के0 जैन, प्रबन्ध के सिद्धान्त, प्रतीक पब्लिकेशन, इलाहाबाद-2002,
4. डॉ0 एल0 एम0 प्रसाद , प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुल्तान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली- 2005,

13.7 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Gulick L. and Urwick L. (rds.) 1937 Papers on Science of Administeation; the Institute of Public Adminisration; Columbia Unviersity: New Yrk.

2. Prasad, Ravindra, D (ed) 1989 Adninistrative Thinkers: Sterling Pulishers; New Delhi.

13.8 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्रशासक के लिये संगठन में आन्तरिक समन्वय होना क्यों आवश्यक है?
2. प्रत्यायोजन की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए इसकी आवश्यकता को रेखांकित करिये।
3. केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण के बीच अन्तर को समझाइये।
4. ''भारत जैसे विशाल देश में प्रशासन को केन्द्रीकृत व्यवस्था का पालन करना चाहिए या विकेन्द्रीकृत'' अपना मत तर्कों सहित प्रस्तुत करें।